भाकृअनुप
ICAR

इक्षु

राजभाषा पत्रिका

वर्ष 4 अंक 2
जुलाई-दिसम्बर 2015

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

हिंदी दिवस (14.09.2015) पर विज्ञान भवन में आयोजित समारोह में संस्थान की राजभाषा पत्रिका "इक्षु" को गृह पत्रिका पुरस्कार योजना के अंतर्गत "राजभाषा कीर्ति पुरस्कार" का प्रथम पुरस्कार

इक्षुः राजभाषा पत्रिका
वर्ष 4 : अंक 2
जुलाई–दिसम्बर, 2015

इक्षु

संरक्षक एवं प्रकाशक
अश्विनी दत्त पाठक

सम्पादक
अजय कुमार साह

सह–सम्पादक
सुधीर कुमार शुक्ला
अरूण कुमार बैठा
शिव नायक सिंह
अभिषेक कुमार सिंह

कला एवं छायांकन
विपिन धवन
योगेश मोहन सिंह
अवधेश कुमार

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
ISO 9001 : 2008

© भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं।
संस्थान अथवा राजभाषा प्रकोष्ठ का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

अपने लेख एवं सुझाव भेजें :

संपादक, इक्षु एवं
सदस्य–सचिव, राजभाषा प्रकोष्ठ
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
पो. आ.: दिलकुशा, लखनऊ–226 002
ई–मेल : ikshuiisr@yahoo.in

वर्ष 2015–16: संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य

डा. ए. डी. पाठक	अध्यक्ष
डा. ओ. के. सिन्हा	सदस्य
डा. सुधीर कुमार शुक्ला	सदस्य
डा. अमरेश चन्द्रा	सदस्य
डा. एम. आर. सिंह	सदस्य
डा. ए. के. सिंह (कृषि अभियंत्रण)	सदस्य
डा. शिव नायक सिंह	सदस्य
डा. अरूण कुमार बैठा	सदस्य
डा. एस. आई. अनवर	सदस्य
श्री रत्नेश कुमार	सदस्य
डा. जी. के. सिंह	सदस्य
श्रीमती आशा गौर	सदस्य
श्री अभिषेक कुमार सिंह	सदस्य
डा. अजय कुमार साह	सदस्य सचिव

प्रकाशक
निदेशक
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट : दिलकुशा, लखनऊ 226 002
फोन :0522–2961318, 326 फैक्स : 0522–2480738
ई–मेल : iisrlko@sancharnet.in
वेबसाइट : www.iisr.nic.in

अश्विनी दत्त पाठक
निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002
ISO 9001 : 2008

निदेशक की लेखनी से.....

प्राचीन समय से मिठास भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का अभिन्न अंग रहा है। मिठास की बात करते ही हमारा ध्यान बरबस ही गन्ने की ओर जाता है। गन्ने से हम अनेक रूपों में मिठास प्राप्त करते हैं, जैसे– रस, गुड़, राब, शक्कर, खांड़, बूरा, मिश्री, चीनी आदि। वैसे तो मिठास प्राप्त करने के कुछ अन्य स्रोत भी है। मधु या शहद मधुमक्खियों द्वारा फलों के रस या फूलों के परागण से तैयार होती है। दक्षिण भारत में ताड़ से गुड़ एवं शक्कर तैयार की जाती है। पश्चिम एशिया के देश खजूर से गुड़ बनाते हैं। यूरोपीय देश चुकन्दर से चीनी तैयार करते हैं। इन सबके बावजूद चीनी एवं अन्य पांरपरिक मिठास प्राप्त करने का सबसे प्रमुख स्रोत गन्ना ही है। विश्व के कुल गन्ना क्षेत्रफल का लगभग आधा हिस्सा हमारे देश में है। गन्ने की फसल हमारे देश में सबसे महत्वपूर्ण नकदी व व्यावसायिक फसलों में से एक है और चीनी उद्योग कृषि आधारित प्रमुख उद्योग है। लेकिन चीनी उद्योग का विकास हमारे देश में बीसवीं सदी के चौथे दशक के बाद ही हुआ। वहीं दूसरी ओर गुड़ एवं खाण्डसारी हजारों वर्षों से कुटीर उद्योग के रूप में यहाँ स्थापित है। प्राचीन काल से ही भारत विश्व के सभी देशों को गुड़ एवं खाण्डसारी का निर्यात करता आया है। स्वास्थ्यवर्धक गुणों से परिपूर्ण होने के कारण ही गुड़ एवं खाण्डसारी प्राचीनतम समय से भारत में पारंपरिक मिठास के रूप में प्रचलित रहा है। आयुर्वेद में गुड़ को आयु बढ़ाने वाला, शरीर को निरोग एवं यौवन को स्थिर रखने वाला बताया गया है।

सुश्रुत संहिता के अनुसार :

पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातहनोऽसृकप्रसादनः। स पुराणोऽधिक गुड़ः पथ्यतमः स्मृह।।

अर्थात, शुद्ध गुड़ वात, पित्त नाशक, मधुर एवं रक्त शोधक होता है। तथा पुराना गुड़ अत्यधिक गुणकारी होता है। इसलिए प्रसूता स्त्रियों को इसका सेवन कराया जाता है।

इन सभी गुणों के बावजूद इस समय देश में गुड़ उद्योग की स्थिति अच्छी नहीं हैं। वर्तमान में सिर्फ 20 प्रतिशत गन्ना ही गुड़ एवं खाण्डसारी बनाने के लिए प्रयोग होता है। आज वार्षिक गुड़ उत्पादन लगभग 60–80 लाख टन रह गया है। इस उद्योग में लगभग 25 लाख लोगों का रोजगार प्राप्त है। देश के कुछ राज्यों जैसे– बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल में चीनी मिलें बहुत कम है या नहीं है। इन राज्यों में गुड़ उद्योग गन्ना किसानों को अच्छी आमदनी प्राप्त करने का सुनहरा अवसर प्रदान कर सकता है।

इन बातों का संज्ञान लेते हुए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने गुड़ उत्पादन में उद्यमिता विकास हेतु कार्यक्रम शुरू किए हैं। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र, मोतीपुर (बिहार) में गुड़ उत्पादन एवं प्रशिक्षण इकाई स्थापित करने पर कार्य हो रहा है। उम्मीद है कि बहुत जल्द क्षेत्र के गन्ना किसानों को लाभदायक गुड़ उत्पादन एवं वितरण पर महत्वपूर्ण जानकारी केन्द्र के माध्यम से प्राप्त होना शुरू हो जाएगा।

हमें उम्मीद है कि अपने कार्यक्रमों के माध्यम से संस्थान गुड़ उद्योग को देश में फिर से आर्थिक एवं सामाजिक समृद्धि दिलाने में प्रयासरत रहेगा।

इक्षु पत्रिका के इस अंक में विभिन्न विषयों पर प्रकाशित आलेख प्रशंसनीय है। मुझे आशा है कि भविष्य में भी इक्षु पत्रिका पाठकों के लिए निरन्तर रूप से रोचक एवं उपयोगी होगा।

लखनऊ

16 जनवरी, 2016

(अश्विनी दत्त पाठक)

डॉ. अजय कुमार साह
प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रभारी, प्रसार एवं प्रशिक्षण
मुख्य संपादक, 'इक्षु' एवं प्रभारी, राजभाषा प्रकोष्ठ

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ–226002
ISO 9001 : 2008

'इक्षु–सार'

भाषा वह माध्यम हैं जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। विचारों की अभिव्यक्ति मनुष्य को महान बनाता है और उसके सम्मान तथा यश को बढ़ाता है। जिस व्यक्ति को अपने भाषा पर नियंत्रण तथा प्रयोग में निपुणता प्राप्त है वह जीवन में शिखर को प्राप्त करता है तथा समाज में मान–सम्मान का भागीदार बनता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में, चाहे वह विज्ञान, साहित्य, राजनीति, व्यवसाय, पत्रकारिता व अन्य हो, उच्च शिखर को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों में एक समानता अवश्य है और वह है भाषा में निपुणता। वहीं दूसरी ओर अगर भाषा में विकृति या कठोरता आ जाए तो मनुष्य घोर निंदा और अपयश का भागी बन जाता है। इसलिए मनुष्य को बहुत सोच–विचार कर भाषा का प्रयोग करना चाहिए। राजकीय कार्यकलापों में तो उपयुक्त भाषा का प्रयोग ही वांछनीय है तथा कार्य क्षमता को गति प्रदान करने में भाषा महत्वपूर्ण योगदान देता है।

राजकीय कार्यों में प्रशासन हेतु प्रयुक्त होने वाली भाषा को राज्य भाषा कहते हैं। युनेस्को के विशेषज्ञों के अनुसार उस भाषा को राज्य भाषा कहते हैं, जो सरकारी कार्यों के लिए तथा जन–मानस के लिए संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग होता है। 26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान लागू होते ही देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्थापित हो गई। पिछले 65 वर्षों में हिंदी राज्यभाषा के रूप में निरन्तर राष्ट्र निर्माण में अपनी सेवा प्रदान कर रही है तथा सरकार एवं जनता के बीच विचारों के आदान–प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। विभिन्न विषयों पर विद्वजनों द्वारा संचित तथा सृजित ज्ञान के प्रचार–प्रसार में हिन्दी अतुलनीय योगदान कर रही है।

हिंदी के इस योगदान को चरितार्थ करते हुए संस्थान द्वारा 'इक्षु' पत्रिका का प्रकाशन पिछले चार वर्षों से किया जा रहा है। सरल भाषा, उपयोगी लेख तथा आमोद–प्रमोद प्रभाग में मनोरंजन हेतु प्रस्तुत रचनाओं से 'इक्षु' को भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा वर्ष 2014 एवं 2015 में ''हिन्दी गृह पत्रिका पुरस्कार'' द्वारा सम्मानित किया जा चुका है। 'इक्षु' को यह सम्मान दिलाने में सभी लेखकों को उनके बौद्धिक एवं रचनात्मक योगदान के लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं सभी लेखकों एवं पाठकों से सहृदय निवेदन करता हूँ कि आप अपने नवोन्मेशी लेखों द्वारा बौद्धिक सहयोग देते रहें जिससे हम 'इक्षु' में प्रवाहित होने वाले ज्ञान की अविरल एवं मिठास भरे प्रवाह को आप सभी तक निरंतर पहुँचाते रहें।

लखनऊ

16 जनवरी, 2016

(अजय कुमार साह)

इक्षुः राजभाषा पत्रिका
राजभाषा प्रकोष्ठ की अर्धवार्षिक पत्रिका
वर्ष 4 : अंक 2
जुलाई–दिसम्बर, 2015

विषय वस्तु

राजभाषा प्रभाग 1–6

भूमण्डलीकरण के दौर में हिंदी 1
सूर्यप्रसाद दीक्षित

राजभाषा का सफरनामा 5
सरिता यादव एवं अवधेश कुमार यादव

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग 7–73

जल संचय एवं जल प्रबंधन 7
अतुल कुमार सिंह, विनय कुमार मिश्र, संजय अरोड़ा, नवनीत शर्मा

पौधों की बढ़वार के लिए पोषक तत्वों का महत्व 14
अजय कुमार साह एवं एस.एन. सिंह

गन्ने में पोषक तत्वों की न्यूनता के लक्षण 17
सोमेन्द्र शुक्ल, अनीता सावनानी, वरूचा मिश्रा, राम किशोर एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

गन्ना फसल से लक्षित उपज प्राप्ति हेतु मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व एवं उत्पादकता सहसंबंध पर आधारित पोषक तत्व प्रबन्धन 19
राम रतन वर्मा, शिव राम सिंह, के. के. सिंह एवं तपेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

खाद एवं उर्वरकों का प्रबन्ध तथा गन्ने की मिठास 25
सुधीर कुमार शुक्ल, शशिविन्द कुमार अवस्थी एवं आशा गौर

नवीनतम सस्य तकनीक अपनाकर गन्ना उत्पादन बढ़ाएँ 28
ईश्वर सिंह एवं सुधीर कुमार शुक्ल

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित गन्ना सहफ़सली बुवाई यंत्र 34
अखिलेश कुमार सिंह

वैश्विक एवं भारतीय चीनी बाजार के स्वरूप का आंकलन 36
अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश

पौधों में पोषक तत्वों का महत्व एवं कमी के लक्षण 40
आर. के. सिंह, विनोद कुमार एवं विनय कुमार सिंह

केले का ऊतक संवर्धनः तकनीक एवं उपयोगिता 45
संजीव कुमार, सोमनाथ होल्कर एवं आर.के. सिंह

फसल विविधीकरण में दलहनी फसलों की भूमिका 50
ब्रह्म प्रकाश, अश्विनी कुमार शर्मा एवं अतुल कुमार सचान

कपास की उन्नत उत्पादन तकनीक 53
मोनिका जायसवाल, अजीत सिंह, मेघा विभूते, भूपेन्द्र सिंह एवं संदीप राठौड़
खरीफ मक्का की वैज्ञानिक खेती 56
अनिल कुमार यादव, रमेश कुमार एवं पी. के. द्विवेदी
लोटनल पॉलीहाउस – बेमौसमी पौध उत्पादन तकनीक 59
भूपेन्द्र सिंह, विनय कुमार सिंह, चचिंला कुमारी, मनीष कुमार, रुपेश रंजन एवं राज कुमार सिंह
मिर्च की उन्नत खेती 61
मेघा विभूते, अजीत सिंह, मोनिका जायसवाल, भूपेन्द्र सिंह
ग्लोबल वार्मिंग– एक विश्वव्यापी समस्या 64
आर. के. सिंह, एच. एम. मीना एवं एस. पूनीयाँ
उच्च गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन तकनीकी 66
विनय कुमार सिंह, चचिंला कुमारी, रुपेश रंजन, राज कुमार सिंह एवं राकेश कुमार सिंह
मूंगफली की वैज्ञानिक खेती 68
विनोद कुमार, देवेश चौधरी एवं विनय कुमार सिंह
सफेद मक्काः भारतीय दृष्टिकोण पर एक नजर 70
गणपति मुक्रि, रमेश कुमार, धर्मपाल चौधरी, विनय महाजन एवं विशाल सिंह
सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती (रिज एण्ड फरो पद्धति सहित) 72
भूपेन्द्र सिंह, मोनिका जायसवाल, मेघा विभूते, अजीत सिंह, राहुल सतारकर

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग 74–92
सब्जियों द्वारा स्वास्थ्य एवं खाद्य सुरक्षा 74
डी. के. उपाध्याय एवं सुरेश सिंह
पर्यावरण हितैसी – एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन (आई. पी. एम.) 81
राज कुमार सिंह, चचिंला कुमारी, मनीष कुमार, रुपेश रंजन एवं विनय कुमार सिंह
गुरदासपुर एवं प्लासी बेधक कहीं चट न जाये गन्ने को 83
अरूण बैठा, राम जी लाल एवं बुद्धि लाल मौर्य
देशी परम्परागत विधियों द्वारा चूहा नियंत्रण 86
यीतेश कुमार, एम. आर. सिंह, वाय. के. यदु, अनुप्रिया चंद्राकार एम. पी. शर्मा एवं सन्तोष कुमार पांडेय
जैव नियंत्रक ट्राइकोर्डमा से समृद्व जैविक खाद का फसलों के रोग नियंत्रण में महत्व 88
राम जी लाल, दीक्षा जोशी एवं शशिविन्द कुमार अवस्थी
गन्ने का पोक्का बोन्ग रोग एवं उसका नियंत्रण 90
राम जी लाल, दीक्षा जोशी एवं शशिविन्द कुमार अवस्थी
अपने लिए चुनें सही आटा 92
मिथिलेश तिवारी

आमोद–प्रामोद प्रभाग 93–110
अन्नदाता 93
प्रसून वर्मा
फोटोग्राफी की कहानी – कैमरे की जुबानी 95
योगेश मोहन सिंह, ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा
भाकृअनुप –भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान की स्थापना एवं इतिहास का पुनरावलोकन 97
अशोक कुमार श्रीवास्तव, गोपी कृष्ण गुप्ता, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, वरूचा मिश्रा तथा राम सँवारे चौरसिया
हज यात्रा 2015 100
महमूदुल हसन अंसारी
मौन में छिपा है आनन्द 104
आर.एस. चौरसिया
नश्तर 104
चमन सिंह
पुस्तकालयाध्यक्षः किताब प्रबंधन का मास्टर 105
आशीष सिंह यादव
''जीवात्मा'' 107
प्रमिला लाल
''क्या यही दुनिया है'' 107
विवेक लक्ष्मी
मैं बोझ नहीं हूँ 107
पल्लवी
गूढ़ प्रश्न 108
ब्रह्म प्रकाश
गन्ने का संदेश 108
संतराम
मंगल अभियान (मार्स ऑर्बिटर मिशन) : एक सफल गाथा 109
आदिल जुबैर
शब्दकोष 111
आपके पत्र 115
समाचार प्रभाग 116

राजभाषा प्रभाग

भूमण्डलीकरण के दौर में हिंदी

सूर्यप्रसाद दीक्षित

सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

हमारा पृथ्वी मण्डल लगभग 60 करोड़ वर्ष पुराना है। वैज्ञानिकों ने 6 या 7 पृथ्वियों का अनुमान किया है, पर जिस पृथ्वी पर हम सब रह रहे हैं, वह लगभग 51 करोड़ वर्ग मील में व्याप्त एक बहुत बड़ा ग्रह है। जिसमें 6 महाद्वीप और लगभग 200 राष्ट्र हैं। इसकी जनसंख्या 7 अरब के ऊपर है। जिस आधुनिक मानव सभ्यता से हम सम्बन्धित हैं, वह भी लगभग 1 लाख वर्ष पुरानी है। कबीलायी संस्कृति से विकसित होती हुई यह मानव सभ्यता आज भूमण्डलीकरण के स्तर पर पहुँच गयी है। इसीलिए अब 'विश्व ग्राम' की अवधारणा चरितार्थ हो रही है।

सम्पूर्ण विश्व में दो प्रकार के राष्ट्र हैं–

1. विकासशील 2. अविकसित।

पूर्ण विकसित राष्ट्र तो कोई नहीं हैं, क्योंकि सर्वत्र विकास की प्रक्रिया चल रही है। सामरिक दृष्टि से विकसित देशों के बीच परस्पर बड़ी स्पर्धा है। प्राचीन काल में मध्य एशिया के कुछ कबीले तेज दौडने वाले घोड़ों और तोप जैसे औजारों को लेकर आगे बढ़े और उन्होंने संसार के कई देशों में अपनी सत्ता स्थापित की। साथ ही अपने धर्म पर परचम फहराया। यूरोप के कई देशों ने अपनी विपन्नता का विकल्प खोजते हुए समुद्री जहाजी बेड़े तैयार करके, जोखिम उठाते हुए एशिया, अफ्रिका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि महाद्वीपों में जगह जगह काबिज हो गए। इस प्रवृत्ति ने अंध राष्ट्रवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को बढ़ावा दिया। इससे दो–दो विश्व युद्ध हुए। आणविक शस्त्रों की होड लग गई, पर्यावरण का काफी विनाश हुआ और फिर नर कंकालों की ट्राफी सजाए हुए इन समुन्नत राष्ट्रों ने मुक्त प्रौद्योगिकी के नाम से एक नया विश्व युद्ध शुरू कर दिया, जिसने निजीकरण, उदारीकराण के नारे के सहारे बाजारवाद की स्थापना की। इस समय यही भूमण्डलीय है और यही वैश्विक चिन्ता का मुख्य मुद्दा है।

इस भूमण्डलीकरण के कई सम्भावित लाभ भी हैं, जैसे–

1. इसके सहारे अनेक नृजातीय संस्कृतियों में समन्वय हो सकता है।
2. इसके द्वारा मानवीय ज्ञान–विज्ञान और उत्पादों का लाभ सर्व साधारण को प्राप्त हो सकता है।
3. इससे विभिन्न भाषिक इकाइयों और धार्मिक समुदायों का एकीकरण सम्भव है, जो 'यूनेस्को' 'यूनिसेफ' आदि का लक्ष्य है।
4. यह भौतिक उन्नति में संलग्न नस्लों की दलीय स्पर्धा का नियन्त्रण कर सकता है, जैसा कामनवेल्थ, नाटों, टीटो, सार्क आदि संगठनों का ध्येय है।
5. यह हृदयहीन वाणिज्य पर रोक लगा सकता है, मुख्यतः पर्यावरण की रक्षा, बाल श्रम–निषेध, मानवाधिकार, सूचनाधिकार, शिक्षाधिकार आदि के द्वारा।

यह भूमण्डलीकरण हमारी वैश्विक चेतना की उपज है। पहले इसका मूल मन्तव्य था, अयुद्ध अथवा 'नोवार'। इसी उद्देश्य से 'लीग आफ नेशन्स' और फिर संयुक्तराष्ट्र संघ की स्थापना की गयी थी। गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी ध्येय से विश्वभारतीय की कल्पना की थी। इसी से प्रेरित होकर दिनकर जी ने राष्ट्र देवता का विसर्जन किया था। तात्पर्य यह है कि भारत लम्बे अर्से से वैश्विक चेतना का आवाहन करता रहा है। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' यहाँ का मूल मन्त्र रहा है। यद्यपि अभी भारतीकरण और भूमण्डलीकरण के बीच द्वन्द्व है। यहाँ यदा–कदा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का भी नारा सुनाई दे जाता है, किन्तु शुद्ध आर्य रक्त का दम्भ भरने वाले नाजियों के उग्र राष्ट्रवाद के हामी हम कभी नहीं रहे। इसी कारण हमारा साहित्य और हमारी भाषाएँ विश्व व्याप्त मानवीय संस्कृति से सम्पोषित हैं।

हिंदी की वैश्विक चेतना का सूक्ष्म संकेत इस सन्दर्भ में उपयोगी होगा। वर्तमान में हिंदी लगभग 150 देशों तक पहुँच गयी है। इन देशों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–1. पड़ोसी देश, जो पहले वृहत्तर भारत मे गिने जाते थे, जैसे–नेपाल, म्यामांर, तिब्बत, भूटान, लंका, मालदीव, अफगानिस्तान, बाँग्लादेश आदि। इनमें नेपाल प्राचीनकाल से हिंदी का गढ़ रहा है। वहाँ मानुभक्त, मोतीराम देव कोटा शंभुप्रसाद, गोपाल सिंह नेपाली सरीखे रचनाकार हुए हैं। संत भक्त कवियों का जसमनी निरगुन सम्प्रदाय काफी बहुचर्चित है। पाकिस्तान की उर्दू यदि देवनागरी लिपि में लिख दी जाये तो वह समकालीन हिंदी–हिन्दुस्तानी से बहुत भिन्न नहीं दिखेगी। इन सभी देशों की साहित्य और भाषागत प्रवृत्तियाँ परस्पर मिलती जुलती प्रतीत होती हैं।

दूसरा वर्ग है भारतवंशी बहुल राष्ट्रों का, जिसमें मॉरिशस, फिली, सूरीनाम, ब्रटिश गयाना, त्रिनीदाद टुबैको और दक्षिण अफ्रीका के कुछ देश गण्यमान हैं। इन देशों में ब्रजेन्द्र मधुकर, बखौरी–अभिमन्यु अनत, विवेकानंद शर्मा, कमला प्रसाद मिश्र, मुंशी रहमान, भवानी दयाल संन्यासी, मणिलाल डाक्टर आदि विभूतियाँ उल्लेखनीय हैं।

तीसरी कोटि है 'आप्रवासी' बहुल राष्ट्रों की, जैसे–संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंग्लैण्ड, नार्वे, स्वीडन, इटली, जर्मनी, जापान, सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया आदि। यहाँ बड़ी संख्या में भारतीय जन आजीविका की खोज में बस गए हैं। उन्होंने अनेक पत्रिकाएँ और संस्थाएं चला रखी है। इनमें अनेक स्तरीय रचनाकार भी हैं। इनके लेखन में विकसित राष्ट्रों की सराहना भी की गई है और वहाँ किए जा रहे भारतीयों के उत्पीड़न, उनकी हेकडी, उनके रंग भेद और आंतक की चर्चा भी की गयी है। 'आओं .... पे घर चलें' (प्रभा खेतान) रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह), एबीसी–डी (कालिया) आदि उपन्यासों में इसकी अनुगूँज सुनायी देती है।

पिछले दशकों में विश्व स्तर पर हिंदी ने अपने सात रूप विकसित किए हैं। (1) मॉरीशस की क्रियोली (2) फिजियन हिंदी (3) त्रिनी हिंदी (4) सूरिनाम और गयाना की सरनामी हिंदी (5) दक्षिण अफ्रीका की नेटाली हिंदी (6) ताजिकिस्तान की ताजिकी हिंदी (7) जर्मनी की रोमा जनजाति की 'रोमा' हिंदी। इनके कारण हिंदी की बहुसंख्यकता 1 अरब के आस पास पहुँच गयी है और हिंदी ने लगभग डेढ़ हजार वर्षों की अवधि पूरी कर ली है।

हिंदी की इस वैश्विकता का मुख्य कारण यह है कि उसने संस्कृत, पालि, प्राकृत जैसी आकर भाषाओं के अतिरिक्त अरबी, फारसी, तुर्की, यूनानी, पास्तों, डच, पुर्लगाली, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इटालवी, जैसी अनेक भाषाओं से भारी मात्रा में शब्दावली ग्रहण की है। बदले में उन्हें शब्दराशि दी भी है। धीरे–धीरे ये सब विश्व भाषा की ओर अग्रसर हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि हिंदी की रूप–रचना में भारतीय विद्वानों के साथ–साथ विदेशी विद्वानों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यह स्मरणीय है कि–

1. खड़ीबोली व्याकरण निर्माण के क्षेत्र में ऐडम और केलॉंग की ऐतिहासिक भूमिका रही है।
2. हिंदी शब्दकोश निर्माण में गिलक्राइस्ट और कमिल बुक्के का महत्व सर्वोपरि है।
3. धर्मप्रचार हेतु यहाँ न्यू तथा ओल्ड टेस्टामेंन्ट के नाम से बाइबिल के जो अनुवाद किए गए, उनसे खड़ीबोली–हिंदी का व्यापार प्रचार–प्रसार हुआ है।
4. हिंदी पाठ्यक्रम का निर्माण मुख्यतः फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता द्वारा शुरू हुआ था।
5. हिंदी पत्रकारिता का जन्म हिक्कीज गजट (बंगाल गजट) की प्रेरणा से 'उदन्त मार्तन्ड' के रूप में 1826 में हुआ।
6. हिंदी साहित्य का आरम्भिक इतिहास–लेखन गार्सातासी और ग्रियर्सन द्वारा किया गया।
7. हिंदी का शोध कार्य डी.डी. उपाधि के रूप में लंदन यूनिर्सिटी से शुरू हुआ, जिसका श्रेय डा. ग्रियर्सन, तेस्सोतरी आदि को दिया जा सकता है।
8. हिंदी में समीक्षा की शुरूआत इन्हीं विदेशी विद्वानों ने की। पाठालोचन का शुभारम्भ भी इन्हीं के द्वारा हुआ।
9. विदेशी विद्वानों ने 'थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास', 'कबीर एण्ड हिज फालोवर्स', सूरदास, जायसी आदि अनेकानेक हिंदी रचनाकारों को विभिन्न भाषाओं में अनूदित करके विश्व स्तर पर पहुँचाया।

इस विश्व–विनियम में हिंदी भी सक्रिय रही। चूँकि यह देश अर्से तक ब्रिटिश उपनिवेश का अंग रहा है, इसलिए यहाँ नव जागरण के नाम पर पश्चिमी आधुनिकता बोध को आस्था पूर्वक स्वीकारा गया। हिंदी का यह विश्वबोध मुख्यतः छह रूपों में प्रकट हुआ है।

1. अनुवाद के माध्यम से – यहाँ अँग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, फारसी आदि भाषाओं की महत्वपूर्ण कृतियों के कई–कई अनुवाद हुए हैं। कुछ अनुवाद यथावत् हुए हैं और कुछ का भारतीकरण किया गया है, जैसे सेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का 'दुर्लभ बन्धु' के नाम से भारतेन्दु द्वारा किया गया अनुवाद। जिन विदेशी रचनाकारों को बहुशः अनुवादित किया गया है, उनमें हैं शेक्सपियर, गोर्की, टाल्सटाय चेखव, दास्तोवेस्की, थर्ट्स, शेले, वर्डसव एलेक्जेन्डर ड्यूमा, कामू, हेमिग्वें, सार्त्र, मार्क्स, फायड, ब्रेख्त इलियट, रिचर्ड्स बर्नार्डशाह, गोल्ड स्मिथ, उमरखेयाम, बेकन, स्पेन्सर आदि। हिंदी में अनूदित इस विश्व साहित्य की संख्या 2000 के आस–पास है। इन अनुवादों से कविता, नाटक, कथा साहित्य और समीक्षा के क्षेत्र में अनेक प्रवृत्तियों और विचारधाराओं का प्रवेश हुआ।
2. विदेशी विभूतियों का चरित्रांकन– हिंदी में विश्व विख्यात महापुरूषों की जीवनियाँ लिखी गयी हैं। नायकों पर भी और खलनायकों पर भी। इन जीविनियों और रेखा चित्रों की संख्या तीन सौ के आस–पास है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर लेखन–

पिछली दो सदियों में जो महत्वपूर्ण घटनाएँ देखी गयी हैं, जैसे–विश्वयुद्ध, रूसी क्रांति, जापान पर बमबारी, वियतनाम युद्ध, इराक ईरान युद्ध आदि उन पर काफी संवदेनात्मक चिन्तन लेखन हिंदी में किया गया है।

4. विश्व पर्यटन विषयक लेखन– हिंदी लेखकों ने विश्व के दर्शनीय स्थानों पर बहुत लिखा है। उनके यात्रावृत्त डायसपोरा के विषय हैं। इनके माध्यम से इंग्लैण्ड, रोम, अमरीका, लेनिन ग्राड, मास्को, पेरिस (फ्रांस), स्वीटजरलैण्ड, कनाडा, जर्मनी, जापान, चीन, आस्ट्रेलिया, इटली, सऊदीअरब, मारिशस आदि देशों/नगरों के ऐतिहासिक, धार्मिक स्थानों, पहाड़ों, नदियों, झरनों आदि का विस्तृत विवरण प्राप्त किया जा सकता है।

5. विश्व सम्मेलन– इस अवधि में जो नौ विश्व हिंदी सम्मेलन हुए, जगह–जगह जो रामायण महोत्सव हुए और विभिन्न देशों में जो हिंदी शिक्षक एवं शिष्ट मण्डल गए, उससे हिंदी विश्व के कोने–कोने में पहुँची है।

6. वैश्विक विचाराधाराओं का अनुप्रवेश– हिंदी रचनाकारों ने भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार के साथ–साथ पश्चिम की अनेक विचाराधाराओं का स्वागत किया है, जैसे–विकासवाद, मनोविश्लेषण द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद, उत्तर आधुनिकता आदि।

उपर्युक्त विश्व बोध से प्रभावित होकर हिंदी रचनाकारों ने बहुत लिखा है। इसमें राहुल सांकृत्यायन, बच्चन, दिनकर, यशपाल जैन, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा आदि का लेखन काफी महत्वपूर्ण है। इधर हिंदी की फिल्मों और धारावाहिकों का विश्व स्तर पर बहुत स्वागत हुआ है। 'स्लम डाग' के 'जय हो' गीत को पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला है, जिससे हिंदी का कद बढ़ा है।

वर्तमान विश्व को हिंदी ने जो दिया है, वह भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है। हमारी सांस्कृतिक संबन्ध परिषद, इस दिशा में जितनी सक्रिय है, उतना ही हिंदी लेखन भी। हमने भारतीय संस्कृति के इन पक्षों का व्यापक निर्यात किया है–

1. बौद्धधर्म 2. सनातन धर्म वैष्णवमत 3. आर्य समाज 4. सिख सम्प्रदाय नानक पंथ 5. कबीर पंथ 6. प्रभुषाद का कृष्णाकल्ट 7. शैव, शाक्त एवं स्मार्तमत 8. शिवनारायणी सम्प्रदाय 9. योगसाधना 10. प्रणामी और सतनासी सम्प्रदाय ''रामकृष्ण, अरविंद, ओशो, योग आदि।

इनसे प्रभावित होकर विदेशों में भारत विद्या (इण्डोलॉजी) की शुरूआत हुयी। वह कहीं 'प्राच्य विद्या' अर्थात् हिंदी, संस्कृत उर्दू, के नाम से चली, कभी, 'एफ्रों एशियन स्टडीज' के नाम से बढ़ी और कहीं 'बुद्धा स्टडी' के नाम पर लोकप्रिय हुयी। भारतीय लोक संस्कृति और लोक साहित्य के प्रति कई विदेशी विद्वान आकृष्ट हुए जैसे– राजस्थानी संस्कृति के खोजी कर्नल टाड और आल्हा के संकलन कर्ता इलिएट, करीन शोमर आदि। इधर कजरी, ठुमरी, रसिया, विदेसिया, कथक, गजल, कौव्वाली, रामलीला, रसलीला, भवाई, नौटंकी आदि कई विधाओं के प्रति विदेशों में अभिरूचि बढ़ी है। भारत की हिंदी पट्टी की ललित कलाएं जैसे–नृत्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य आदि भी देश–देशान्तर तक लोकप्रिय हैं। हिंदी जगत के धार्मिक स्थलों में विदेशी पर्यटक बढ़ते जा रहे हैं जैसे–प्रयाग–कुंभ, वृंदावन, हरिद्वार, काशी, उज्जैन आदि। बौद्ध धर्म स्थल जैसे– सारनाथ, बोधगया, श्रावस्ती कुशीनगर आदि मुख्यतः हिंदी क्षेत्र में हैं।

मुस्लिम तीर्थों में अजमेर, देवा आदि में भी विदेशियों का आवागमन बढ़ता दिख रहा है। यहाँ राजधानी दिल्ली का आकर्षण तो है ही शिक्षा चिकित्सा, बैंकिंग आदि के उद्देश्य से यहाँ विदेशी संचार बढ़ता जा रहा है। तात्पर्य यह है कि विश्व बोध द्विपक्षीय है। इसके कारण हिंदी साहित्य का विशिष्ट वैश्विक चरित्र विकसित हो गया है।

अब प्रश्न उठता है कि यह भूमण्डलीकरण हिंदी के लिए पूर्णतः हानिकारक है या लाभदायक भी?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भूमण्डीलकरण समर्थ राष्ट्रों के दबाव से आया है। इसका इतिहास 300 वर्ष ईसापूर्व पुराना है अर्थात् सिकन्दर के आक्रमण से बाद में समय समय पर शकों, हूणों, कुषाणों, यवनों, तुर्कों, पठानों, सुलतानों, खिलजी–लोदी, तुलगक, गुलाम वंशियों, मुगलों और अंग्रेजो ने आक्रमण किया तथा अपने उत्पाद एवं धार्मिक मत भारतीयों पर थोपे। हम उन पर निर्भर रहे। इधर कई अमरीकी, यूरोपीय, चीनी, जापानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारतीय बाजार पर कब्जा करने के ध्येय से तकनीक के सहारे हम पर नया आक्रमण किया है। इनके मायाजाल के कारण हमारा स्वदेशी आन्दोलन, गांधीवाद और मार्क्सवादी अर्थशास्त्र बिखर गया। जनसाधारण उपयोगितावादी एवं उपभोक्तावादी हो गया। इन्होंने संचार माध्यमों पर कब्जा कर लिया। विदेशी चैनलों ने मनोरंजन के साथ 'डिसकवरी' जैसे चैनेल से ज्ञान का जो विस्फोट किया, समाचार प्रसारण में जो ताजगी तथा निर्भयता प्रदर्शित की, उससे भारतीय मन इनका मुरीद हो गया। रेडियों में इन्होंने एफ.एम., सिटी रेडियों, विजुवल रेडियों, कम्युनिटी रेडियों द्वारा अपूर्व श्रवणीयता की वृद्धि की, दूसरी और कंप्यूटर इण्टरनेट, फैक्स, पेजर, टैवलेट मोबाइल, ई–फोन आदि द्वारा उन्होंने जन–जन को सम्मोहित कर लिया। पहले भारतीय बाजार में ये प्रतिबन्धित थे भूमण्डलीयकरण

समझौते के साथ इनकी बाढ़ आ गयी। इस बीच राष्ट्रीय अस्मिता दब गयी। राष्ट्रीयकरण वाले देशी उद्योग भ्रष्टाचार वश बीमार हो गए, फलतः कार्पोरेट कल्ट सर्वत्र छा गया।

आज तर्क यह दिया जा रहा है कि भूमण्डलीयकरण से प्राप्त उन तकनीकों के कारण प्रशासन जनसंपर्क स्वास्थय सेवा, न्यास प्रणाली, शिक्षा व्यवस्था, सुरक्षा, परिवहन, मनोरंजन, व्यापार, विपणन, बैकिंग, कृषि, पर्यावरण आदि क्षेत्रों में तीव्रता तथा प्रामाणिकता की वृद्धि हो रही है। कागज कलम का प्रयोग कम हुआ है। इससे पर्यावरण प्रदूषण कम होगा। विश्व भर का ज्ञान घर बैठे मिल रहा है। भ्रष्ट प्रशासन के समान्तर एक कार्पोरेट सेक्टर खड़ा हो गया है। इस प्रौद्योगिकी से प्रेरित काल सेण्टर्स और आउट सोर्सिंग से लाखों युवकों को रोजगार मिला है, विदेशों में उनकी खपत बढ़ गयी है। भारतीय जनता उनकी आदी हो गयी है और विदेशी प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हुए उसे ग्लानि की जगह गर्व का अनुभव हो रहा है।

यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है, किन्तु इसे अपनाना अब आपद्धर्म हो गया है। वह भी परास्त मानसिकता से नहीं बल्कि नई मंगलाशा के साथ। हमारी अपनी खोजें नहीं है, इसलिए भूमण्डील खोजों का उपयोग करके हमारी युवा पीढ़ी वैश्विक स्तर प्राप्त कर लेगी। सिलीवान घाटी इसकी साक्षी है। भूमण्डलीकरण केवल अमरीका का नहीं है। इसमें चीन, जापान, कोरिया जैसे एशियाई देश भी अग्रणी है। आवश्यकता यह है कि भूमण्डलीकरण को हम राष्ट्रीय सन्दर्भों से जोड़े रहें। उसे अनियंत्रित न होने दें। केवल ज्ञान प्रौद्योगिकी का आयात करें और सबके राष्ट्रीय विकल्प तैयार करते जाएँ। मूल्यों को बाजार के साथ जीवन से भी जोडे रहें। वर्तमान संसार स्पर्धा पर टिका है। प्रसाद जी ने ठीक ही कहा था–'ठहरा जिसमें जितना बल है।' अस्तु, दयनीयता न दिखाकर, विश्व के सबसे बड़े बाजार का गर्व धारण कर, कथनी में भेद न करते हुए और द्विविधा में समय न नष्ट करते हुए भूमण्डीलकरण के विधेयात्मक रूप को आत्मसात करना होगा। इससे हमारी संस्कृति विश्वव्यापी होगी और भाषा तथा साहित्य को अपेक्षाकृत अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य प्राप्त होगा। हमारा 'आनो भद्रा' मंत्र इस दिशा में प्रेरक सिद्ध होगा।

वर्तमान विश्व विभीषिका में भाषाओं का क्षरण हो रहा है। हजारों छोटी भाषाएँ नष्टप्राय हैं। हिंदी को जीवन्त बनाए रखने के लिए भाषा प्रौद्योगिकी और प्रबन्धन का अभियान चलाना होगा। इस भाषा का 'हाइबिड' होना अत्यावश्यक है। प्रयोगशालाओं द्वारा मानक वर्तनी, व्याकरण, लिपि और उच्चारण विज्ञान को प्रश्रय देना है। कंप्यूटर लिंग्विस्टिक मशीन साधित अनुवाद, सन्दर्भ साहित्य शब्दकोश, विश्वज्ञान कोश, तुलनात्मक साहित्य, पाठालोचन, लिपि–संशोधन, रोजगारपरक प्रशिक्षण, स्तरीय अन्वेषण, वाचन–सम्भाषण–कला आदि द्वारा समर्थ विश्व–भाषाओं के समक्ष हिंदी को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हिंदी में संस्कृत के माध्यम से जो आध्यात्मिक संपदा विद्यमान है, उसकी ओर अतिभौतिकता से ग्रस्त त्रस्त अमेरिकी यूरोपीय जन हिंदी के साहित्याध्यात्म के प्रति आकृष्ट होने के लिए वाध्य होगा। अस्तु; अन्तर्विरोधों से मुक्त होकर सोत्साह इस वैश्विक चरित्र को आत्मसात करना हमारा युग धर्म है। हजारों वर्षों की गुरबत से उपजी यह अर्थ लिप्सा अपनी अति पर पहुँच कर पुनः तृणमूल की ओर लौटेगी। सम्प्रति हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा आर्थिक संपन्नता पर टिकी है, अतः जनमनोविज्ञान को प्रभावित करने के लिए हिंदी को सर्वप्रथम अर्थसाधक (रोजगार केन्द्रित) बनाना होगा। इस भाषा में प्रगढ़ संवेदन और संप्रेषण क्षमता है। तकनीकी भाषा बन जाने पर वह अंग्रेजी से ज्यादा ग्राह्य हो जाएगी और विश्व भाषा रूप में समादृत होगी। महाकवि प्रसाद की वाणी चरितार्थ होती दिख रही है–

डरो मत, अरे! अमृत सन्तान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि।

पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र, खिंची आएगी सकल समृद्धि।।

सन्दर्भ

1. भाषा प्रौद्योगिकी एवं भाषा प्रबन्धन– डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
2. हिंदी को बचाएं, बढाएं कैसे? – डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
3. संचार भाषा हिंदी– डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
4. हिंदी का वैश्विक परिपार्श्व– डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
5. प्रयोजनी हिंदी– डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित

हिंदी हमारे राष्ट्र की अभिव्यक्ति का सरलतम स्रोत है।

-सुमित्रानंदन पंत

राजभाषा प्रभाग

राजभाषा का सफरनामा

सरिता यादव[1] एवं अवधेश कुमार यादव[2]

[1]बप्पा श्री नारायण वोकेशनल डिग्री कालेज, लखनऊ

[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वह भाषा, जिसमें प्रशासन का कामकाज चलाया जाए, राजभाषा कहलाती है। यह पदवी संविधान द्वारा दी जाती है। राजभाषा के रूप में हिंदी का इतिहास बहुत प्राचीन है। राजकाज की भाषा के रूप में और जनभाषा के रूप में उसका प्रचलन प्राचीन काल से होता रहा है। अंग्रेजों के आगमन से पहले 'अवधी' प्रशासन की भाषा के रूप में प्रचलित थी। जो हिंदी की ही एक विभाषा है। उत्तर भारत में बलरामपुर और रीवा राज्य में 'अवधी' राजभाषा के रूप में प्रमुख रूप से प्रचलित थी। मुस्लिम भारत में राजभाषा 'फारसी' थी लेकिन हिन्दू राजाओं के आपसी पत्र व्यवहार की भाषा हिंदी की स्थानीय बोलियाँ थी।

गिलक्राइस्ट कृत 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' में भी इसी भाषा का प्रयोग प्राप्त होता है। कम्पनी शासन में न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग व्यापक रूप से होता रहा। सन् 1797 में ही ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने एक अधिनियम बनाकर व्यवस्था कर दी थी कि भारत सम्बन्धी विधि के भारतीय भाषाओं में अनुवाद सरकारी तौर पर प्रकाशित किए जाए। सन् 1803 ई. में गवर्नर–जनरल ने कानून बनाकर यह व्यवस्था कर दी थी कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में लागू होने वाले कानूनों के हिंदी अनुवाद सरकारी तौर पर प्रकाशित किये जाए। सन् 1793 ई. में यह व्यवस्था कर दी गई थी कि पुलिस–प्रशासन से सम्बद्ध नियमों का हिंदी अनुवाद बिहार के मजिस्ट्रेट, पुलिस कोतवाल तथा दरोगाओं की नियुक्ति के समय उन्हें दिया जाये। यही व्यवस्था सन् 1804 ई. में सभी हिंदी भाषी क्षेत्रों में लागू कर दी गयी। काजियों तक से सम्बद्ध कानूनों के लिए यह व्यवस्था थी कि उसके हिंदी अनुवाद काजियों को दिये जाये। इन काजियों का भार साधक हिंदी जानने वाला उच्च स्तर का एक अंग्रेज अधिकारी होता था। यह न्यायालय तब सदर दीवानी अदालत कहलाती थी और उसका न्यायाधीश अंग्रेज होता था।

कार्यालयों में अंग्रेजी टाइपराइटरों के प्रवेश से शासन के सारे सूत्र, जो कभी–कभी देशी भाषाओं में किये जाने के लिए विवश थे, अंग्रेजी से चिपकते गये। अदालती भाषा के विरोध में वर्ष 1867 में बिहार में व्यापक जन–आन्दोलन हुआ।

सन् 1857 के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के परिणामस्वरूप अंग्रेजों के लिए आवश्यक हो गया कि हिंदी और उर्दू के माध्यम से हिन्दुओं और मुसलमानों में विभेद पैदा हुए। 1873 ई. में भारतेन्दु हरिश्चंद्र की पत्रिका 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। 1893 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई तथा यहीं से प्रकाशित 'देवनागरी भजन की पुस्तक' के माध्यम से श्री गौरीदत्तर ने आह्वान किया– 'अरे कोई तो बीड़ा उठाओ देश में नागरी फैलाओ।' प्रेमघन, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि के प्रयत्नों से 18 अप्रैल 1900 को उत्तर प्रदेश की सरकार ने कचहरियों में नागरी को फारसी के साथ समान अधिकार प्रदान करके नागरी आन्दोलन की न्यायपूर्ण परिणित प्रदान की।

इस अन्तराल में हिंदी भाषा के तीन नाम प्रचलित हो गये– हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी। इस समस्या का प्रारम्भ 1857 के स्वाधीनता आन्दोलन के समय ही हो गया था परन्तु 1937 में आठ प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों ने शासन भार संभाला और उनके कार्यक्रम का एक प्रधान अंग था– राष्ट्रभाषा की उन्नति। इसी उन्नति के क्रम में हिंदी–उर्दू–हिन्दुस्तानी का संघर्ष शुरू हुआ। सन् 1946 ई. में जब भारत की राजनीतिक समस्या को हल करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने कैबिनेट मिशन की स्थापना की और इस मिशन ने संविधान पर बातचीत करते हुए राजभाषा पर विचार–विमर्श किया। यह समस्या बड़े मुखर ढंग से प्रकाश में आई। इस मिशन ने स्वतंत्र भारत के लिए संविधान तैयार करने के उद्देश्य से 'संविधान सभा' की स्थापना की और तत्पश्चात् संविधान सभा ने अनेक समितियों का गठन किया। इन समितियों में से एक प्रारूप समिति ने आपसी विचार–विमर्श के बाद 21 फरवरी 1948 को संविधान का प्रारूप तैयार किया जिसे परिवर्तन–परिवर्धन करते हुए 26 नवम्बर 1949 को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया गया और 26 जनवरी 1950 को जब देश को गणतंत्र घोषित किया गया, यह संविधान लागू हुआ।

स्वाधीनता आन्दोलन के समय से ही हिंदी और हिन्दुस्तानी को लेकर चल रहा आन्दोलन इस समय और अधिक मुखर हो गया। 9 जनवरी 1948 को संविधान सभा की बैठक में इस मुद्दे पर चर्चा प्रारम्भ हुई। हिंदी के समर्थन में श्री घनश्याम सिंह गुप्त ने अपने तर्क प्रस्तुत किये जबकि हिंदुस्तानी का समर्थन करते हुए श्री मोटुरी सत्यनारायण ने श्री गुप्त के तर्कों का खंडन करते हुए देश में हिंदुस्तानी के अस्तित्व को सिद्ध करते हुए यह तर्क दिया कि हिंदुस्तानी ही इस देश की राजभाषा हो सकती है। इसी बैठक में अहिंदी भाषी प्रदेशों का प्रतिनिधित्व करते हुए एम.वी. कृष्णमूर्ति ने कहा कि उन्हें देवनागरी में लिखित हिंदी ही राजभाषा के रूप में स्वीकार्य है। दूसरी तरफ अंकों को लेकर भी सदस्य एकमत नहीं थे। राजर्षि टण्डन तथा सेठ गोविन्द दास के समर्थकों का कहना था कि संविधान में नागरी अंक स्वीकृत होने चाहिए वहीं पंडित नेहरू के प्रतिनिधि वाले दल ने अरबी रोमन शताब्दी में भारत से ही अरब गए थे, जो वहाँ से आगे जाकर रोमन अंकों में बदल गए और चूँकि रोमन अंक अन्तर्राष्ट्रीय अंक हो चुके हैं इसलिए देश की राजभाषा के रूप में हिंदी के साथ–साथ

देवनागरी तथा रोमन अंकों को ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

6/7 अगस्त 1949 को 'राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषद' के अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित किया गया कि देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को ही देश की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया जाये। परन्तु अंकों को लेकर असहमति बनी थी। बाद में अंतर्राष्ट्रीय रोमन अंकों के साथ देवनागरी में लिखित हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिल गई।

तब से अब तक अनवरत प्रयासों के बावजूद भी राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति बहुत संतोषप्रद नहीं हो पाई है। यही कारण है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 खण्ड (2) में किये गये प्रावधान के अनुसार 27 मई, 1952 को राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया जिसके द्वारा उन्होने राज्यों के राज्यपालों, उच्चतम न्यायालयों के न्यायाधीशों और उच्च न्यायालयों की नियुक्तियों के अधिपत्रों में संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत किया। 3 दिसम्बर 1955 में राष्ट्रपति ने पुनः एक आदेश जारी किया। जिसमें संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रजी के अतिरिक्त हिंदी का प्रयोग प्राधिकृत किया गया।

अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिंदी के प्रयोग को धीरे–धीरे बढ़ाने के लिए सभी मंत्रालयों को अपने निम्नांकित कार्यों में हिंदी के प्रयोग की सलाह दी गयी।

1. जनता से जो पत्रादि हिंदी में मिले उसके उत्तर जहां तक संभव हो, हिंदी में ही दिये जाये, उनकी भाषा सरल होनी चाहिए।

2. प्रशासनिक रिपोर्टों आदि को यथासंभव अंग्रेजी और हिंदी दोनो में प्रकाशित किया जाए।

3. जिन राज्य सरकारों ने हिंदी को अपनी राजभाषा के रूप में मान लिया है, उनके साथ पत्र व्यवहार हिंदी में किया जाये, परन्तु यदि संभव हो तो भारत सरकार द्वारा भेजे गये सभी पत्रादि के साथ उनका अंग्रेजी अनुवाद भी भेजा जाये ताकि सांविधानिक कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। अक्टूबर 1953 को आंध्र प्रदेश स्वतंत्र भारत का पहला भाषावार राज्य स्थापित हुआ। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप सरकार ने राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की जिससे 1956 में देश में भाषावर राज्यों का विभाजन संभव हुआ। इसी विदेश और अशांतिपूर्ण उत्कर्ष के समय संविधान के राजभाषा सम्बन्धी अनुच्छेद –344 (1) के अनुक्रम में राष्ट्रपति ने राजभाषा आयोग की नियुक्तियों की घोषणा की। कालान्तर में संविधान के अनुच्छेद 344 (4) के अनुसार राजभाषा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए 30 सदस्यों, लोकसभा के 20 और राज्यसभा के 10 निर्वाचित सदस्यों की एक संसदीय समिति का गठन किया गया। श्री गोबिन्द बल्लभ पंत की अध्यक्षता में डेढ़ वर्षो तक विचार–विमर्श के पश्चात् इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 8 फरवरी 1959 को राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत किया। राजभाषा आयोग की संस्तुतियों पर संसदीय समिति की राय को ध्यान में रखकर भारतीय संविधान के 344 अनुच्छेद खण्ड 6 द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने 27 अप्रैल 1960 को संघ की राजभाषा, उसके प्रवेश और प्रयोग के सम्बन्ध में आदेश जारी किया। जिसे राष्ट्रपति आदेश 1960 कहा गया। इन आदेशों के बाद सरकारी कार्यालय में सही अर्थो में हिंदी का कामकाज प्रारम्भ हुआ। ये आदेश ही भारत सरकार की राजभाषा नीति के आधार–स्तम्भ है क्योंकि इन आदेशों में प्रत्येक क्षेत्र को सम्मिलित कर लिया गया है। जैसे शब्दावली, प्रशासनिक संहिताओं और अन्य कार्यविधि साहित्य का अनुवाद, कर्मचारी वर्ग को हिंदी प्रशिक्षण, हिंदी प्रचार–पसार, सरकारी कार्यालयों में भर्ती आदि। इसी अनुक्रम में 20 मार्च 1961 को गृह मंत्रालय ने एक ज्ञापन द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण प्रशिक्षण और अनुवाद मंत्रालयों में निम्नलिखित कार्य करने का अनुरोध किया।

अप्रैल 1963 ई. में राजभाषा अधिनियम का प्रारूप निश्चित किया और उसे पारित कराने के लिए संसद के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह अधिनियम संसद द्वारा 3 मई 1963 में पारित किया गया। अधिनियम के मुख्य उपबन्धों के अनुसार संसद तथा राज्यों की विधान सभाओं की सभी कार्यवाहियों की भाषा क्रमशः हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं में होगी और उनका प्राधिकृत अंग्रेजी अनुवाद देना अनिवार्य होगा। इस अधिनियम की धारा 5, उप–धारा 2 के अनुसार संसद में सभी विधेयक अंग्रेजी और हिंदी में एक साथ प्रस्तुत किये जायेंगे, और दोनों समान रूप से प्रामाणिक माने जायेंगे।

राजभाषा अधिनियम द्वारा केन्द्र सरकार को यह अधिकार दिया गया था कि वह अधिनियम के प्रयोजनों को क्रियान्वित करने के लिए नियम बनाए। सन् 1976 में केन्द्र सरकार ने राजभाषा नियम बनाए। इन नियमों के अन्तर्गत भाषा के आधार पर राज्यों को क, ख, ग तीन वर्गो में विभाजित किया गया। तदनुसार, 1976 में संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया। इस समिति ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए 3 उपसमितियों का गठन किया, जिन्हे प्रश्नावली उपसमिति, विधि उपसमिति तथा साक्ष्य एवं आलेख उपसमिति का नाम दिया। 1976 में इन उपसमितियों ने निरीक्षण कार्य आरम्भ किया। संसदीय राजभाषा समिति ने 5 प्रतिवेदन प्रस्तुत किये हैं। प्रतिवेदन 1987, 1988, 1989 में प्रस्तुत किये गये।

संघ लोक सेवा आयोग में हिंदी के साथ ही साथ क्षेत्रीय भाषाओं को भी मान्यता दी जाये, उन्हे परीक्षाओं का माध्यम बनाया जाये, 1954 में कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया। बाद में राजभाषा आयोग और संसदीय कार्य समिति ने इसे मान लिया। 1979 में सिविल सेवाओं में भारतीय भाषाओं को माध्यम का स्थान मिल गया लेकिन अंग्रेजी का एक अनिवार्य पर्चा रखे जाने का विरोध अब तक चल रहा है। राज भाषा विभाग द्वारा कम्पयूटर में हिंदी कामकाज को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक योजनायें 25 जुलाई 1994 से शुरू की गई थी।

राजभाषा नीति का अनुपालन केवल अन्तःप्रेरणा के सहारे नही कराया जा सकता। इसके सम्बन्ध में स्पष्ट विधि निषेध लागू किये जाने चाहिए। जब तक प्रोत्साहन के साथ–साथ दण्ड विधान निर्धारित नहीं किया जायेगा, तब तक उनका अनुपालन सुनिश्चित नही हो पायेगा। अतः राजभाषा का स्वतंत्र सृजनात्मक स्वरूप स्थापित किया जाय ताकि वह कृत्रिम दुरूह और उलझाऊ झूठी भाषा न बने।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

जल संचय एवं जल प्रबंधन

अतुल कुमार सिंह, विनय कुमार मिश्र, संजय अरोड़ा, नवनीत शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है। इसका देश के सकल घरेलू उत्पाद में 17 प्रतिशत, निर्यात में 15 प्रतिशत व रोजगार में 60 प्रतिशत योगदान है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, प्रदूषण तथा अन्य कारकों के कारण कृषि उत्पादन हेतु उपयुक्त जल की उपलब्धता लगातार घटती जा रही है। अन्तर्राष्ट्रीय जल प्रबन्ध संस्थान (इम्मी) ने भविष्य वाणी की है कि वर्ष 2025 तक भारतवर्ष की 33 प्रतिशत जनसंख्या जल संकट से जूझ रही होगी। देश में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता, वर्ष 1947 में 6008 घन मी. से घटकर आज 2200 घन मी. हो गयी है और वर्ष 2025 तक यह घटकर 1450 घन मी. रह जाने की संभावना है। भारत विश्व के भूभाग का 2.4 प्रतिशत है और यहाँ विश्व के जल संसाधन का 4 प्रतिशत जल उपलब्ध है। इस भूभाग व जल संसाधन पर विश्व की 16.6 प्रतिशत आबादी व 15 प्रतिशत पशुधन आश्रित है। भारतवर्ष में औसतन 1150 मि.मि. वार्षिक वर्षा होती है। अधिकतर वर्षा जून से सितम्बर तक 4 मानसून के महीनों में होती है। कृषि के लिए जल की माँग 1985 में 500 लाख हे. मी. से बढ़कर 2050 में 700 लाख हे.मी. होने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है। इसी समय में गैर कृषि कार्यों में जल की माँग 70 लाख हे. मी. से 4 गुना बढ़कर 280 लाख हे.मी. हो जाएगी। दूसरी ओर, सरकार को सिंचाई (नहरों, तालाबों आदि) पर लोकधन का बड़ा हिस्सा खर्च करना पड़ रहा है, जबकि कृषकों को जहाँ सिंचाई के लिए सतही जल उपलब्ध नहीं है, वहाँ सिंचाई भूजल पर आश्रित होने से अपनी गाढ़ी कमाई को खर्च करना पड़ रहा है। अतः किसानों के जीवनस्तर को सुधारने के लिए जल का संचय, जल का समुचित प्रबंधन एवं जल की उत्पादकता को बढाना अनिवार्य है, अर्थात् जल की प्रत्येक बूँद से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त करना इसके लिए समग्र सिंचाई व्यवस्था को उपयुक्त बनाना होगा।

अगर किसी तरह से पूर्ण सिंचाई की व्यवस्था हो जाय तो भी देश की कृषि योग्य भूमि का 50 प्रतिशत भाग असिंचित ही रहेगा। अतः 30–40 प्रतिशत दक्षता पर जल संसाधनों का प्रयोग किया गया तो उपयोग हेतु उपलब्ध जल संसाधन भविष्य में सभी क्षेत्रों में जल की आपूर्ति करने में सक्षम नहीं होंगे। आज इस बात की आवश्यकता है कि हम ऐसी सिंचाई की पद्धति अपनायें जिसमें कम ऊर्जा लगे, जल का ह्रास कम हो, कम लागत लगे, कम समय लगे, सरल हो एवं जो छोटे व बंटे हुए खेतों के अनुकूल हो। अतः इस प्रकाशन में जल के संचयन, प्रबंधन एवं उत्पादकता बढ़ाने के कुछ उपाय और साधन सुझाए गये हैं।

वर्षा जल प्रबन्धन

मूलतः जल भूमि पर केवल वर्षा के रूप में आता है और तीन रूपों में (वर्षा जल, भूगर्भीय जल व सतही जल) उपलब्ध होता है। कब, कहाँ, कितनी वर्षा होगी इसका सही अनुमान लगाना कठिन कार्य है। इसी अनिश्चितता के कारण ज्यादातर वर्षा का पानी बेकार बह जाता है और उसका सदुपयोग नहीं हो पाता है। फिर भी वर्षा के आँकड़ों से काफी हद तक अच्छी जानकारी प्राप्त की जा सकती है जो इसके उचित प्रबन्धन में सहायक होती है। वर्षा जल का किसी भी क्षेत्र में उपलब्धता के अनुसार फसल के लिए अधिकतम उपयोग करने की आवश्यकता है। इसके लिए उस क्षेत्र की फसल और उसकी अवधि को ध्यान में रखकर जल के प्रबंधन की आवश्यकता है। इससे न केवल सिंचाई की लागत में कमी होगी बल्कि मृदा और उसके पोषक तत्व भी संरक्षित रहेंगे। वर्षा जल के प्रबन्धन में खेतों के चारों तरफ की मेड़े अत्यंत सहायक होती हैं। मेड़ की ऊँचाई को बढ़ाकर मानसून के दौरान वर्षा–जल को खेत में अधिक देर तक रोका जा सकता है। मेड़ की ऊँचाई जितनी ज्यादा होगी उतना ही कम वर्षा के जल की हानि होगी मुख्यतः यह देखा गया है कि कृषकों के खेतों के मेड़ की ऊँचाइयाँ 7 से. मी. से 15 से.मी. के बीच होती है। जबकि उत्तर प्रदेश में होनेवाली वर्षा के आँकडों का अध्ययन करने पर यह विदित होता है कि 7 से 15 से. मी. मेड़ की ऊँचाई अधिकतम वर्षा जल का उपयोग करने हेतु पर्याप्त नहीं हैं। आँकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में 20 से 25 से.मी. मेड़ की ऊँचाई एवं मोटाई 10 से 15 से. मी. रखने पर वर्षा जल का अधिकतम लाभ लिया जा सकता है।

इसके निम्न फायदे हैं :

1. इससे धान की फसल में अधिक से अधिक वर्षा के पानी का उपयोग होता है और सिंचाई के दूसरे स्रोतों पर निर्भरता कम होती हैं।
2. इससे अपवाह कम और मृदा एवं उसके पोषक तत्वों की हानि भी कम होती है।

3. इससे निचली भूमि में सिल्टेशन व जलजमाव कम होता है।

4. भूमि पर अधिक समय तक वर्षा–जल के होने से भूगर्भीय जल के स्तर को बढ़ावा मिलता है।

वर्षा जल उपलब्धता के अनुसार सुनियोजित फसल प्रबन्धन करके भी वर्षा जल का समुचित एवं कुशल प्रबंधन किया जा सकता है। खरीफ में बुआई और रोपनी के समय वर्षा–जल का होना अधिक महत्व रखता है। जैसा कि विदित है कि खरीफ में ज्यादातर वर्षा जून–जुलाई, अगस्त और सितम्बर माह में होती है। वर्षा जल की उपलब्धता और फसल की संवेदनशील अवस्थाओं को ध्यान में रखकर धान का बिचड़ा एवं फसल की बुवाई एवं रोपनी का जल निर्धारित करना चाहिए जिससे फसल की अधिकतम आवश्यकता वर्षा के जल से पूरी की जा सके एवं सिंचाई पर होने वाली लागत में कमी की जा सके। इससे फसल में पानी की आवश्यकता के साथ–साथ दूसरे स्रोतों से होने वाली सिंचाई के खर्च को कम किया जा सकता है। वर्षा जल उपयोग के साथ यह भी आवश्यक है कि जल निकासी जरूरत होने पर अवश्य किया जाये। जल निकासी कृषि कार्यों को सुचारू रूप से करने हेतु एक अहम् प्रक्रिया है, जहाँ वर्षा जल के अधिकतम उपयोग के साथ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि धान के खेतो में मेड़ों की ऊँचाइयाँ बढ़ाने पर जलमग्नतानुसार ही वर्षा–जल को धान के खेतों में रोका जाए एवं उससे ज्यादा होने पर जल की निकासी की भी व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि लम्बे समय तक जलमग्नता से धान के पौधे गलने लगते हैं।

जल संचय

प्रायः यह देखा गया है कि काफी मात्रा में वर्षा जल अपवाह के रूप में बह जाता है और कृषि कार्य हेतु उपयोगी नहीं रहता। अतः वर्षा जल का संचय हेतु जलाशय का निर्माण अत्यंत ही प्रभावी तरीका है। इसे अपनाने के लिए किसान स्वयं और क्षेत्र के साथियों को मिलाकर तैयार कर सकते हैं। और व्यक्तिगत या सामूहिक रूप में छोटे–छोटे प्रक्षेत्र जलाशयों का निर्माण कर सकते हैं। इससे न केवल वर्षा जल को एकत्रित करके सूखे के समय सिंचाई बल्कि उस क्षेत्र के भूगर्भीय जल के स्तर को भी बढ़ाया जा सकता है। जलाशय, जो जमीन उपजाऊ नहीं है या जिस पर फसलोत्पाद से फायदा नहीं होता है उस पर बनाया जाये तो और भी उपयुक्त होगा एवं जल संचय के साथ ही साथ इसमें मछली पालन भी किया जा सकता है। यह तकनीक अपनाने के पूर्व उस क्षेत्र की वर्षा–जल की मात्रा, वाष्पीकरण व रिसाव के कारण होने वाली हानि की जानकारी भी जरूरी है। इसमें अधिक से अधिक किसानों के सहयोग से यह तरीका अत्यंत सफल हो सकता है। इसलिए जल उपभोक्ता समिति, स्वंय सहायता समूह और ऐसे दूसरे दल यह काम प्रभावी रूप से कर सकते हैं। प्रक्षेत्र जलाशयों को निम्न उपयोगों में लाया जा सकता है।

1. **सिंचाई** : खरीफ या रबी के मौसम में अनुकूल वर्षा न होने पर प्रायः यह देखा गया है कि फसलों को नुकसान पहुँचता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में फसलों को प्रक्षेत्र जलाशयों में उपलब्ध जल द्वारा क्रान्तिक अवस्था पर जीवनदायी सिंचाई प्रदान कर होने वाले नुकसान में कमी लायी जा सकती है।

2. **पेयजल** : प्रक्षेत्र जलाशयों में उपलब्ध जल पशुओं हेतु पेयजल के रूप में भी काम आ सकता है।

3. **मछली पालन** : प्रक्षेत्र जलाशयों का समयानुसार मछली पालन हेतु उपयोग करने या अतिरिक्त आय भी प्राप्त की जा सकती है।

प्रचलित सिंचाई पद्धति

प्रायः यह देखा गया है कि फसलों की सिंचाई करते समय आवश्यकता से अधिक जल का प्रयोग किया जाता है, जिससे फसलों पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इसका सबसे बड़ा कारण सही सिंचाई विधि का प्रयोग में न लाना है। यदि फसल के आधार पर उपयुक्त सिंचाई विधि का प्रयोग किया जाये तो सिंचाई में प्रयोग होने वाले जल एवं ऊर्जा की बचत किया जा सकता है। इसके लिए हमें सिंचाई विधियों का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है।

1. पृष्ठ या सतही सिंचाई 2. दाबीय सिंचाई।

पृष्ठ या सतही सिंचाई यह वह विधि है जिसमें स्रोत से सिंचाई जल, नालियों या पाईप के माध्यम से खेत तक लाया जाता है, एवं उसके उपरांत भूमि के सतह का उपयोग करते हुए खेत के एक छोर से दूसरे छोर तक सिंचाई जल को प्रवाहित करते हैं। इसके निम्न प्रकार हैं।

1. आप्लावन
2. रोक द्रोणी सिंचाई
3. बरहा पट्टी सिंचाई
4. कूंड सिंचाई

1. **आप्लावन सिंचाई** : इस विधि में मुख्य सिंचाई नाली द्वारा सिंचाई जल खेत के सतह पर प्राकृतिक ढाल में छोड़ा जाता है। प्रायः इस विधि का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। परन्तु अन्य विधियों की तुलना में इस विधि की सिंचाई दक्षता सबसे कम होती है।

2. **रोक द्रोणी सिंचाई :** इस विधि में खेत को मेड़ों द्वारा छोटे–छोटे लगभग समतल हिस्सों में बाँट दिया जाता है। जिन्हें चेक कहते हैं। इस विधि का विभिन्न फसलों में उपयोग किया जाता है जिसमें धान की फसल प्रमुख है। चेक की लम्बाई चौडाई सिंचाई जल के स्राव दर पर निर्भर करती है।

3. **बरहा पट्टी या बार्डर :** इस विधि में प्रक्षेत्र को क्रम के समानान्तर पट्टियों या क्यारियों में हल्की मेड़ों द्वारा बाँट देते हैं जिन्हें बरहे या बार्डर कहते हैं। सिंचाई जल पट्टियों के ऊपरी सिरे पर छोडा जाता है जो धीमी गति से खेत के दूसरे सिरे की ओर जाता है। इस विधि द्वारा घनी फसलों मुख्यतः गेहूँ, तिलहन, दलहन आदि की सिंचाई दक्षता पूर्वक की जा सकती है। पट्टियों को आवश्यकतानुसार ढाल देना होता है जो 0.1 से 0.6 प्रतिशत तक रखी जा सकती है जिससे सिंचाई जल ऊपरी छोर से नीचे जा सकें। पट्टियों की न्यूनतम चौड़ाई 3 मी. रखी जानी चाहिए 10 से 12 मी. वाली पट्टियाँ सुविधा पूर्वक प्रयोग की जा सकती हैं। पट्टियों की चौड़ाई सिंचाई जल स्राव के दर पर निर्भर होता है। पट्टियों की लम्बाई मृदा के अन्तःसरण दर तथा ढाल प्रवीणता पर निर्भर होती है।

4. **कूंड सिंचाई :** यह विधि उन फसलों के लिए उपयुक्त है जो पंक्तियों में बोयी जाती है। जैसे सब्जियाँ आदि इसमें सिंचाई फसल की पंक्तियों के मध्य बनायी गयी कूंडो में की जाती हैं आमतौर पर छोटे पौधे के लिए छोटी एवं बड़े पौधे के लिए बड़े कूंडो का उपयोग करते हैं। सब्जियों के लिए 7 से 12 सेमी. गहरी कूंड बागीचों के लिए 20 से 30 सेमी. रखी जा सकती है। आलू इत्यादि के लिए कूंडे 25 सेमी. चौडी और 8 सेमी. गहरी रखी जाती है।

दाबीय सिंचाई

स्प्रिंकलर एवं ड्रिप सिंचाई प्रणालियाँ

स्प्रिंकलर एवं ड्रिप प्रणाली, दाबीय (Pressurized) सिंचाई प्रणाली के प्रकार है। इन विधियों में सिंचाई हेतु जल स्रोत से खेल तक प्लास्टिक पाईपों के माध्यम से पहुँचाया जाता है। जो कि मुख्यतः किसानों द्वारा प्रयोग की जाने वाली सतही विधियों के विपरीत है। दाबीय विधियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती है;

1. स्प्रिंकलर (फुव्वारा) सिंचाई प्रणाली,

2. सूक्ष्म (माइक्रो) सिंचाई प्रणाली।

स्प्रिंकलर (फुव्वारा) सिंचाई प्रणाली

स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली सिंचाई की वह विधि है जिसमें पाईपों द्वारा जल स्रोत से लेकर खेत तक पहुँचाया जाता है एवं खेत में विभिन्न प्रकार के स्प्रिंकलर नॉजलों का प्रयोग कर फसलों के ऊपर से बारिशनुमा सिंचाई की जाती है। ये प्रणाली उन फसलों के लिए ज्यादा कारगर एवं सस्ती है जिन फसलों की बुवाई नजदीक (पौध से पौध की दूरी कम) की जाती हैं जैसे कि गेहूँ, दलहन, तिलहन इत्यादि। मूलतः इस प्रणाली में उपयोग में आने वाले स्प्रिंकलर नॉजल कम से कम 10–12 मीटर या उससे अधिक दूरी तक जल फेंकने की क्षमता रखते हैं। स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली में अन्य दाबीय सिंचाई प्रणालियों के सिंचाई हेतु अधिक दाब (Pressure) की जरूरत पड़ती है। इस कारण अन्य दाबीय सिंचाई विधियों के मुकाबले सिंचाई प्रणाली को चलाने में लगने वाली ऊर्जा की खपत तथा सिंचाई प्रणाली को उपयुक्त दाब (Pressure) की आवश्यकता अधिक होती है।

यदि हम स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली से सिंचाई करें तो ऐसा देखा गया है कि सतही विधियों के मुकाबलें स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली द्वारा 30–50 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है, साथ ही साथ जल की बचत के कारण कुल लगने वाली ऊँर्जा पर भी खर्च सतही विधियों के मुकाबले कम आता है। करीब–करीब समस्त दाबीय सिंचाई विधियों द्वारा खाद एवं दवा का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जिसके लिए जल स्रोत के बाद एक फर्टीलाइजर टैंक लगाया जाता है जिसमें आवश्यकतानुसार खाद एवं दवा का घोल बनाकर सिस्टम में सिंचाई हेतु प्रवाहित होने वाले जल के साथ ही खाद एवं दवा को प्रवाहित किया जा सकता है। इससे उपयुक्त मात्रा में खाद एवं दवा सीधे फसलों को मिलती है। जिसका करीब–करीब शत–प्रतिशत फसलों द्वारा उपयोग होता है। ऐसा करने पर ये देखा गया है कि करीब 25–50 प्रतिशत खाद एवं दवा के खर्च में सतही सिंचाई विधियों के मुकाबले कमी आती हैं

अतः उपरोक्त बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली का प्रयोग यदि कारगर रूप से किया जाए तो फसलों को पैदा करने पर होने वाले खर्च में सतही विधियों के मुकाबले कमी आएगी। साथ ही साथ जब फसलों को उपयुक्त मात्रा में जल, खाद, दवा इत्यादि मिलेगी तो उनके पैदावार एवं गुणवत्ता मे भी वृद्धि होगी।

स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली पर लगने वाला औसत खर्च करीब रू. 30–40 हजार प्रति हे. आता है। जिसमें इस प्रणाली को चलाने के लिए ऊँर्जा स्रोत का खर्च अलग से करना पडता है।

सूक्ष्म (माइक्रो) सिंचाई प्रणाली

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली दाबीय सिंचाई प्रणालियों का एक दूसरा प्रकार है जो ऐसी फसलों के लिए ज्यादा उपयुक्त है। जहाँ फसलें लाईन में और दूर–दूर लगाई

जाती है। ये प्रणाली विभिन्न तरह की होती है जिसमें मुख्यतः ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग मुख्य तौर पर देखा गया है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली में भी जल स्रोत से खेत तक एवं खेत से पौधों तक सिंचाई जल को हम पाईपों एवं नॉजलों के माध्यम से पहुँचाते हैं।

ड्रिप सिंचाई को बूँद–बूँद या टपक सिंचाई प्रणाली भी कहते हैं। क्योंकि इस प्रणाली के द्वारा पौधों को सिंचाई का जल एक बार में ही न दे करके कई बार दिया जाता है। इस कारण इस प्रणाली द्वारा जल की बचत 90 प्रतिशत तक की जा सकती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली मुख्यतः दो प्रकार की होती है।

1. सतही (Surface) ड्रिप सिंचाई प्रणाली,
2. सब सतही (Sub-Surface) ड्रिप सिंचाई प्रणाली (टपक सिंचाई प्रणाली या पद्धति)।

सर्फेस ड्रिप सिंचाई प्रणाली, की मुख्य पाईपें सतह के नीचे रहती है, एवं खेत में लैटरल पाईप सतह के ऊपर पौधों की लाईन में लगायी जाती है। इन लैटरल पाईपों पर आवश्यकतानुसार दूरी पर विभिन्न प्रकार के नॉजल लगाए जाते हैं, जिनके द्वारा सिंचाई हेतु जल पौधों के बिल्कुल निकट दिया जाता है। ये प्रणाली सब्जियों, फलदार वृक्षों इत्यादि के लिए काफी उपयोगी होती है।

सब सर्फेस ड्रिप सिंचाई प्रणाली में भी मुख्य पाईपें सतह के नीचे होती है। तथा लैटरल पाईपें जो कि खेत के अंदर होती है वे भी सतह से 6–9 ईंच नीचे लगायी जाती है। मुख्यतः इनका इस्तेमाल ऐसी फसलों के लिए किया जाता है जो फसलें लाईनों में तो लगी होती है लेकिन उनके आपस की दूरियाँ कम होती हैं जैसे की गन्ना। ऐसा करने से सिंचाई प्रणाली पर होने वाले खर्च में अच्छी खासी बचत की जा सकती है।

जैसा कि विदित है कि दाबीय सिंचाई प्रणालियों द्वारा खाद एवं दवाओं का भी उपयोग सिंचाई प्रणाली के माध्यम से किया जा सकता है, तो उपरोक्त दोनों सिंचाई विधियों में हम सिंचाई प्रणाली द्वारा पौधों को आवश्यकतानुसार खाद एवं दवा दे सकते हैं। ऐसा करने पर ये देखा गया है कि खाद एवं दवा के उपयोग में 30–50 प्रतिशत तक आसानी से बचत की जा सकती है। साथ ही साथ इन सिंचाई प्रणालियों द्वारा सिंचाई के साथ यदि हम खाद एवं दवा का भी प्रयोग करते हैं तो सतही विधियों के मुकाबले श्रमिकों पर लगने वाले खर्च में भी 30–50 प्रतिशत तक की कमी देखी गयी है।

अनुमान के अनुसार सूक्ष्म प्रणालियों को चलाने हेतु कम दाब (Pressure) की आवश्यकता होती हे। अतः इन सिंचाई प्रणालियों में अन्य दाबीय एवं सतही सिंचाई प्रणालियों के मुकाबले 50 प्रतिशत तक की ऊर्जा में भी बचत की जा सकती है। साथ ही साथ कम दाब (Pressure) की आवश्यकता होने ऊर्जा स्रोत पर भी होने वाले खर्च में भी कमी आती है।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों पर लगने वाला खर्च करीब 35 हजार से 1 लाख प्रति हे. रूपये तक आ सकता है जो कि इस पर निर्भर करता है कि पौधे की लाईन से लाईन एवं पौधे की पौधे से दूरी कितनी है। यदि दूरी ज्यादा है तो खर्च कम आएगा एवं दूरी कम है तो खर्च ज्यादा आएगा।

करीब–करीब समस्त दाबीय सिंचाई प्रणालियों को लगाने हेतु सरकार द्वारा किसानों को प्रोत्साहित किया जा रहा है जिससे कि फसलों को पैदा करने में आने वाले खर्च को कम किया जा सके और किसान की आमदनी को बढ़ायी जा सके। इसके लिए सरकार के विभिन्न विभागों एवं बैंको द्वारा सब्सिडी का प्रावधान किसानों के लिए दाबीय सिंचाई प्रणालियों को लगाने हेतु है। जो कि अपने निकट के जिला कृषि विभाग, ब्लॉक, नेशनल हॉर्टीकल्चर इत्यादि से प्राप्त कि जा सकती है।

धान की फसल में सिंचाई के तरीके

धान के उत्पादन में जल का काफी महत्व होता है। **एक किलो ग्राम धान पैदा करने के लिए लगभग 1800 से 4000 ली. जल की आवश्यकता होती है।** धान के उत्पादन में लगने वाले जल की मात्रा में से काफी मात्रा मृदा की सतह से होने हुए भूगर्भीय जल में मिल जाता है जिससे भूगर्भीय जल के स्तर में वृद्धि होती है। यह वृद्धि उन क्षेत्रों के लिए घातक होती है, जहाँ पहले से ही जलस्तर ऊँचा है। ऐसे क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि जल जमाव से गस्त हो जाती है। अतः इन समस्याओं के निवारण हेतु उपयुक्त सिंचाई पद्धति, जल की मात्रा एवं सिंचाई के उपयुक्त समय का ज्ञान होना आवश्यक है। इन सबके लिए पहले हमें धान की विभिन्ना अवस्थाओं एवं आवश्यकताओं का ज्ञान होना चाहिए।

धान की फसल की अवस्थाएँ

धान की फसल का जीवनचक्र विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है एवं विभिन्न अवस्थाओं में जल की आवश्यकताएँ भी बदलती रहती हैं। तालिका–1: धान की मुख्य अवस्थाएँ

अवस्था	समय
बीजावस्था से अंकुरण	एक सप्ताह
पौध अवस्था	तीन से चार सप्ताह
कल्ले निकलने की अवस्था	चार से पाँच सप्ताह
बाली से फूलावस्था	चार से पाँच सप्ताह
दाना बनने से प्रौढ़ावस्था	चार से पाँच सप्ताह

1. वनस्पतिक अवस्था – इस अवस्था में अंकुरण, कल्ले निकलना एवं पौधों का बढ़ना शामिल है।
2. प्रजनन अवस्था– बाली निकलने से फूल निकलने तक की अवस्था को प्रजनन अवस्था कहते हैं।
3. दाना बनना एवं पकना– यह अवस्था दूध बनने से उसके दाना बनने एवं पकने की अवस्था तक होती है।

उपरोक्त अवस्थाओं का समय उस जगह की जलवायु, तापमान, नमी, मृदा फसल की प्रजाति आदि पर निर्भर है। विभिन्न धान की प्रजातियों में इन अवस्थाओं को विभिन्न अन्तरालों पर देखा गया है।

धान की विशिष्टताएँ एवं आवश्यकताएँ

एक पुरानी कहावत है कि ''धान का उत्पादन उन क्षेत्रों में बखूबी किया जा सकता है जिन क्षेत्रों में जलजमाव या अधिक नमी के कारण दूसरी फसलों का उत्पादन सम्भव नहीं है''। धान को अर्द्ध जलीय फसल की उपाधि भी दी जाती है। इस कारण धान की विभिन्न अवस्थाओं में जल की उपलब्धता का अत्यधिक ध्यान रखना पड़ता है। आवश्यकता के अनुरूप जल न उपलब्ध होने से धान की उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है। और यह बात आवश्यकता से अधिक जल देने के संबंध में भी सत्य है। वनस्पतिक अवस्था में पानी की कमी से पौधों की बढ़वार व कल्लों के निकलने में कमी आती है। फूलावस्था से पूर्व, जल की कमी से धान की बाली पर प्रभाव पड़ता है, जिसका सीधा प्रभाव उपज पर होता है। प्रजनन अवस्था में जल की कमी का असर धान की उपज पर सबसे ज्यादा देखा गया है। अतः यह अवस्था अच्छी पैदावार लेने के लिए काफी महत्व रखती है। क्योंकि जल की कमी से बालियों का विकास पूर्णरूपेण नहीं हो पाता।

धान में जल की आवश्यकता

धान की फसल उगाने के दौरान नर्सरी उगाना, खेत की तैयारी, धान की रोपाई से धान का पकना आदि धान के उत्पादन में कुछ महत्वपूर्ण गतिविधियाँ हैं। इन विभिन्न गतिविधियों हेतु जल की आवश्यकता भी भिन्न होती है। विभिन्न शोधों एवं अनुभवों से यह देखा गया है कि इन सब गतिविधियों के दौरान **भारत में धान में कुल 90 से. मी से 200** से. मी. जल की आवश्यकता होती है जो मृदा के प्रकार एवं उसकी गुणवत्ता पर आधारित होती है।

धान में सिंचाई की विभिन्न पद्धतियाँ

धान में सिंचाई हेतु विभिन्न पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है। ये पद्धतियाँ अलग–अलग जगहों की जलवायु, मृदा, भूगर्भीय जलस्तर आदि के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है। मुख्यतः निम्न पद्धतियों का प्रयोग देखा गया है।

1. निरंतर जलमग्नता
2. क्रमानुसार जलमग्नता
3. आवश्यकता अनुसार समय–समय पर जलमग्नता

निरंतर जलमग्नता

इस पद्धति में धान के खेत में 5 से 10 से.मी. जल स्तर निरन्तर रखा जाता है। इस पद्धति से खरपतवार का प्रकोप धान की फसल में काफी हद तक सीमित हो जाता है। जल की मात्रा, मृदा के प्रकार पर भी निर्भर करती है। यदि मृदा बलुई या हल्की होती है। तो जल की आवश्यकता अधिक होती है और यदि मृदा मटियार या भारी होती है तो जल की आश्यकता कम होती है। जल की मात्रा क्षेत्र–विशेष की जलवायु एवं भूगर्भीय जलस्तर पर भी निर्भर करती है। यदि वर्षा–बाहुल्य क्षेत्र है तो जल की आवश्यकता दूसरे स्रोतों से कम हो जाती है। इस पद्धति को कम वर्षा वो क्षेत्रों में अपनाना लाभदायक नहीं होता है। क्योंकि निरंतर जल की आपूर्ति में काफी खर्च आता है साथ ही यह हल्की मृदा या बलुई क्षेत्रों के लिए भी अधिक उपयुक्त नहीं है। इस पद्धति में जल की काफी मात्रा व्यर्थ होती है जिससे सिंचाई की लागत में वृद्धि होती है।

क्रमानुसार जलमग्नता

इस पद्धति में धान के खेत में विभिन्न अंतरालों में 5 से 7 से.मी. का जलस्तर रखा जाता है। साधारणतया खेती की सतह पर पानी सूख जाने के 3 दिन के अंतराल पर पुनः 5 से 7 सेमी. के जलस्तर बनाये रखने हेतु सिंचाई की जाती है। इस पद्धति का लाभ उठाने के लिए खेत में जल के सूख जाने के उपरान्त पुनः सिंचाई कर दें। निरन्तर जलमग्नता वाली पद्धति की अपेक्षा इस पद्धति को अपनाने में सिंचाई में लगने वाले लागत कम हो जाती है और फसल उत्पादन में कमी भी नहीं आती है।

आवश्यकतानुसार समय–समय पर जलमग्नता

इस पद्धति में धान में सिंचाई द्वारा जलमग्नता विशेष अवस्थाओं में की जाती है एवं बाकी के समय में धान के खेत में केवल आवश्यक नमी बनाये रखने की जरूरत होती है। विभिन्न अवस्थाओं में बीजांकुरण, वनस्पति, प्रजनन एवं पकने की अवस्थाएँ काफी महत्व रखती है। इन अवस्थाओं में सिंचाई निम्न प्रकार से करनी चाहिए।

1. बीजांकुरण अवस्था–इस अवस्था में खेत की सतह पूर्णतया नम होनी चाहिए जलमग्नता की कोई जरूरत नहीं होती है।
2. वनस्पति अवस्था–इस अवस्था के दौरान धान के खेत में 3 से 5 सेमी.

का जलस्तर रखा जाता है और इसे धान रोपने से लेकर 3 से 4 सप्ताह तक किया जाना चाहिए। इससे कल्लों की संख्या में कमी नहीं होती है।

3. प्रजनन अवस्था–कल्ले निकलने के उपरान्त फूल निकलने तक की अवस्था जल की आवश्यकता के लिहाज से बहुत महत्वपूर्ण अवस्था होती है। इस अवस्था के दौरान जल की कमी धान के उत्पादन पर अत्यधिक असर डालती है। इस अवस्था के दौरान धान के खेत में 5 से 7 सेमी. जलस्तर करीब तीस दिनों (धान बाली अवस्था से 20 दिन पहले एवं फूलावस्था के 10 दिन बाद) तक रखा जाता है।

4. धान के पकने की अवस्था या दान बनना–इस अवस्था में धान के खेत की सतह पर जलस्तर रखने की कोई आवश्यकता नहीं होती, परन्तु धान के खेत के ऊपरी सतह को निरंतर नम रखा जाना चाहिए। इस अवस्था के दौरान धान कटने के 15 से 17 दिन पहले तक ही सिंचाई भूमि की सतह को नम रखने के लिए करें। इसके बाद सिंचाई करने पर उसका धान की फसल के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि धान के गिरने से उसकी गुणवत्ता में कमी आती है। एवं सिंचाई की लागत में निरन्तर वृद्धि होती है।

गेहूँ की फसल में सिंचाई

गेहूँ रबी की मुख्य फसल है। इसकी बुवाई का उचित समय 15 नवम्बर से 10 दिसम्बर तक है। गेहूँ बुवाई के 21 से 25 दिनों के बीच पहली सिंचाई, 55 से 60 दिनों के बीच दूसरी सिंचाई, 85 से 90 दिनों पर तीसरी सिंचाई तथा 105 से 110 दिनों के बीच चौथी सिंचाई करनी पड़ती है। गेहूँ की फसल में सिंचाई कई तरीकों से की जा सकती है। सिंचाई विधि का चुनाव खेत की आकृति, की उपलब्धता पर निर्भर करता है। अधिकतर किसान गेहूँ की फसल में सिंचाई बोर्डर विधि द्वारा करते हैं। गेहूँ में सिंचाई हेतु विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान मुख्य है। गेहूँ की फसल की मुख्य अवस्थायें निम्न हैं।

तालिका–2: गेहूँ की मुख्य अवस्थाएँ

क्र. सं.	अवस्था	समय
1.	चंदेरी जड़ अवस्था	बुवाई के 21 दिन के बाद
2.	कल्ले निकलने की अवस्था	बुवाई के 42 दिन के बाद
3.	पोती आने की अवस्था	बुवाई के 60 दिन के बाद
4.	बालियाँ आने की अवस्था	बुवाई के 80 दिन के बाद
5.	दानों में दूध बनने की अवस्था	बुवाई के 95 दिन के बाद
6.	पकने की अवस्था	बुवाई के 115 से 120 दिन के बाद

सिंचाई की दृष्टि से उपर बतायी गयी अवस्थाओं में चंदेरी जल अवस्था (RI) अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है। ऐसा देखा गया है कि इस अवस्था पर समय से सिंचाई न देने से गेहूँ की उपज सबसे अधिक प्रभावित होती है।

तालिका–3: गेहूँ में सिंचाई प्रबंधन

सिंचाई उपलब्धता	फसल अवस्था (दिन) और सिंचाई				
	चंदेरी जड़ 20 दिन	कल्ले निकलने 35 से 40 दिन	छोटे कल्ले 55 से 60 दिन	बालियां आना 75 से 80 दिन	दानों में दूध बनना 90 से 95 दिन
1.	×	पहली	×	×	×
2.	×	पहली	×	दूसरी	×
3.	पहली	दूसरी	×	×	तीसरी
4.	पहली	दूसरी	तीसरी	×	चौथी
5.	पहली	दूसरी	तीसरी	चौथी	पॉचवी

आमतौर पर गेहूँ की फसल में 4 से 5 सिंचाई की आवश्यकता होती है परन्तु सिंचाई की उपलब्धता को देखकर किस अवस्थाओं पर सिंचाई देना है इसका निर्णय आवश्यक हो जाता है। नीचे दी गयी तालिका में सिंचाई उपलब्धता के अनुसार किन अवस्थाओं पर सिंचाई दिया जाना चाहिए इस विषय में सुझाव दिया गया है।

बॉर्डर विधि से सिंचाई

बॉर्डर विधि में सर्वप्रथम खेत को इस प्रकार से समतल किया जाना चाहिए कि सतह ऊँची–नीची न हो एवं खेत की लम्बाई में एक निश्चित ढाल हो। बोर्डर विधि द्वारा हर तरह की मिट्टी (सिवाय बहुत अधिक या बहुत कम पानी सोखने वाली मिट्टी) में सिंचाई की जा सकती हैं। इस विधि में खेत की ढाल 100 मी. लम्बाई में 5 से 20 सेमी. (0.05 से 2 प्रतिशत) व मिट्टी के पानी सोखने की दर 0.25 से 7.5 सेमी. प्रति घंटा के बीच

होना चाहिए। बलुई मिट्टी में खेत का ढाल 0.25 से 0.65 प्रतिशत, दोमट मिट्टी में 0.2 से 0.4 प्रतिशत व केवल मिट्टी में 0.1 से 0.25 प्रतिशत होना चाहिए। फसल बोने के पश्चात् निश्चित दूरी 6 मी. पर सिंचाई नाली के मुँह के लम्बवत, लम्बाई में 22 सेमी. से 30 सेमी. (9 इंच से एक फुट) ऊँची मेड़ें बना देनी चाहिए। बॉर्डर की चौडाई (दो बॉर्डर के बीच की दूरी), सिंचाई नाली में उपलब्ध जल बहाव दर, खेत का ढाल और खेत की लम्बाई एवं वांछित सिंचाई की मात्रा पर निर्भर करती है। बोर्डर की चौड़ाई 3 मी. से 15 मी. के बीच हो सकती है, परन्तु खेतें के आकार, आकृति एवं जल प्रबंधन की दृष्टि से बॉर्डर की चौडाई 6 मी. सर्वथा उचित लगती है।

समतल व ढालू खेत में बॉर्डर द्वारा सिंचाई

प्रक्षेत्र में बार्डर का आकार और प्रत्येक बार्डर में जल बहाव की दर निम्न प्रकार रखी जा सकती है –

उदाहरणतया, यदि खेत की लम्बाई 50 मीटर है, परन्तु सिंचाई नाली में जल बहाव की दर 24 लीटर प्रति सेकेण्ड है, तो एक बार में दो बोर्डर में सिंचाई दी जा सकती है।

तालिका –4: बार्डर विधि हेतु जल स्त्राव दर के अनुसार खेतकी लम्बाई एवं चौडाई

खेत की लम्बाई	बार्डर की चौडाई	जल बहाव की दर
50 मीटर	6 मीटर	12 ली. प्रति से.
100 मीटर	6 मीटर	18 ली. प्रति से.
150 मीटर	6 मीटर	24 ली. प्रति से.

कट आफ अनुपात का अनुसरण

सिंचाई करते समय बोर्डर की कुल लम्बाई में तीन चौथाई से कुछ अधिक भाग सिंचित हो जाये तो सिंचाई नाली का पानी बोर्डर से बन्द करके अगले बोर्डर में खोल देना चाहिए। इस प्रकार शेष एक चौथाई भाग बोर्डर की सतह पर खड़े पानी के बहकर जाने से भर जायेग। ऐसा न करने से पानी पूरे खेत तक पहुँच जायेगा तथा खेत में ज्यादा पानी भर जायेगा। जिसके परिणामस्वरूप अंतिम हिस्से की फसल पीली पड़ना, जल स्तर बढ़ना, पौष्टिक तत्वों की कमी जैसी समस्यायें देखने को मिलती हैं। आवश्यकता से अधिक पानी भरना फसल की बढ़ोत्तरी में बाधक होगा। बोर्डर का उपरोक्तानुसार आकार एवं कट आफ अनुपात अपनाकर इस विधि में सिंचाई की मात्रा 3 इंच (7.5 सेमी.) तक दी सकती है।

सारांश

सिंचाई जल की उपलब्धता में धीरे–धीरे कमी आती जा रही है। अतः आवश्यकता है हमें ऐसी तकनीकियों का कृषि में समावेश करना जिससे कि वर्षा से प्राप्त जल का सुचारू रूप से संचय किया जा सके या इसका उपयोग कर भूगर्भ जल के स्त को बढ़ाया जा सके। साथ ही साथ उपलब्ध सीमित जल का सिंचाई हेतु दक्षता पूर्वक उपयोग किया जाना चाहिए जिससे कि सिंचित क्षेत्रफल को बढ़ाया जा सके। यह प्रयास तभी सफल हो सकते हैं जब अधिक से अधिक वर्षा जल का सदुपयोग एवं भविष्य के लिए संचय किया जा सके एवं सिंचाई प्रक्रिया में दक्ष तकनीकियों का उपयोग कर जल उत्पादकता बढ़ाई जाये।

सन्दर्भ

भारद्वाज एस.पी., बाबू राम, जुयाल जी.पी. एवं ध्यानी एस. के., 2008 भूमि संरक्षण और जल समेत प्रबन्ध भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

पौधों की बढ़वार के लिए पोषक तत्वों का महत्व

अजय कुमार साह एवं एस.एन. सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अुनसंधान संस्थान, लखनऊ

पौधों के विकास में पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अंकुरण के पश्चात जमीन के नीचे तना के छोर पर जड़ निकल आते हैं जो मिट्टी से पानी एवं पोषक तत्व, वायु से कार्बन डाई आक्साइड तथा सूर्य से प्रकाश ऊर्जा लेकर अपने विभिन्न भागों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार पौधों का विकास होता है तथा अपना जीवन चक्र पूरा करता है। पौधों की आवश्यकतानुसार पोषक तत्वों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है जो इस प्रकार है–

1. **मुख्य पोषक तत्व–** नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश।
2. **गौण पोषक तत्व–** कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं गन्धक।
3. **सूक्ष्म पोषक तत्व–** लोहा, जिंक, कापर, मैंगनीज, मालिब्डेनम, बोरान एवं क्लोरिन।

आवश्यक पोषक तत्व एवं उनके कार्य

1. पौधों के सामान्य विकास एवं वृद्धि हेतु कुल 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इनमें से किसी एक पोषक तत्व की कमी होने पर पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और भरपूर फसल नहीं मिलती।
2. कार्बन, हाइड्रोजन व आक्सीजन को पौधे हवा एवं जल से प्राप्त करते हैं।
3. नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटैशियम को पौधे मिट्टी से प्राप्त करते हैं। इनकी पौधों को काफी मात्रा में जरूरत रहती है। इन्हें प्रमुख पोषक तत्व कहते हैं।
4. कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं गंधक को पौधे कम मात्रा में ग्रहण करते है। इन्हें गौण अथवा द्वितीयक पोषक तत्व कहते हैं।
5. लोहा, जस्ता, मैगनीज, तांबा, बोरोन, मोलिब्डेनम और क्लोरीन तत्वों की पौधों को काफी मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। इन्हे सूक्ष्म पोषक तत्व कहते हैं।

पोषक तत्वों के कार्य

नाइट्रोजन

1. सभी जीवित ऊतकों यानि जड़, तना, पत्ती की वृद्धि और विकास में सहायक है।
2. क्लोरोफिल, प्रोटोप्लाज्मा, प्रोटीन और न्यूक्लिक अम्लों का एक महत्वपूर्ण अवयव है।
3. पत्ती वाली सब्जियों और चारे की गुणवत्ता में सुधार करता है।

फास्फोरस

1. पौधों के वर्धनशील अग्रभाग, बीज और फलों के विकास हेतु आवयक है। पुष्प विकास में सहायक है।
2. कोशिका विभाजन के लिए आवश्यक है। जड़ों के विकास में सहायक होता है।
3. न्यूक्लिक अम्लों, प्रोटीन, फास्फोलिपिड और सहविकारों का अवयव है।
4. अमीनो अम्लों का अवयव है।

पोटेशियम

1. एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ाता है। ठण्डे और बादलयुक्त मौसम में पौधों द्वारा प्रकाश के उपयोग में वृद्धि करता है, जिससे पौधों में ठण्डक और अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है।
2. कार्बोहाइड्रेट के स्थानांतरण, प्रोटीन संश्लेषण और इनकी स्थिरता बनाये रखने में मदद करता है।
3. पौधों की रोग प्रतिरोधी क्षमता में वृद्धि होती है ।
4. इसके उपयोग से दाने आकार में बडे हो जाते हैं और फलों और सब्जियों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

कैल्शियम

1. कोशिका भित्ति का एक प्रमुख अवयव है, जो सामान्य कोशिका विभाजन के

लिए आवश्यक होता है।

2. कोशिका झिल्ली की स्थिरता बनाये रखने में सहायक होता है।
3. एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
4. पौधों में जैविक अम्लों को उदासीन बनाकर उनके विषाक्त प्रभाव को समाप्त करता है।
5. कार्बोहाट्रेड के स्थानांतरण में मदद करता है।

मैग्नीशियम

1. क्लोरोफिल का प्रमुख तत्व है, जिसके बिना प्रकाश संश्लेषण (भोजन निर्माण) संभव नहीं है ।
2. कार्बोहाइट्रेड–उपापचय, न्यूक्लिक अम्लों के संश्लेषण आदि में भाग लेने वाले अनेक एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
3. फास्फोरस के अवशोषण और स्थानांतरण में वृद्धि करता है।

गंधक

1. प्रोटीन संरचना को स्थिर रखने में सहायता करता है।
2. तेल संश्लेषण और क्लोरोफिल निर्माण में मदद करता है।
3. विटामिन के उपापचय क्रिया में योगदान करता है।

जस्ता

1. पौधों द्वारा फास्फोरस और नाइट्रोजन के उपयोग में सहायक होता है।
2. न्यूक्लिक अम्ल और प्रोटीन–संश्लेषण में मदद करता है।
3. हार्मोनों के जैव संश्लेषण में योगदान करता है।
4. अनेक प्रकार के खनिज एंजाइमों का आवश्यक अंग है।

तांबा

1. पौधों में विटामिन 'ए' के निर्माण में वृद्धि करता है।
2. अनेक एंजाइमों का घटक है।

लोहा

1. पौधों में क्लोरोफिल के संश्लेषण और रख रखाव के लिए आवश्यक होता है।
2. न्यूक्लिक अम्ल के उपापचय में एक आवश्यक भूमिका निभाता है।
3. अनेक एंजाइमों का आवश्यक अवयव है।

मैगनीज

1. प्रकाश और अंधेरे की अवस्था में पादप कोशिकाओं में होने वाली क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
2. नाइट्रोजन के उपापचय और क्लोरोफिल के संश्लेषण में भाग लेने वाले एंजाइमों की क्रियाशीलता बढ़ा देता है।
3. पौधों में होने वाली अनेक महत्वपूर्ण एंजाइमयुक्त और कोशिकीय प्रतिक्रियाओं के संचालन में सहायक है।
4. कार्बोहाइट्रेड के आक्सीकरण के फलस्वरूप कार्बनडाई आक्साइड और जल का निर्माण करता है।

बोरोन

1. प्रोटीन–संश्लेषण के लिये आवश्यक है।
2. कोशिका–विभाजन को प्रभावित करता है।
3. कैल्शियम के अवशोषण और पौधों द्वारा उसके उपयोग को प्रभावित करता है।
4. कोशिका झिल्ली की पारगम्यता बढ़ाता है फलस्वरूप कार्बोहाइट्रेड के स्थानांतरण में मदद मिलती है।
5. एंजाइमों की क्रियाशीलता में परिवर्तन लाता है।

मोलिब्डेनम

1. कई एंजाइमों का अवयव है।
2. नाइट्रोजन उपयोग और नाइट्रोजन यौगिकीकरण में मदद करता है।
3. नाइट्रोजन यौगिकीकरण में राइजोबियम जीवाणु के लिए आवश्यक होता है।

क्लोरीन

1. क्लोरीन पादप होर्मोनों का अवयव है।
2. बीजों में यह इण्डोलएसिटिक एसिड का स्थान ग्रहण कर लेता है।
3. एंजाइमों की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
4. कवकों और जीवाणुओं में पाये जाने वाले अनेक यौगिकों का अवयव है।

पोषक तत्वों की कमी के लक्षण

नाइट्रोजन

1. पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा तना छोटा एवं पतला हो जाता है।
2. पत्तियां नोक की तरफ से पीली पड़ने लगती है। यह प्रभाव पहले पुरानी पत्तियों पर पड़ता है, नई पत्तियों बाद में पीली पड़ती है।
3. पौधों में टिलरिंगि कम होती है।
4. फूल कम या बिलकूल नहीं लगते हैं।
5. फूल और फल गिरना प्रारम्भ कर देते हैं।
6. दाने कम बनते हैं।
7. आलू का विकास घट जाता है।

फास्फोरस

1. पौधों की वृद्धि कम हो जाती है।
2. जड़ों का विकास रूक जाता है।
3. पत्तियों का रंग गहरा हरा तथा किनारे कहरदार हो जाते हैं।
4. पुरानी पत्तियाँ सिरों की तरफ से सूखना शुरू करती है तथा उनका रंग तांबे जैसा या बैंगनी हरा हो जाता है।
5. टिलरिंग घट जाती है।
6. फल कम लगते हैं, दानों की संख्या भी घट जाती है।
7. अधिक कमी होने पर तना गहरा पीला पड़ जाता है।

पोटाश

1. पौधों में ऊपर की कलियों की वृद्धि रूक जाती है।
2. पत्तियाँ छोटी पतली व सिरों की तरफ सूखकर भूरी पड़ जाती है और मुड़ जाती है।
3. पुरानी पत्तियाँ किनारों और सिरों पर झुलसी हुई दिखाई पड़ती है। तथा किनारे से सूखना प्रारम्भ कर देती है।
4. किल्ले बहुत अधिक निकलते हैं।
5. तने कमजोर हो जाते है।
6. फल तथा बीज पूर्ण रूप से विकसित नहीं होते तथा इनका आकार छोटा, सिकुड़ा हुआ एवं रंग हल्का हो जाता है।
7. पौधों पर रोग लगने की सम्भावना

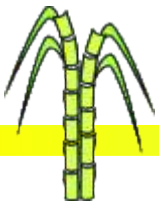

अधिक हो जाती है।

कैल्शियम

1. नये पौधों की नयी पत्तियां सबसे पहले प्रभावित होती है। से प्रायः कुरूप, छोटी और असामान्यता गहरे हरे रंग की हो जाती है। पत्तियों का अग्रभाग हुक के आकार का हो जाता है, जिसे देखकर इस तत्व की कमी बड़ी आसानी से पहचानी जा सकती है।
2. जड़ों का विकास बुरी तरह प्रभावित होता है और जड़े सड़ने लगती है।
3. अधिक कमी की दशा में पौधों की शीर्ष कलियां (वर्धनशील अग्रभाग) सूख जाती है।
4. कलियां और पुष्प अपरिपक्व अवस्था में गिर जाती है।
5. तने की संरचना कमजोर हो जाती है।

मैग्नीशियम

1. पुरानी पत्तियां किनारों से और शिराओं एवं मध्य भाग से पीली पड़ने लगती है। तथा अधिक कमी की स्थिति से प्रभावित पत्तियां सूख जाती है और गिरने लगती है।
2. पत्तियां आमतौर पर आकार में छोटी और अंतिम अवस्था में कड़ी हो जाती है और किनारों से अन्दर की ओर मुड़ जाती है।
3. कुछ सब्जी वाली फसलों में नसों के बीच पीले धब्बे बन जाते हैं और अंत में संतरे के रंग के लाल और गुलाबी रंग के चमकीले धब्बे बन जाते हैं।
4. टहनियां कमजोर होकर फफूंदीजनित रोग के प्रति संवेदनशील हो जाती है। साधारणतया अपरिपक्व पत्तियां गिर जाती है।

गंधक

1. नयी पत्तियां एक साथ पीले हरे रंग की हो जाती है।
2. तने की वृद्धि रूक जाती है।
3. तना सख्त, लकड़ी जैसा और पतला हो जाता है।

जस्ता

1. जस्ते की कमी के लक्षण मुख्यतः पौधों के ऊपरी भाग से दूसरी या तीसरी पूर्ण परिपक्व पत्तियों से प्रारम्भ होते हैं।
2. मक्का में प्रारम्भ में हल्के पीले रंग की धारियां बन जाती है और बाद में चौड़े सफेद या पीले रंग के धब्बे बन जाते हैं। शिराओं का रंग लाल गुलाबी हो जाता है। ये लक्षण पत्तियों की मध्य शिरा और किनारों के बीच दिखता है, जो कि मुख्यतः पत्ती के आधे भाग में ही सीमित रहते हैं।
3. धान की रोपाई के 15–20 दिन बाद पुरानी पत्तियों पर छोट–छोटे हल्के पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है, जो कि बाद में आकार में बड़े होकर आपस में मिल जाते हैं। पत्तियां (लोहे जंग की तरह) गहरे भूरे रंग की हो जाती है और एक महीने के अन्दर ही सूख जाती है। उपरोक्त सभी फसलों में वृद्धि रूक जाती है। मक्का में रेशे और फूल देर से निकलते हैं और अन्य फसलों में भी बालें देर से निकलती है।

तांबा

1. गेहूँ की ऊपरी या सबसे नयी पत्तियां पीली पड़ जाती है और पत्तियों का अग्रभाग मुड़ जाता है। नयी पत्तियां पीली हो जाती है। पत्तियों के किनारे कट–फट जाते हैं तने की गांठों के बीच का भाग छोटा हो जाता है।
2. नींबू के नये वर्धनशील अंग मर जाते हैं जिन्हें ''एक्जैनथीमा'' कहते हैं। छाल और लकड़ी के मध्य गोंद की थैली सी बन जाती है और फलों से भूरे रंग का स्राव/रस निकलता रहता है।

लोहा

1. मध्य शिरा के बीच और उसके पास हरा रंग उड़ने लगता है। नयी पत्तियां सबसे पहले प्रभावित होती है।
2. अधिक कमी की दिशा में, पूरी पत्ती, शिराएं और शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है। कभी–कभी हरा रंग बिल्कुल उड़ जाता है।

मैंगनीज

1. नयी पत्तियों के शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है, बाद में प्रभावित पत्तियां मर जाती है।
2. नयी पत्तियों के आधार के निकट का भाग धूसर रंग का हो जाता है, जो धीरे–धीरे पीला और बाद में पीला–नारंगी रंग का हो जाता है।
3. अनाज वाली फसलों में ''ग्रे स्प्रेक'' खेत वाली मटर में ''मार्श स्पाट'' और गन्ने में ''स्टीक रोग'' आदि रोग लग जाते हैं।

बोरोन

1. पौधों के वर्धनशील अग्रभाग सूखने लगते हैं और मर जाते हैं।
2. पत्तियाँ मोटे गठन की हो जाती है, जो कभी–कभी मुड़ जाती है और काफी सख्त हो जाती है।
3. फूल नहीं बन पाते और जड़ों का विकास रूक जाता है।
4. जड़ वाली फसलों में ''ब्राउन हार्ट'' नामक बीमारी हो जाती है, जिसमें जड़ के सबसे मोटे हिस्से में गहरे रंग के धब्बे बन जाते है। कभी–कभी जड़े मध्य से फट भी जाती है।
5. सेव जैसे फलों में आंतरिक और बाह्य काक्र के लक्षण दिखायी देते है।

मोलिब्डेनम

1. इसकी कमी मे नीचे की पत्तियों की शिराओं के मध्य भाग में पीले रंग के धब्बे दिखाई देते है। बाद में पत्तियों के किनारे सूखने लगते है और पत्तियां अन्दर की ओर मुड़ जाती है।
2. फूल गोभी की पत्तियां कट–फट जाती है, जिससे केवल मध्य शिरा और पत्र दल के कुछ छोटे–छोटे टुकड़े ही शेष रह जाते हैं। इस प्रकार पत्तियां पूंछ के सामान दिखायी देने लगती है, जिसे ''हिप टेल'' कहते हैं।
3. मोलिब्डेनम की कमी दलहनी फसलों में विशेष रूप से देखी जाती है।

क्लोरीन

1. पत्तियों का अग्रभाग मुरझा जाता है, जो अंत में लाल रंग का हो कर सूख जाता है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ने में पोषक तत्वों की न्यूनता के लक्षण

सोमेन्द्र शुक्ल, अनीता सावनानी, वरूचा मिश्रा, राम किशोर एवं अशोक कुमार श्रीवास्तव

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

निरंतर अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेतों की मृदा उर्वरता का अच्छा होना आवश्यक होता है। यह संभवतः मृदा में पाये जाने वाले पोषक तत्वों की वजह से संभव होता है। मृदा में पोषक तत्वों की उचित मात्रा एवं सुलभ अवस्था पौधों को इन्हें आसानी से ग्रहण करने की सहायता प्रदान करती हैं। यदि पोषक तत्वों की कमी पायी जाती है तो इनकी पूर्ति बाहरी रूप से की जा सकती है। पौधों के सामान्य विकास एवं वृद्धि हेतु कुल 16 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। किसी भी एक पोषक तत्व की कमी पौधे पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है जिसके कारण वर्ष भरपूर उत्पादकता नहीं मिलती है।

सघन खेती, पोषक तत्वों का असंतुलित प्रयोग (विशेषकर नत्रजन का अधिक प्रयोग), प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, मृदा की पी.एच. तथा अन्य अवस्थाऐं जैसे, बाधित जल निकास तथ जल स्तर ऊपर उठना, कार्बनिक पदार्थ की अधिक मात्रा, अत्यधिक क्षारीय मृदा, चूने की अधिक मात्रा का एक साथ प्रयोग, विक्षालित, अम्लीय, रेतीली, लवणता ग्रस्त मृदा आदि परिस्थितियों में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

भारतवर्ष में नत्रजन, पोटाश तथा गंधक की कमी 228,47 तथा 130 जिलों में पाई गई है। 20 राज्यों के 2,52 लाख मृदा के नमूनों में 49,12,5 तथा 3 प्रतिशत में जस्ता, लौह, मैग्नीज तथा ताम्र तत्वों की कमी पाई गई है। लौह तत्व की कमी कल्केरियस मृदा में मैग्नीशियम की कमी केरल, आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु की अम्लीय मृदाओं में मिलती है। बरानी क्षेत्र की मृदाओं में सामान्यतया फास्फोरस, पोटाश तथा जस्ते की कमी पाई जाती है। बोरान की कमी, पश्चिमी बंगाल, बिहार व कर्नाटक के कुछ भागों में मिलती है। आज कल भारतवर्ष के बहुत से कृषि योग्य क्षेत्रों में पोटाश तत्व की कमी भी देखने में आ रही है।

गन्ने के विकास में पोषक तत्वों की कमी या उसका अत्यधिक उपयोग गन्ने में कई प्रकार के लक्षण उत्पन्न करता है।

अधिक मात्रा में लिऐ जाने वाले पोषक तत्व की कमी के लक्षण

नत्रजन (N)

पत्तियों का एकसार पीलापन (शिराओं में भी), यह पीलापन पुरानी पत्तियों में अपेक्षाकृत पहले व अधिक होता है। पुरानी पत्तियों के किनारे व शिखाग्र ऊतकक्षयी हो जाते हैं।

फास्फोरस (P)

पत्तियां पतली तथा बैंगनी रंग की हो जाती हैं। पोरियों की लम्बाई तथा मोटाई कम हो जाती हैं।

पोटाश (K)

पीले–नांरगी हरिमाहीनता के लक्षण पुरानी पत्तियों के शिखाग्र व किनारे पर दिखते है। नयी पत्तियां जब तक बहुत अधिक कमी न हो जाये तब गहरी हरी बनी रहती हैं। पत्तियों का स्पिंडल गुच्छेदार हो जाता है तथा पंखे के सदृश लगता है।

गन्धक (S)

सामान्य हरिमाहीनता तथा पत्तियों का पीलापन। इसकी अधिक कमी होने पर पत्तियों के किनारे बैंगनी रंग के हो जाते हैं तथा गन्ने पतले हो जाते हैं।

मैग्नीशियम (Mg)

पीली (रंगीन) बिंदियों का विन्यास (माटलिंग) या हरिमाहीनता पत्तियों के शिखाग्र व किनारे पर प्रारम्भ होती हैं। पत्तियों पर लाल उतकक्षयी धब्बे तथा गन्ने के उपरी छिलके में अन्दर से भूरापन परिलक्षित होता है।

कैल्शियम (C)

शीर्ष व जड़ों की वृद्धि कम तथा पतले तने जो उपर, पतले होते हैं। छोटे छोटे हरिमाहीन दाग पुरानी पत्तियों पर दिखते हैं।

सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी के लक्षण

लौह तत्व (Fe)

नयी पत्तियों पर हल्के हरे रंग की रेखाऐं शिराओं के समानांतर होती हैं। अधिक कमी होने पर शिराओं में मध्य भाग पीले से सफेद हो जाता है।

मैंगनीज (Mn)

पीली हरी रेखाऐं शिराओं के मध्य तथा ये केवल पर्णाग्र से पर्णफलक के मध्य तक ही सीमित होती हैं।

जस्ता (Zn)

हरिमाहीन रेखाऐं शिराओं में होती है, पत्तियां छोटी तथा असमित; अधिक कमी होने पर पर्णाग्र पर उतकक्षय होने लगता है।

ताम्र (Cu)

स्पिंडल की पत्तियां नहीं खुलती है तथा बंधी–बंधी सी दिखाई देती हैं। हरे रंग के धब्बे पीली पत्तियों पर/या मुरझायी पत्तियों पर दिखते हैं। अन्ततोगत्वा पत्तियां हरिमाहीन, कागज की भांति पतली तथा मुड़ने लगती हैं। अधिक कमी होने पर तना, शीर्ष विभज्योतक में स्फीति का ह्रास

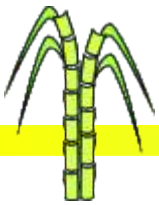

होता है।

बोरान (B)

पत्तियों पर जलीय धब्बे दिखते हैं, पर्णफलक पतला व भंगुर हो जाता है, पर्णाग्र सूख जाता है तथा कम उम्र के पौधे गुच्छे जैसे लगते हैं। स्पिंडल पत्तियां सफेद हो जाती है, सूख जाती है तथा अन्त में मृत हो जाती हैं।

मालिब्डिनम (Mo)

पर्ण फलक एकसार हरे से पीले हो जाते है, तना छोटा, पतला होता है तथा वृद्धि कम हो जाती है। हरिमाहीन रेखाऐं उपर के एक तिहाई पर्ण फलक पर दिखती हैं।

हरिमाहीनता में भिन्नता के आधार पर पोषक तत्वों की कमी का निदान

गन्ने की पत्तियों में उत्पन्न हरिमाहीनता में विभेद के आधार पर पोषक तत्वों की कमी का निदान निम्नवत (सारिणी–1) किया जाता है।

सम्बद्ध लक्षण

1. स्पिंडल मर जाता है; 2. नयी पत्तियां पीली, स्पिंडल मर जाता है; 3. तने के अन्दर भूरापन।

ऊपर वर्णित लक्षण परिष्कृत बालू में पोषक तत्वों के घोल (सैण्ड कल्चर) के प्रयोगों पर आधारित है। खेत में किसी एक तत्व की कमी इन लक्षणों से इंगित करना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह ज्ञात होता है कि पोषक तत्व गन्ने के विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं तथा इनकी कमी से कई प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं जो गन्ने की पैदावार, उसके विकास एवं उत्पादकता को प्रभावित करते हैं।

सारिणी–1 : हरिमाहीनता के आधार पर पोषक तत्वों की कमी

लक्षण का प्रकार	पोषक तत्व की कमी
(अ) एक सार पीलापन	
– पुरानी पत्तियों से शुरू होकर उपर की ओर हरिमाहीनता बढ़ती हैं	नत्रजन
– नयी पत्तियों से प्रारम्भ होना	गन्धक
(ब) शिरा मध्य हरिमाहीनता (इण्टरवेनल क्लोरोसिस)	
– नयी पत्तियों मे पूरी लम्बान में, पुरानी पत्तियां हरी बनी रहती हैं	लौह तत्व
– पर्ण फलक में मध्य से पर्णाग्र तक सीमित	मैंगनीज
– हरिमाहीन रेखाऐं केवल नयी पत्तियों में	बोरान[1]
– आंशिक से अधिक हरिमाहीनता, स्पिंडल पत्तियां भली प्रकार नहीं खुलती हैं	ताम्र
(स) शिराओं में हरिमाहीनता	
– प्रारम्भ में शिराओं के मध्य उतक हरे तथा बाद में पूरा पत्ती हरिमाहीन हो जाती है।	जस्ता
(द) स्थानीय हरिमाहीनता	
– छोटे–छोटे हरिमाहीन दाग पुरानी पत्तियों पर	कैलशियम[2]
– छोटे–छोटे हरिमाहीन दाग पुरानी पत्तियों पर साथ ही पुरानी पत्तियां पीलापन युक्त हरी,	मैग्नीशियम[3]
– कभी–कभी ये दाग उतकक्षयी हो जाते हैं	
– छोटी पीली धारियां विशेषकर पुरानी पत्तियों के पर्णाग्र पर जो बाद में लाल रंग की हो जाती हैं	मॉलिब्डिनम
(य) नयी पत्तियां हरिमाहीन, अन्य पत्तियां धूप में मुरझा जाती है तथा रात में पुनः स्फीति प्राप्त कर लेती है।	क्लोरीन

संबंद्ध लक्षण [1]स्पिंडम मर जाता है; [2]नयी पत्तियां पीली, स्पिंडम मर जाता है; [3]तने के अन्दर भूरापन

नकदी फसलों में सबसे ज्यादा उत्पादन यह दे देता है।
बाढ़-सुखाड़ में भी गन्ना लाभ हमें दे देता है।।
गन्ने की खेती से बनती कृषकों की पहचान।
उन्नत विधि से खेती करके बन जायेंगे धनवान।।

डॉ. अजय कुमार साह

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

गन्ना फसल से लक्षित उपज प्राप्ति हेतु मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व एवं उत्पादकता सहसंबंध पर आधारित पोषक तत्व प्रबन्धन

राम रतन वर्मा, शिव राम सिंह, के. के. सिंह एवं तपेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना एक कृषि उद्योग आधारित महत्वपूर्ण नगदी फसल है। जिसका उत्पादन मुख्य तौर पर चीनी बनाने के लिए किया जाता है। इस फसल की खेती विषुवत रेखा के 36^0 उत्तरी अक्षांश से 31^0 दक्षिणी अक्षांश के मध्य स्थित विश्व के करीब 110 देशों में की जाती है और उत्पादन के दृष्टिकोण से विश्व में ब्राजील के बाद भारत का दूसरा स्थान हैं। हमारे देश में 2014–15 में गन्ना उत्पादन (3576 लाख टन) व उत्पादकता (70.0 टन प्रति हेक्टेयर) वर्ष 1950–51 (क्रमशः 548.20 लाख टन व 32.1 टन प्रति हेक्टेयर) की तुलना में क्रमशः छः गुने एवं दो गुने से अधिक स्तर पर पहुंच गयी है। हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या की दर से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आने वाले वर्षों में जनसंख्या वृद्धि के कारण अधिक चीनी की आवश्यकता पड़ेगी। जिसकी पूर्ति मात्र गन्ना उत्पादकता में वृद्धि करके ही पूरा किया जा सकता है क्योंकि आने वाले वर्षों में गन्ना उगाने के लिए भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है। यहाँ तक कि वर्तमान में उपलब्ध कृषि योग्य भूमि का उपयोग लगातार शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण जैसे सड़क, रेल, मकान, कारखानों आदि के विकास के लिए किया जा रहा है। हमारे देश में इस फसल की खेती मुख्य तौर पर उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में की जाती है। जिसमें दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत के विभिन्न प्रदेश आते है। लेकिन वर्तमान में गन्ना उत्पादन क्षेत्र विस्तार कुल उत्पादन एवं उत्पादकता में बहुत अन्तर पाया जाता है। देश के प्रमुख प्रदेशों में फसल का क्षेत्रफल, कुल उत्पादन एवं उत्पादकता नीचे दी हुई है।

तालिका 1 : भारत के गन्ना उत्पादक प्रदेशों में फसल का क्षेत्रफल, कुल उत्पादन एवं उत्पादकता के आंकड़े, (वर्ष 2014–15)

क्र. सं.	प्रदेश	क्षेत्रफल (हजार हे. में)	कुल उत्पादन (हजार टन में)	उत्पादकता (टन/हे.)
1.	आन्ध्र प्रदेश	177	13713	77.5
2.	असम	29	1052	36.3
3.	बिहार	260	13239	50.9
4.	गुजरात	183	12610	68.9
5.	हरियाणा	113	8418	74.5
6.	झारखण्ड	9	678	75.3
7.	कर्नाटक	440	39710	90.3
8.	केरल	2	119	59.5
9.	महाराष्ट्र	102	5060	49.6
10.	मध्यप्रदेश	977	78160	80.0
11.	उड़ीसा	7	496	70.9
12.	पंजाब	95	7200	75.8
13.	राजस्थान	6	243	40.5
14.	तमिलनाडु	291	30555	105.0
15.	उत्तर प्रदेश	2228	134689	60.5
16.	उत्तराखण्ड	102	6135	60.1
17.	पश्चिम बंगाल	18	1950	108.3
18.	अन्य	17	891	52.4
	सम्पूर्ण भारत	5069	354952	70.0

स्रोतः–प्रथम अग्रिम आंकलन, कोआपरेटिव शुगर, जून, 2015 खण्ड 46 (10)

उपरोक्त तालिका के आंकड़ों को देखने से यह स्पष्ट है कि विभिन्न प्रदेशों में गन्ने के क्षेत्रफल, कुल उत्पादन एवं उत्पादकता में बहुत अन्तर है। आमतौर पर एक ही प्रदेश के अलग–अलग जिलों एवं एक ही जिले के अलग–अलग क्षेत्रों में यहाँ तक कि एक ही क्षेत्र के अलग–अलग किसानों

के खेतों की उत्पादकता में बहुत अन्तर पाया जाता है। गन्ना अधिक पोषक तत्वों को चाहने वाली फसल है इस फसल से 100 टन गन्ना प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त करने हेतु लगभग 208, 53, 280, 3.4, 1.2, 0.6 और 0.2 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटास, लौह, मैग्नीज, जिंक और जस्ता की आवश्यकता पड़ती हैं। इस प्रकार यह बहुत ही स्पष्ट है कि गन्ना फसल के उत्पादन में उर्वरकों का प्रयोग एक मुख्य लागत है। ऐसी स्थिति में मिट्टी की जांच के बिना उर्वरकों का प्रयोग समय, धन एवं श्रम की बर्बादी हो सकती हैं। ऐसा हो सकता है कि जिन उर्वरकों का प्रयोग किया जा रहा है उनकी जरूरत न हो या फिर कम मात्रा में आवश्यकता हो। किसी विशेष उर्वरक की जरूरत से ज्यादा मात्रा के प्रयोग करने से दूसरे पोषक तत्वों की उपलब्धता पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है और इसके कारण फसल की उपज में गिरावट हो सकती है और इसके साथ ही मिट्टी में पोषक तत्वों के असंतुलन की स्थिति भी पैदा हो सकती है। वर्तमान समय में जब उर्वरकों की कीमतें दिनों दिन बढ़ रही है ऐसी स्थिति में उर्वरकों की सही मात्रा ज्ञात कर फसल में उपयोग करके कम लागत से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है और अधिक या कम उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में होने वाले पोषक तत्वों के असंतुलन से भी बचा जा सकता है।

फसल का उत्पादन मृदा की उर्वरा शक्ति पर निर्भर करता है और मिट्टी की उर्वरा शक्ति का निर्धारण उसमें उपलब्ध पादप पोषक तत्वों की मात्रा पर तय होती हैं। मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की उपलब्धता की जानकारी मिट्टी के नमूनों की जांच द्वारा की जाती है जबकि पौधों के रासायनिक विश्लेषण से फसल के द्वारा मिट्टी से पोषक तत्वों का ह्रास एवं पौधों में पोषक तत्वों की मात्रा एवं अधिकता की जानकारी प्राप्त होती है।

मिट्टी नमूनों की जॉच से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण :

मिट्टी की जॉच में मुख्यतया चार चरण सम्मिलित हैं।

1. मिट्टी का नमूना एकत्रित करना
2. मिट्टी की जॉच करना
3. मिट्टी की जॉच से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करना
4. आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर उर्वरकों की सिफारिश करना।

इस प्रकार यह बात बहुत ही स्पष्ट है कि मिट्टी के नमूनों एवं इनके विश्लेषण पर ही उर्वरकों की संस्तुति निर्भर करती हैं। यदि मिट्टी का नमूना सही तरीके से नही लिया गया है तो उर्वरकों की संस्तुति भी ठीक नहीं होगी। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि मिट्टी का नमूना इस प्रकार से लिया जाए कि वह खेत का सही तौर पर प्रतिनिधित्व करे।

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति की जाती है। यह सर्वविदित है कि जैसे–जैसे मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे–वैसे उर्वरकों की संस्तुत मात्रा में कमी आती है। उर्वरकों की संस्तुति मिट्टी जॉच के आधार पर अपने देश में मुख्यतया दो प्रकार से की जाती है।

1. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की श्रेणी के स्तर (निम्न, मध्यम एवं उच्च) के आधार पर संस्तुति।
2. लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए लक्षित उपज समीकरण के आधार पर संस्तुति।

1. मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की श्रेणी के स्तर के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति

इस विधि के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की श्रेणी के स्तर (रेटिंग चार्ट) के आधार पर की जाती है। मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों को तालिका–2 में दर्शाये गये रेटिंग चार्ट के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बांटा जाता है।

तालिका 2 : मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों का वर्गीकरण

मृदा पोषक तत्व	उपलब्धता की श्रेणी		
	निम्न	मध्य	उच्च
जैविक कार्बन (%)	0.5	0.50–0.75	0.75
उपलब्ध नत्रजन (किग्रा./है.)	280	280–560	560
उपलब्ध फास्फोरस (P) (किग्रा./है.)	10	10–24.6	24.6
उपलब्ध पोटास (K) (किग्रा./है.)	108	108–280	280

स्रोतः मुहर व अन्य (1965)

यदि मिट्टी किसी प्रकार से अस्वस्थ है अर्थात् अम्लीय, क्षारीय या लवण युक्त हो तो उसके सुधार हेतु सुधारक की अनुशंसा अवश्य होनी चाहिए क्योंकि जब तक मृदा सुधारक के प्रयोग से मिट्टी को ठीक तरह से सुधार नहीं लिया जाता तब तक उर्वरकों के प्रयोग से पूरा लाभ नहीं मिल पाएगा। अन्त में मिट्टी जांच से

साधारणतया मिट्टी में पोषक तत्वों की उपलब्धता मध्यम श्रेणी में आने पर राज्य या जिला स्तर के लिए संस्तुत उर्वरकों की मात्रा की संस्तुति दे दी जाती है। यदि पोषक तत्वों की स्थिति निम्न श्रेणी में आती है तो संस्तुत मात्रा का 25

प्रतिशत मात्रा और बढ़ा दी जाती है। इसी प्रकार यदि पोषक तत्वों की स्थिति उच्च श्रेणी में आती है तो ऐसी स्थिति में संस्तुत मात्रा का 25 प्रतिशत घटा दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर जैसे गन्ना फसल के लिए 150 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन की मात्रा संस्तुत है तो निम्न श्रेणी के लिए 187.5 किग्रा., मध्यम श्रेणी के लिए 150 किग्रा. एवं उच्च श्रेणी के लिए 112.5 किग्रा. प्रति हेक्टेयर नत्रजन की संस्तुति की जाती है।

2. लक्षित उपज समीकरण के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति

लक्षित उपज समीकरण के आधार पर किसी विशेष उपज लक्ष्य हेतु उर्वरक अनुशंसा सबसे अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि इसका समीकरण मुख्यतः चार आंकड़ों के आधार पर तैयार किया जाता है।

1. फसल का उत्पादन
2. फसल के द्वारा मिट्टी से पोषक तत्वों का ह्रास
3. फसल लेने के पूर्व मिट्टी के उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा
4. उपयोग में लाये गये खाद एवं उर्वरक की मात्रा

उपर्युक्त आंकड़ों के द्वारा चार प्रमुख पैमानों को ज्ञात किया जाता है जिनके उपयोग से लक्षित समीकरण तैयार किया जाता हे। ये प्रारम्भिक पैमाने है।

1. एक क्विंटल गन्ना उपज को पैदा करने के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता
2. मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की उपयोग क्षमता
3. उर्वरक की उपयोग क्षमता।
4. खाद (जैविक) की उपयोग क्षमता

गन्ना फसल से लक्षित उपज प्राप्त करने हेतु लक्षित उपज समीकरण तैयार करने के लिए भारत देश के विभिन्न राज्यों में अनुसंधान किये गये और अनुसंधान के आधार पर जो समीकरण तैयार किये गये उनका विवरण तालिकाः 3 में दिया गया है।

तलिका 3 : भारत के विभिन्न राज्यों में गन्ना उत्पादन क्षेत्रों के लिए लक्षित उपज समीकरण

राज्य	मृदा प्रकार/जिला	मृदा नत्रजन (कि.ग्रा./हे.)	मृदा फास्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	मृदा पोटास (कि.ग्रा./हे.)	खाद/हरी खाद खनिज संघटन (%) (N:P:K:)	खाद प्रयोग (टन/हे.)	लक्षित उपज (टन/हे.)	समीकरण
आन्ध्र प्रदेश	नेल्लोर (बलुई दोमट)	150–400	10–60	150–370	0.75:0.65:1.25	10	125–150	उर्वरक नत्रजन = 3.43 उपज लक्ष्य– 1.45 मृदा नत्रजन – 0.70 कार्बनिक नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 1.30 उपज लक्ष्य – 4.38 मृदा फास्फोरस – 0.43 कार्बनिक फास्फोरस उर्वरक पोटास = 1.93 उपज लक्ष्य – 0.56 मृदा पोटास – 0.03 कार्बनिक पोटास
	सद्रूर (काली मृदा)	150–400	10–60	150–650	–	–	80–100	उर्वरक नत्रजन = 5.4 उपज लक्ष्य – 1.25 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 1.8 उपज लक्ष्य – 4.73 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 1.7 उपज लक्ष्य – 0.33 मृदा पोटास
कर्नाटक	बैंगलोर (लाल क्षारीय)	80–120	15–25	120–200	0.6:0.25:0.5	10 टन/है0	40	उर्वरक नत्रजन = 5.52 उपज लक्ष्य – 150.214 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 2.27 उपज लक्ष्य – 0.96 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 3.75 उपज लक्ष्य – 0.38 मृदा पोटास
बिहार	नई चूना मुक्त जलोढ़ मृदा बावक फसल	120–300	4–40	60–240	–	–	75–100	उर्वरक नत्रजन = 0.236 उपज लक्ष्य – 0.27 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 0.113 उपज लक्ष्य – 1.59 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 0.101 उपज लक्ष्य – 0.25 मृदा पोटास

राज्य	मृदा प्रकार/जिला	मृदा नत्रजन (कि.ग्रा./हे.)	मृदा फास्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	मृदा पोटास (कि.ग्रा./हे.)	खाद/हरी खाद खनिज संघटन (%) (N:P:K:)	खाद प्रयोग (टन/हे.)	लक्षित उपज (टन/हे.)	समीकरण
	पेड़ी फसल	120–300	4–40	60–240	–	–	75–100	उर्वरक नत्रजन = 0.261 उपज लक्ष्य – 0.29 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 0.120 उपज लक्ष्य – 1.50 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 0.108 उपज लक्ष्य – 0.19 मृदा पोटास
तमिलनाडु	कोयम्बटूर (मिश्रित काली)	200–300	15–25	300–550	0.67:0.40:0.72	12.5	125	उर्वरक नत्रजन = 4.17 उपज लक्ष्य–1.09 मृदा नत्रजन – 1.1 कार्बनिक नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 1.01 उपज लक्ष्य – 2.56 मृदा फास्फोरस – 1.01 कार्बनिक फास्फोरस उर्वरक पोटास = 3.44 उपज लक्ष्य – 0.84 मृदा पोटास – 1.03 कार्बनिक पोटास
छत्तीसगढ़	वर्तीसाल	150–450	6–28	200–500	–	–	50–100	उर्वरक नत्रजन = 0.59 उपज लक्ष्य – 1.12 मृदा नत्रजन – 0.88 कार्बनिक नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 0.13 उपज लक्ष्य – 4.46 मृदा फास्फोरस – 0.37 कार्बनिक फास्फोरस उर्वरक पोटास = 0. 15 उपज लक्ष्य – 0.135 मृदा पोटास – 0.15 कार्बनिक पोटास
मध्य प्रदेश	जबलपुर (उथली, मध्यम एवं गहरी काली मृदा)	100–350	5–20	100–350	–	–	12–15	उर्वरक नत्रजन = 5.71 उपज लक्ष्य – 1.66 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 2.28 उपज लक्ष्य – 11.73 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 1.6 उपज लक्ष्य – 0.53 मृदा पोटास
महाराष्ट्र	वर्तीसाल	100–200	6–16	200–700	–	–	100–120	उर्वरक नत्रजन = 4.76 उपज लक्ष्य – 1.34 मृदा नत्रजन उर्वरक फास्फोरस = 1.24 उपज लक्ष्य – 1.55 मृदा फास्फोरस उर्वरक पोटास = 2.73 उपज लक्ष्य – 0.21 मृदा पोटास

उपरोक्त तालिका से उदाहरण स्वरूप बिहार राज्य की चूना युक्त मिट्टी में गन्ना की बावक व पेड़ी फसल से लक्षित उपज प्राप्त करने के लिए इस प्रकार से उपयोग किया जा सकता है–

गन्ने की बावक फसल हेतु लक्षित उपज समीकरण

उर्वरक नत्रजन (किग्रा./हे.) = 0.236 × उपज लक्ष्य (टन/हे.)– 0.27 × मिट्टी में उपलब्ध नत्रजन (किग्रा./हे.)

उर्वरक फास्फोरस (किग्रा./हे.) = 0.113 × उपज लक्ष्य (टन/हे.) – 1.59 × मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा./हे.)

उर्वरक पोटास (किग्रा./हे.) = 0.101 × उपज लक्ष्य (टन/हे.) – 0.25 × मिट्टी में उपलब्ध पोटास (किग्रा./हे.)

उपरोक्त लक्षित उपज समीकरण के आधार पर मिट्टी जॉच के अनुसार विभिन्न लक्षित उपज की प्राप्ति हेतु उर्वरक संस्तुत करने की तालिका तैयार की जाती है। जिसके आधार पर खाद एवं उर्वरकों की संस्तुति की जाती है। जैसे गन्ना की बावक फसल से उपज लक्ष्य 75 टन प्रति हे. एवं 100 टन प्रति हे. प्राप्त करने के लिए मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति के आधार पर तालिका–3 तैयार की गयी है:–

गन्ने की पेड़ी फसल हेतु लक्षित उपज समीकरण:–

उर्वरक नत्रजन (किग्रा./हे.) = 0.261 × उपज लक्ष्य (टन/हे.) – 0.29×

तालिका 4 : गन्ना की बावक फसल से अलग–अलग उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने हेतु मृदा जॉच के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति

मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व (किग्रा./हे.)			फसल उपज लक्ष्य प्राप्त करने हेतु उर्वरकों की आवश्यकता (किग्रा./हे.)					
			75 टन/हे.			100 टन/हे.		
नत्रजन	फास्फोरस	पोटास	नत्रजन	फास्फोरस	पोटास	नत्रजन	फास्फोरस	पोटास
120	4	60	145	78	61	204	107	86
130	6	70	142	75	58	201	103	84
140	8	80	139	2	56	198	100	81
150	10	90	137	69	53	196	97	79
160	12	100	134	66	51	193	94	76
170	14	110	131	62	48	190	91	74
180	16	120	128	59	46	187	88	71
190	18	130	126	56	43	185	84	69
200	20	140	123	53	41	182	81	66
210	22	150	120	50	38	179	78	64
220	24	160	118	47	36	177	75	61
230	26	170	115	43	33	174	72	59
240	28	180	112	40	31	171	68	56
250	30	190	110	37	30	169	65	54
260	32	200	107	34	30	166	62	51
270	34	210	104	31	30	163	59	49
280	36	220	101	28	30	160	56	46
290	38	230	99	24	30	158	53	44
300	40	240	96	21	30	155	49	41

मिट्टी में उपलब्ध नत्रजन (किग्रा./हे.)

उर्वरक फास्फोरस (किग्रा./हे.) = 0.120 × उपज लक्ष्य (टन/हे.) – 1.50 × मिट्टी में उपलब्ध फास्फोरस (किग्रा./हे.)

उर्वरक पोटास (किग्रा./हे.) = 0.108 × उपज लक्ष्य (टन/हे.) – 0.19 × मिट्टी में उपलब्ध पोटास (किग्रा./हे.)

उपर्युक्त तालिका 3 व 4 का उपयोग करके बिहार राज्य की चूना युक्त मिट्टी में गन्ने की बावक व पेड़ी फसल से लक्षित उपज को प्राप्त करने के लिए सही उर्वरक संस्तुति प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार लक्षित उपज समीकरण के आधार पर उर्वरक अनुशंसा करने पर अन्य संस्तुतियों की तुलना में निम्नलिखित लाभ मिलते है।

1. यह उर्वरक संस्तुति करने की सबसे अधिक वैज्ञानिक विधि है क्योंकि फसल के द्वारा पोषक तत्वों के ह्रास तथा मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों एवं उर्वरक की क्षमता पर आधारित होती है।
2. कृषक इच्छानुसार अपने उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखकर उपज लक्ष्य चुन सकता है और उसके हिसाब से उर्वरकों का प्रयोग कर सकता है।
3. लक्षित उपज के आधार पर संस्तुत उर्वरक के प्रयोग से उर्वरकों की संतुलित मात्रा का मृदा में प्रयोग होता है जिससे मिट्टी की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

तालिका 5 : गन्ना की पेड़ी फसल से अलग–अलग उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने हेतु मृदा जॉच के आधार पर उर्वरकों की संस्तुति

मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व (किग्रा./हे.)			फसल उपज लक्ष्य प्राप्त करने हेतु उर्वरको की आवश्यकता (किग्रा./हे.)					
			75 टन/हे.			100 टन/हे.		
नत्रजन	फास्फोरस	पोटास	नत्रजन	फास्फोरस	पोटास	नत्रजन	फास्फोरस	पोटास
120	4	60	161	84	70	226	114	97
130	6	70	158	81	68	223	111	95
140	8	80	155	78	66	220	108	93
150	10	90	152	75	64	218	105	91
160	12	100	149	72	62	215	102	89
170	14	110	146	69	60	212	99	87
180	16	120	144	66	58	209	96	85
190	18	130	141	63	56	206	93	83
200	20	140	138	60	54	203	90	81
210	22	150	135	57	53	200	87	80
220	24	160	132	54	51	197	84	78
230	26	170	129	51	49	194	81	76
240	28	180	126	48	47	191	78	74
250	30	190	123	45	45	189	75	72
260	32	200	120	42	43	186	72	70
270	34	210	117	39	41	183	69	68
280	36	220	115	36	39	180	66	66
290	38	230	112	33	37	177	63	64
300	40	240	109	30	35	174	60	62

4. इस विधि के आधार पर संस्तुति से उर्वरकों के प्रयोग से उर्वरक उपयोग क्षमता अन्य विधि से संस्तुत उर्वरक संस्तुति की तुलना में अधिक होती है।
5. इस विधि से संस्तुत उर्वरक के प्रयोग से अन्य विधि से संस्तुत की तुलना में अधिक शुद्ध लाभ एवं अधिक लागत–लाभ अनुपात मिलता हैं।

निष्कर्ष के तौर पर यह कह सकते है कि उर्वरकों की कीमतों तथा फसलों की बढ़ती लागत एवं वैज्ञानिक विधि से उपलब्ध लक्षित समीकरणों को देखते हुए यह उचित होगा कि पहले मिट्टी की जॉच करायी जाए और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए उपज लक्ष्य को तय किया जाए और उसके हिसाब से उर्वरकों की संस्तुति लेकर गन्ना फसल में लागू किया जाए ताकि अधिक शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सके और इसके साथ ही साथ खेत की उर्वरा शक्ति को भी बनाये रखा जा सके।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

खाद एवं उर्वरकों का प्रबन्ध तथा गन्ने की मिठास

सुधीर कुमार शुक्ल, शशिविन्द कुमार अवस्थी एवं आशा गौर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ

गन्ने की फसल की वानस्पतिक वृद्वि अधिक होने के कारण पोषक तत्वों का अधिक मात्रा में उपयोग होता है। इसको बनाए रखने के लिए सभी पोषक तत्वों की आवश्यकता पड़ती हैं। 100 टन उत्पादन वाली गन्ने की फसल मृदा से लगभग 205 किलोग्राम नत्रजन, 55 किग्रा. स्फुर, 275 किग्रा. पोटेशियम के अलावा 3.5 किग्रा. लौह, 1.2 किग्रा. मैगनीज, 600 ग्राम जिंक एवं 100 ग्राम तांबे का अवशोषण करती हैं। विभिन्न पोषक तत्वों में नत्रजन का विशेष स्थान है। वैसे अधिकतर क्षेत्रों में अब गंधक तथा जिंक की कमी भी परिलक्षित हो रही है। विभिन्न पोषक तत्वों का सही अनुपात में प्रयोग किसी भी अकेले पोषक तत्व की अपेक्षा अधिक लाभकारी होता है।

नत्रजन

नत्रजन का पौधों की वृद्धि में विशेष स्थान है। फसल की अवधि (12–18 महीने) एवं क्षेत्रों के आधार पर गन्ने में 112 किग्रा. से लेकर 504 किग्रा. नत्रजन/हे. तक का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उत्तर भारत में सामान्य रूप से 112–224 किग्रा./हे. तमिलनाडु में 168 से 280 किग्रा./हे., कर्नाटक में 280 से 584 किग्रा./हे., महाराष्ट्र में 392 से 504 किग्रा. तक एवं आंध्र प्रदेश में 252 से 392 किग्रा./हे. की दर से नत्रजन का प्रयोग करते हैं। गन्ना सी 4 कुल का होने के कारण नत्रजन का अवशोषण सी 3 पौधों की अपेक्षा सुचारू रूप से करता है। अगर मृदा में गन्ने की वृद्वि के दौरान 40 पी. पी. एम. की दर से नत्रजन की उपलब्धता बनी रहती है तो गन्ने की वृद्वि अच्छी होती है। सामान्य रूप से नत्रजन के विभिन्न स्रोतों का गन्ने की गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। नत्रजन के प्रयोग का समय पौधों में जड़ों के द्वारा आपूर्ति कर सकने की क्षमता तथा गन्ना एवं शर्करा की उपज पर निर्भर करती हैं। 12 महीने वाली फसल के लिए नत्रजन 60 से 90 दिनों के अंतर्गत दे देना चाहिए। 24 महीने वाली फसल में अगर नत्रजन की अंतिम मात्रा 11वें महीने में दी गयी है तो अधिक शर्करा (टन प्रति हेक्टेयर) पायी गयी। बलुई मृदा में तीन तथा दोमट एवं मटियार भूमि में नत्रजन का दो बार भी प्रयोग किया जा सकता है।

गन्ने की एक वर्ष की फसल में शुरूआत के 45 से 90 दिनों तक किल्ले निकलने की अवस्था रहती है। अतः उस समय नत्रजन का प्रयोग ही अधिक लाभकारी रहता है। दक्षिण भारत में अडसाली फसल में नत्रजन का तीन बार प्रयोग, बुवाई के समय 10 प्रतिशत बुवाई के 8 सप्ताह बाद 40 प्रतिशत तथा मिट्टी को चढ़ाने के समय 50 प्रतिशत किया जा सकता हैं। नत्रजन के उर्वरकों का कूँड़ों में प्रयोग से नत्रजन की उपयोग क्षमता में वृद्धि होती है। वृहत स्तर पर अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि नत्रजन के छिड़काव की तुलना में मृदा में प्रयोग अधिक लाभकारी होता है। हवाई (संयुक्त राज्य अमेरिका) में भी विभिन्न परीक्षणों से पता लगा कि नत्रजन का मृदा में मिलाना छिड़काव से बेहतर तकनीक हैं।

नत्रजन का अन्य पोषक तत्वों के साथ संयुक्त प्रभाव

विभिन्न पोषक तत्वों में नत्रजन–पोटेशियम, नत्रजन–फास्फोरस एवं नत्रजन तथा गंधक के संयुक्त प्रभाव का गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर उचित प्रभाव पड़ता है। नत्रजन के साथ पोटेशियम का उचित मात्रा में प्रयोग से पोषक तत्वों का समुचित उपयोग होता हैं। विभिन्न अध्ययनों से यह पता लगा है कि अमोनियम के रूप में नत्रजन के साथ सुपर फास्फेट के प्रयोग से गन्ने की फसल द्वारा फास्फोरस का मृदा से अधिक अवशोषण होता है। इसके विभिन्न कारण हैं जैसे :–

1. अम्ल बनाने वाले अमोनियम उर्वरक दिए जाने पर मृदा के फास्फोरस का घुलनशील होना
2. उर्वरक डालने वाले मृदा क्षेत्रों में जड़ों का अधिक विकास तथा
3. जड़ों की चयापचयी शक्ति में बढ़ोत्तरी

नत्रजन एवं गंधक का संयुक्त प्रभाव भी गन्ने में देखा गया है। तथा इसके लिए नत्रजन एवं गंधक का औसत अनुपात 10–17 : 1 हैं। जिन पौधों में गंधक की कमी होती है उनमें शर्करा की मात्रा में भी कमी होती है और वह नत्रजन का नाइट्रेट एवं घुलनशील पोषक तत्वों का संचय करते हैं जिससे मिल योग्य शर्करा में कमी हो जाती है। गंधक विभिन्न एमीनों एसिड जैसे सिस्टीन, मेथ्यूनीन का अवयव है। यह अवयव अमीनो एसिड गंधक युक्त विभिन्न यौगिक, कोएन्जाइम तथा द्वितीय पौध उत्पादन के प्रथम उत्पाद हैं। गंधक इन एन्जाइमों का संरचनात्मक घटक अथवा आर.एस.एच. समूह में कार्य करता है जिससे पौधे में चयापचय प्रमाणित होता है। अमोनियम के पोषण से ए. पी. एस. – सल्फोट्रान्सफिरेस एन्जाइम की

क्रियाशीलता बढ़ती है जिससे गंधक युक्त एमीनोएसिड की अवश्यकता पड़ती है जिसकी आवश्यकता अमोनियम के संश्लेषण के समय होती है।

गन्ने के रस की गुणवत्ता पर प्रभाव

नत्रजन की उचित मात्रा, सही समय एवं सही विधि से प्रयोग करने से गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। गन्ने में नत्रजन की अधिक मात्रा का देर से प्रयोग करने पर देर से निकलने वाले कल्लों की वृद्धि होती है जिससे रस की शुद्धता में कमी आती है। इस प्रकार के प्रयोग से अपचयित शर्करा में वृद्धि होती है एवं शर्करा (सुक्रोस) में कमी होती हैं।

फास्फोरस

उपोष्ण क्षेत्रों में लगभग सभी मृदाओं में फास्फोरस की कमी पायी गयी है लेकिन इस पर भी सभी कृषि योग्य फसलों में फास्फोरस का प्रभाव अनिश्चितता पूर्ण रहा है। गन्ने में फास्फोरस का अधिक अवशोषण तो बहुत ही कठिन है और इसकी कमी से कम किल्ले, जड़ों की वृद्धि में कमी, कम दूरी पर गांठें, गांठों की देर से पत्ती द्वारा बंद होना देखा गया हैं। गन्ने में फास्फोरस का आठवीं से दसवीं पर्णसंधि (इन्टरनोड) में सांद्रण फास्फोरस को सही स्तर को दर्शाता है।

राक फास्फेट के अतिरिक्त अन्य सभी फास्फोरस प्रदान करने वाले उर्वरक, फास्फोरस की कमी वाली मृदाओं में गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता की दृष्टिकोण से बराबर प्रभावशील रहे हैं। अध्ययनों से पता लगा है कि, मिल की मैली (प्रेसमड) फास्फोरस का अच्छा स्रोत है। प्रेसमड से अन्य लाभ भी है जैसे :

1. इससे मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है।
2. इससे नत्रजन एवं गंधक की भी पूर्ति होती हैं।
3. यह मृदा सुधारक का भी कार्य करता है। यह अम्लीय मृदा में कैल्शियम का स्तर बढ़ाता है तथा एल्युमिनियम के स्तर को कम करता है।
4. यह मृदा की आयन विनिमय क्षमता (कैटायन इक्सचेन्ज कैपेसिटी) को वृद्धि करता है।

अम्लीय मृदा में, प्रेसमड, ट्रिपिल सुपर फास्फेट से अधिक प्रभावशील है लेकिन यह चूना डालने का विस्थापक नहीं है। लगभग 15–20 टन/हे. की दर से पेसमड का प्रयोग गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता की वृद्धि करता है तथा अधिकतर मृदाओं के लिए अनुकूल रहता है।

फास्फोरस को बुवाई के समय ही एक बार में पूर्ण रूप से दे दिया जाता है। गन्ने में फास्फोरस की अधिक आवश्यकता किल्ले निकलने तथा शुरूआती वृद्धि के समय ही रहती है जब मृदा में जड़ें अधिक विकसित नहीं होती है। इस प्रकार से फास्फोरस का पट्टी विधि द्वारा प्रयोग से जो कि गन्ने के ढूँठ के पास होता है, फास्फोरस की कमी वाले क्षेत्र को पोषण प्रदान करता है जिससे फास्फोरस का स्थिरीकरण भी नहीं हो पाता। लेकिन अगर राक फास्फेट का प्रयोग किया गया है तो इसकी संस्तुति की जाती है कि यह मृदा में पूर्ण रूप से मिला दिया जाय। गन्ने में विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर 45–225 किग्रा./हे. फास्फोरस की दर संस्तुत की जाती है।

फास्फोरस का संयुक्त प्रभाव

जहाँ धान की फसल के बाद गन्ना लिया जा रहा हो वहाँ फास्फोरस के प्रयोग के बाद जस्ता की कमी परिलक्षित होती है। इस प्रकार से फास्फोरस का जस्ते के साथ ऋणात्मक संयुक्त प्रभाव दिखलाई पड़ता है। फास्फोरस डालने के बाद जस्ते का कम अवशोषण अकेले भौतिक ऋणात्मक संयुक्त प्रभाव ही नहीं होता हैं बल्कि यह दैहिक रूप से भी संचालित होता है। जस्ते एवं फास्फोरस का संयुक्त प्रभाव पौधों की जडों से प्रारम्भ होता हैं तथा पौधे के उपरी भाग तक प्रवाहित होता हैं। फास्फोरस के संयुक्त सम्बन्ध में सामान्य तथा क्षारीय मृदाओं में गंधक का अम्लीय प्रभाव की वजह से इसकी उपलब्धता अधिक समय तक बनी रहती है। उन मृदाओं में जिनकी जल ग्रहण करने की शक्ति कम होती है एवं लौह, एल्युमिनियम तथा मैंगनीज की अधिकता होती है इन पोषक तत्वों का हानिकारक स्तर सिलिकान की उपस्थित के कारण कम हो जाता है जिससे फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

पोटेशियम

गन्ने में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण एवं संचालन के लिए तथा शर्करा के संश्लेषण में पोटेशियम का विशेष महत्व हैं। पोटेशियम की कमी की दशा में गन्ने में प्रकाश संश्लेषण द्वारा बनाए भोजन के संचालन में कमी पायी जाती है। जल के सम्बन्ध में इसका महत्व तो सभी को पता है तथा बारानी खेती में बाद में भी पोटेशियम खेत में डालने के लिए संस्तुत किया जाता है। पोटेशियम का उपयोग अधिक नत्रजन के दुष्प्रभाव को कम करता है तथा इससे कोशिका की दीवारों को मजबूती प्रदान होती है जिससे गन्ने के गिरने की सम्भावना कम हो जाती हैं। पोटेशियम के प्रयोग से शर्करा का उत्पादन बढ़ता है। गन्ने में शर्करा की मात्रा भी पोटेशियम के प्रयोग से बढ़ती है जिसका मुख्य कारण पत्ती में नत्रजन की कमी तथा अपचयित शर्करा को अनपचयित शर्करा में बदलना होता है। कर्नाटक में मान्डया में (एल्फीसोल) प्रकार की मृदा होने के कारण पोटेशियम का प्रभाव अंकित किया गया। संखेश्वर में वर्टीसोल्स में भी इसका प्रभाव

पाया गया। लेकिन पूसा (बिहार) तथा लखनऊ में उपज वृद्धि में इसका प्रभाव न्यूनतम रहा। क्योंकि यहाँ की मृदा में इल्लाइट खनिज की अधिकता है जिससे पोटेशियम की आपूर्ति होती रहती है।

पोटेशियम से गन्ने के व्यास में भी वृद्धि अंकित की गयी। इसका प्रयोग बुवाई के समय पट्टी में देने से अच्छा रहता है। बलुई मृदा में इसको दो बार भी प्रयोग किया जा सकता है। वैसे पोटेशियम के सभी स्रोतों का उपज एवं गुणवत्ता पर कोई अन्तर नहीं पाया गया है पोटशियम के प्रयोग से गन्ने की उपज एवं शर्करा में वृद्धि होती हैं।

गंधक

गन्ने में गंधक का प्रयोग उत्पादकता में वृद्धि तथा कुछ सीमा तक मृदा जल में कमी को भी सह लेने की शक्ति प्रदान करता है। उत्तर भारत में गंधक के प्रयोग से गन्ने की उपज में वृद्धि का मुख्य कारण नत्रजन उपयोग क्षमता में वृद्धि जो कि नाइट्रेट रिडक्टेस एन्जाइम की क्रियाशीलता में वृद्धि की वजह से हुई जिससे अन्ततः शुष्क पदार्थ की मात्रा में प्रति किलो नत्रजन के उपयोग से बढ़त हुई। रैटून स्टटिंग रोग में गंधक के प्रयोग से लाभ होता है। इसमें कार्बोहाइड्रेट शर्करा के चयापचय में वृद्धि होती है। इस प्रकार से 30–40 किग्रा गंधक/हे. की दर से प्रयोग गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता के लिए उचित रहता है। गंधक के विभिन्न स्रोतों में अमोनियम सल्फेट, अमोनियम फास्फेट, सल्फेट, जिप्सम एवं सिंगल सुपर फास्फेट का प्रभाव लगभग समान पाया गया हैं।

संतुलित उर्वरकों का प्रयोग

भारतीय मृदाओं में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी का कारण अधिक पोषक तत्व की मात्रा वाले अकार्बनिक उर्वरकों का प्रयोग एवं कम पोषक तत्वों की मात्रा वाले कार्बनिक खादों का न्यूनतम प्रयोग ही रहा है। फलस्वरूप गन्ने में अन्य पोषक तत्वों की कमी परिलक्षित हो रही है। खादों पर लम्बे समय तक किये जाने वाले प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि फसल की उत्पादकता तथा मृदा की गुणवत्ता, अन्तः गहन फसल पद्धति में अधिक समय तक बनाए रखने के लिए न ही रासायनिक उर्वरक एवं न ही कार्बनिक खादें ही अकेले उत्तम सिद्ध हो सकती हैं। इसलिए पोषक तत्वों का समेकित प्रबन्ध जिससे सभी रासायनिक, कार्बनिक एवं जैविक खादों का समग्र प्रयोग, जिससे मृदा की उर्वरता एवं फसल की उत्पादकता को बनाए रखा जा सके ही उत्तम विधि हैं।

हरी खाद वाली फसलें जैसे सनई, ढैंचा, ग्वार इत्यादि को जुताई कर मृदा में मिलाने से मृदा की संरचना में तथा फास्फोरस के घुलनशीलता पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। सामान्यतयः एक हरी खाद वाली फसल लगभग 30–40 किग्रा. नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण करती हैं। शाहजहाँपुर (उ.प्र.) में अध्ययनों से पता चला कि गन्ने की पंक्तियों के बीच में सनई की खेती तथा 60 दिन की अवस्था पर खेत में ही इसको पलटने से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की बढ़ोत्तरी होती है एवं गन्ने की उपज तथा शर्करा पर कोई विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ा। मुजफ्फरनगर तथा लखनऊ में अध्ययनों से यह पता चला कि केवल हरी खाद की जड़ों से ही 50 प्रतिशत नत्रजन मृदा में मिल जाती है।

आलू की पत्तियों की हरी खाद जिसमें 2.5 प्रतिशत नत्रजन तथा 80–85 प्रतिशत जल होता है से 30 किग्रा. नत्रजन/हे. मृदा में उपलब्ध होता है लेकिन गन्ने की उपज में वृद्धि 50 किग्रा. नत्रजन/हे. के समतुल्य होती हैं। इसका प्रभाव अन्य सारे पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा पत्तियों के ही उसी जगह पर सड़ने के कारण से हुआ। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ में शरदकालीन गन्ने में गन्ना उत्पादन क्षमता (237.5 किलो0 गन्ना/किलो. नत्रजन) ढैंचा की हरी खाद लेने के बाद जब गन्ना की बुवाई की गयी में रसायनिक खादों की तुलना में वृद्धि अंकित की गयी। जहाँ पर केवल रासायनिक खादों का ही प्रयोग हुआ था वहाँ पर यह केवल 128.5 किलो. गन्ना/किलो. नत्रजन पायी गयी। गोबर की खाद डालने से यह 181.2 किलो. गन्ना/किलो. उर्वरक नत्रजन पायी गयी। मिल से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों में लगभग 3 प्रतिशत प्रेसमड होता है। इसके अतिरिक्त इससे अच्छी मात्रा में द्वितीय तथा सूक्ष्म पोषक तत्व भी मिलते हैं। रासायनिक उर्वरकों के साथ प्रेसमड के समेकित प्रबन्ध से मृदा की भौतिक, रासायनिक तथा जैविक संरचनाओं पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है तथा नत्रजन का पौधों के द्वारा उपयोग भी बढ़ता है। इस प्रकार से 30 टन/हे. की दर से अगर प्रेसमड का प्रयोग किया जाय तो नत्रजन की पौधों के द्वारा शोषण 100 किग्रा. नत्रजन रासायनिक खादों के बराबर ही होता है। 10 टन प्रेसमड प्रति हेक्टेयर के साथ + 75 किग्रा. नत्रजन (रासायनिक उर्वरकों के द्वारा डालने से) 50 प्रतिशत नत्रजन की बचत होती है और इसकी उपज लगभग 150 किग्रा. नत्रजन/है. की दर के बराबर आती है।

विनास जो कि एल्कोहल डिस्टीलरी से अपशिष्ट द्रव पदार्थ के रूप में निकलता है तथा चीनी मिल द्वारा ही उत्पादित किया जाता है को प्रेसमड, रासायनिक उर्वरकों के साथ मिश्रित कर गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं दिखायी पड़ा। स्पेन्टवाश को सिंचाई जल के साथ देने से गन्ने में लवणीय तथा कैल्शियम युक्त मृदाओं में लौह जनित हरिमाहीनता में कमी पायी गयी।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

नवीनतम सस्य तकनीक अपनाकर गन्ना उत्पादन बढ़ाएँ

ईश्वर सिंह एवं सुधीर कुमार शुक्ल

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ 226002

गन्ने का भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण स्थान है। गन्ना भारत वर्ष में उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु क्षेत्रों में लगाया जाता हैं। उपोष्ण जलवायु क्षेत्र में गन्ना उत्पादक राज्यों में मुख्यतः उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार एवं पश्चिम बंगाल आते हैं। यहाँ गन्ना की बुवाई शरद कालीन (अक्टूबर – नवम्बर), बसंत कालीन (फरवरी – मार्च) एवं ग्रीष्म कालीन (अप्रैल – मई) में की जाती है। गन्ना क्षेत्र का अधिकतम भूभाग ग्रीष्म कालीन बुवाई के अंतर्गत आता है जिसके कारण यहाँ गन्ने की उत्पादकता काफी कम है। गन्ने की उत्पादकता में वृद्धि तभी संभव है जब गन्ना उत्पादक किसान, कृषि शोध संस्थानों में सृजित नवीन तकनीकी ज्ञान को प्रभारी तरीके से अपनाएं।

उपयुक्त जलवायु

गन्ने की बुवाई एवं फसल बढ़वार के लिए 20 – 35° से. तापमान उपयुक्त रहता है। गन्ने की खेती उन सभी क्षेत्रों में जहाँ वार्षिक वर्षा 750 – 1200 मि. मी. तक होती है सफलतापूर्वक की जा सकती है। लम्बे दिन, तेज चमकदार धूप एवं कम आर्द्रता से गन्ने में कल्ले अधिक बनते हैं तथा गरम एवं अधिक आर्द्रता गन्ने की वृद्धि में सहायक होती है।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारी

गन्ने की खेती बलुई दोमट से दोमट और भरी मिट्टी में सफलता पूर्वक की जा सकती हैं परन्तु गहरी एवं उत्तम जल निकास वाली दोमट मृदा जिसका पी. एच. मान 6.0 से 8.5 होता है सर्वोत्तम रहती है। उचित जल निकास वाली जैव पदार्थ व पोषक तत्वों से परिपूर्ण भारी मिट्टियों में भी गन्ने की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। खेत तैयार करने के लिए एक गहरी जुताई के बाद 2–3 बार कल्टीवेटर से जुताई करने के पश्चात

अधिक उपज वाली गन्ना की संस्तुत किस्में

अगेती किस्में			
किस्म	**पहचान एवं विशेषताएँ**	**गन्ना उपज क्षमता**	**शर्करा की मात्रा**
को 98014 (करन –1)	इसका गन्ना मध्यम पतला, हरापन लिए हुए पीले रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है। यह किस्म कम उपजाऊ भूमि व जल भराव की स्थितियों में भी अच्छी पैदावार देती हैं।	75 टन प्रति हेक्टेयर	17.5%
को 0238 (करन –4)	इसका गन्ना मध्यम मोटा तथा धूसर भूरे रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।	80 टन प्रति हेक्टेयर	18.0%
को 0118 (करन –2)	इसका गन्ना मध्यम मोटा तथा धूसर व बैगनी रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है तथा कम पानी से प्रभावित व जलप्लावित क्षेत्रों हेतु एक सहिष्णु किस्म है।	75 टन प्रति हेक्टेयर	18.5%
को 0237 (करन –8)	इसका गन्ना मध्यम मोटा तथा पीले रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।	70 टन प्रति हेक्टेयर	18.75%
को पीके 05191	इसका गन्ना मध्यम मोटाई का होता है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। यह सूखा एवं जलप्लावित क्षेत्रों के लिए भी उपयुक्त पाई गई है।	85–90 टन प्रति हेक्टेयर	17%

को 05009 (करन –10)	यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।	70–75 टन प्रति हेक्टेयर	17–18%
को शा 96268 (मिठास)	इसका गन्ना मध्यम पतला तथा हल्का पीलेपन लिए हुए हरे रंग का होता है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।	70 टन प्रति हेक्टेयर	18%
मध्य देर से पकने वाली			
को 0124 (करन –5)	इसका गन्ना मध्यम मोटाई तथा पीले रंग लिए हुए होता है। यह लाल सड़न रोग से प्रतिरोधी किस्म है।	75 टन प्रति हेक्टेयर	18.0%
को 05011 (करन –9)	इसका गन्ना मध्यम मोटाई का होता है। यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। इसकी पेड़ी बहुत ही उत्तम होती है।	75.80 टन प्रति हेक्टेयर	17–18%
को शा 96275 (स्वीटी)	इसका गन्ना मध्यम पतला तथा हल्का पीलेपन लिए हुए हरे रंग का होता है। यह लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है।	80 टन प्रति हेक्टेयर	17.5%
को ह 119	यह किस्म लाल सड़न व कंडुआ रोग के प्रति अवरोधी है।	80–85 टन प्रति हेक्टेयर	17.5%
को पंत 97222	इसका गन्ना मध्यम मोटाई तथा हल्के हरे रंग का होता है। यह लाल सड़न के प्रति मध्यम रोग रोधी है।	80–85 टन प्रति हेक्टेयर	17.0%
को ह 128	यह किस्म लाल सड़न रोग के प्रति मध्यम अवरोधी है। इसकी पेड़ी बहुत ही उत्तम होती है।	80–85 टन प्रति हेक्टेयर	16.5–17.5%
को जे 20193	यह किस्म सामान्य एवं देर से बुवाई वाली दशाओं के लिए उपयुक्त पाई गई है। इस किस्म को अच्छा गुड़ उत्पादन हेतु भी प्रयोग किया जा सकता है।		

पाटा लगाकर खेत की मिट्टी को भुरभुरा तथा खेत समतल कर लेते है।

स्वस्थ बीज गन्ना उत्पादन प्रौद्योगिकी

गन्ने के स्वस्थ बीज की निर्बाधित आपूर्ति हेतु एक त्रिस्त्रीय बीज कार्यक्रम विकसित किया गया है। यह कार्यक्रम मुख्यतः ऊष्मा उपचार पर आधारित है जिससे बीजजनित संक्रमणों का प्रभावी रूप से नियंत्रण हो जाता है। इस कार्यक्रम का प्रत्येक चरण (अभिजनक गन्ना बीज, आधारीय बीज तथा व्यावसायिक गन्ना बीज) एक वर्ष में पूर्ण हो जाता है तथा तीसरे वर्ष के अन्त में कृषकों को व्यवसायिक गन्ना बीज उपलब्ध करा दिया जाता है। इस बीज उत्पादन कार्यक्रम के अनुसार, यदि एक हेक्टेयर क्षेत्र में अभिजनक गन्ना बीज का उत्पादन प्रारम्भ किया जाए तो तीसरे वर्ष (बहुगुणन अवस्था के अन्त) में एक हजार हेक्टेयर क्षेत्र में परम्परागत विधि से गन्ने की बुवाई करने के लिए व्यवसायिक गन्ना बीज उत्पन्न हो जाता है। इस कार्यक्रम से कृषकों को रोगमुक्त स्वस्थ गन्ना बीज उपलब्ध हो जाता है। चीनी मिल क्षेत्रों में स्वस्थ गन्ना बीज की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए संस्थान द्वारा विकसित नमीयुक्त गर्म हवा उपचार (एम एच ए टी) इकाई कई चीनी मिलों में स्थापित की जा चुकी है।

गन्ना बोने की उन्नत विधियाँ

ट्रेंच (चौड़ी नाली) विधि

गन्ने की बुवाई 30 से. मी. चौड़ी एवं 30 से. मी. गहरी नालियों में की जाती है। एक नाली में गन्ने की दो पंक्तियाँ रखी जाती हैं। नालियों की केंद्र से केंद्र की

दूरी 120 से. मी. (90:30 से. मी.) रखी जाती हैं। सिचाई जल को अधिक समय तक ग्रहण करने के कारण इस विधि से सिंचाई में कमी की जा सकती हैं। जड़ों की गहराई तथा वृद्धि अधिक होने से समतल विधि की अपेक्षा इस विधि से कम से कम 30 प्रतिशत तक गन्ने की उपज अधिक होती हैं।

गड्ढा विधि

गन्ना बुआई के बाद प्राप्त फसल में मातृ गन्ने एवं किल्ले दो होते हैं। मातृ गन्ने बुआई के 30–35 दिनों के बाद निकलतें हैं जब कि किल्ले मातृ गन्ने निकलने के 45–60 दिनों के बाद निकलते हैं। इस कारण मातृ गन्नों की तुलना मे किल्ले कमजोर होते हैं तथा इनकी लम्बाई, मोटाई व वजन भी कम होता हैं। दक्षिण भारत में अधिक उपज के कारणों का विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि वहां गन्ने का जमाव 60–80 प्रतिशत हो जाता है जबकि उत्तर भारत में यह जमाव लगभग 33 प्रतिशत ही होता हैं। इस प्रकार दक्षिण भारत में प्रति हेक्टेयर प्राप्त एक लाख गन्नों में लगभग 70 हजार मातृ गन्ने होते हैं जबकि उत्तर भारत में मातृ गन्नों की संख्या केवल 33 हजार ही होती हैं, बाकी गन्ने किल्लों से बनते हैं जो कम वजन के होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि प्रति हेक्टेयर अधिक से अधिक मातृ गन्ने प्राप्त किये जाऐं। प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक से अधिक मातृ गन्ने प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि बुआई के समय अधिक से अधिक गन्ने के टुकड़ों को बोया जाए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए गोल गड्ढ़ों में समान्य से अधिक गहराई पर गन्ने के टुकड़ो को विशेष प्रकार से बोया जाता है जिससे अधिक से अधिक मातृ गन्ने बने व कम से कम या नहीं के बराबर किल्ले निकले। इस विधि को ''किल्ले रहित तकनीक'' भी कहते हैं।

गड्ढा बुआई विधि के लाभ

सामान्य विधि की अपेक्षा इस विधि द्वारा डेढ़ से दो गुना अधिक प्राप्त होती है।

सिर्फ गड्ढ़ों में ही सिंचाई करने के कारण 30–40 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत होती है।

पोषक तत्व उपयोग क्षमता में 30–35 प्रतिशत तक वृद्धि होती है।

फर्ब विधि द्वारा गेहूँ – गन्ना फसल पद्धति

उत्तर–पश्चिम भारत में अधिकतर किसान गन्ने की बुवाई गेहूँ की फसल लेने के बाद करते है। जिससे गन्ने की बुवाई अप्रैल के आखिरी सप्ताह या मई के प्रथम पखवाड़े में ही हो पाती है। गेहूँ की फसल के बाद लगाये गये गन्ने की पैदावार में फरवरी में लगाये गये गन्ने की अपेक्षा लगभग 35 से 50 प्रतिशत की कमी हो जाती है। गेहूँ – गन्ना फसल चक्र में गन्ने की उत्पादकता बढ़ाने के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा फर्ब प्रणाली में से गेहूँ व गन्ना लेने की तकनीक विकसित की गई हैं जिसमें गेहूँ रेज्ड बेड पर ली जाती है तथा गन्ने की बुवाई नालियों में कर देते है।

इस पद्धति में प्रत्येक रेज्ड बेड पर जो कि लगभग 50 से.मी. चौड़ी होती है, गेहूँ की तीन पंक्तियों की बुवाई 17 से.मी. की दूरी पर बुवाई के उपयुक्त समय नवम्बर या दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में की जाती हैं। 75 से 80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीज दर उपयुक्त रहता है। रेज्ड बेड व नालियां बनाने के लिए संस्थान द्वारा ट्रैक्टर चालित रेज्ड बेड मेकर कम फर्टी सीड ड्रिल भी विकसित की गई है जो रेज्ड बेड व नालियां बनाने के साथ – साथ खाद डालने व गेहूँ बोने का काम भी एक साथ कर देती हैं। गेहूँ के अच्छे जमाव के लिए नालियों में पहली हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। बाद की सिंचाईयां भी नालियों में ही दी जाती है। शोध कार्यों से निष्कर्ष निकला है कि पहली हल्की सिंचाई के बाद 5.0 से 6.0 सें.मी. की प्रत्येक सिंचाई उपयुक्त रहती है। रेज्ड बेड पर मिट्टी की दशा अच्छी होने के कारण गेहूँ का जमाव,

कल्ले व बढ़वार अपेक्षाकृत अच्छी होती है तथा पैदावार भी अच्छी आती हैं।

गन्ने की बुआई भी नवम्बर माह में 80 से. मी. दूरी पर स्थित नालियों में गेहूँ बोने के तुरंत बाद दी जाने वाली हल्की सिंचाई के साथ कर देते हैं। गन्ने के टुकड़ों को सिंचित नालियों में डालते हुए पैर से दबाते हुए चलते हैं। दिसंबर माह में बोई जाने वाली गेहूँ की दशा में गन्ने की बुवाई गेहूँ की खड़ी फसल में 80 से.मी. दूरी पर स्थित नालियों में फरवरी माह में की जाती है जो कि उपोष्ण कटिबन्धीय भारत में बसन्त कालीन गन्ना बोने का उपयुक्त समय है। गन्ने की बुवाई गेहूँ में सिंचाई के साथ की जाती हैं। गेहूँ में सिंचाई सायं काल को की जाती है तथा दूसरे दिन जब मिट्टी फूल जाती है तथा

हल्का पानी नालियों में रहता है तब गन्ने के 2 या आंखों वाले टुकडों को डाल कर पैरों से कीचड़युक्त नालियों में दबाते हुये चलते हैं। भारी मिट्टियों में नालियों में मिट्टी को ढीला करने के लिए सिंचाई से पहले व्हील हो चला देते है जिससे गन्ने के टुकड़े मिट्टी में अच्छी तरह दब जाते हैं। इस विधि से गन्ने की बुवाई गेहूँ – गन्ना फसल चक्र के अपेक्षाकृत 50 से 60 दिन पहले उपयुक्त समय पर कर सकते है। गन्ने की बुवाई के बाद की सिंचाई गेहूँ की आवश्यकता के अनुसार नालियों में दी जाती है तथा गेहूँ की कटाई के बाद भी इन नालियों को सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाता हैं।

फर्ब तकनीक के लाभः

सबसे पहला लाभ यह है कि इस पद्धति में गन्ने की बुवाई उपयुक्त समय (फरवरी) में की जाती है जबकि गेहूँ – गन्ना फसल चक्र में गन्ने की बुवाई अप्रैल के आखिरी सप्ताह या मई के प्रथम पखवाड़े तक हो पाती है। इस प्रकार इस पद्धति में गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के साथ –साथ गन्ने की पैदावार में देर से बोये गये गन्ने की अपेक्षा 35 से 40 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती हैं।

इस पद्धति में गन्ने की बुवाई के लिए अलग से पलेवा व खेत तैयार करने की आवश्यकता नही होती हैं। गेहूँ की कटाई के समय तक गेहूँ में दिया गया पानी ही दोनों फसलों के लिए पानी की आवश्यकता को पूरा कर देता है।

इस पद्धति में सिंचाई केवल नालियों में दी जाती हैं जिससे प्रत्येक सिंचाई में क्यारियों में सिंचाई की अपेक्षा पानी की मात्रा लगभग 20 प्रतिशत कम लगती है और जल उपयोग क्षमता 16.5 प्रतिशत बढ़ जाती है।

गन्ना के साथ अन्य सहफसलें

इस पद्धति में खरपतवार रेज्ड बेड के

गन्ना+आलू

गन्ना+राजमा

गन्ना+सरसों

बजाय नालियों में आते हैं जिससे फसल को अधिक नुकसान नहीं पहुँचा सकते। खरपतवार अधिकतर नालियों में ही आते हैं जिसको निराई करके या खरपतवार नाशी दवाइयों का छिड़काव करके नियन्त्रित किया जा सकता हैं।

इस पद्धति में बीज व खाद की मात्रा कम लगती है। 75 से 80 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर गेहूँ का बीज पर्याप्त रहता हैं। उर्वरक भी रेज्ड बेड पर ही डालते है

जिससे उर्वरक की मात्रा बच जाती है।

इस प्रकार फर्ब प्रणाली में ओवर लैपिंग पद्धति से गेहूँ व गन्ना लेने से उत्पादन खर्च कम होने के साथ – साथ गन्ने का उत्पादन 35 से 40 प्रतिशत बढ़ जाता है।

सिंचाई की विधियां

गन्ने की क्रान्तिक वृद्धि अवस्थाओं पर सिंचाई–गन्ना एक लम्बी अवधि की फसल होने के कारण इसकों विभिन्न मौसमों से गुजरना पड़ता हैं। गन्ने की प्रारम्भिक वृद्धि के समय अधिक गर्मी होने के कारण जल्दी–जल्दी सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार भूमि,

जहाँ सिंचाई करने के लिए कम सिंचाइयों के लिए ही पानी उपलब्ध है वहाँ यदि गन्ने की सिंचाई इन क्रान्तिक वृद्धि अवस्थाओं में की जाए तो गन्ने की उपज पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता ।

एकान्तर नाली सिंचाई विधि– साधारणतयाः किसान प्रवाह विधि से सिंचाई

सिंचाई समय सारणी

सिंचाई जल की उपलब्धता	सिंचाई करने की फसल वृद्धि अवस्थाएं			
	जमाव	किल्ले निकलने की प्रथम अवस्था	किल्ले निकलने की द्वितीय अवस्था	किल्ले निकलने की तृतीय अवस्था
4 सिंचाई के लिए	सिंचाई करें	सिंचाई करें	सिंचाई करें	सिंचाई करें
3 सिंचाई के लिए	–	सिंचाई करें	सिंचाई करें	सिंचाई करें
2 सिंचाई के लिए	–	–	सिंचाई करें	सिंचाई करें
1 सिंचाई के लिए	–	–	–	सिंचाई करें

जलवायु व फसल की अवस्था के अनुसार गन्ने में लगभग 1500–2500 मि. मी. सिंचाई जल की आवश्यकता होती है। गन्ने की अच्छी उपज लेने के लिए प्रारम्भिक वृद्धि अवस्था के समय भूमि में उचित नमी बनाये रखना अति अवश्यक है। गन्ने के पूरे जीवनकाल में कुछ निश्चित वृद्धि अवस्थायें होती हैं जिन पर सिंचाई न करने से उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इन अवस्थाओं को क्रान्तिक वृद्धि अवस्थाएं कहते हैं। ये अवस्थाएं अंकुरण या प्रस्फुरण और किल्ले बनने की प्रथम, द्वितीय व तृतीय अवस्थाएं हैं। ऐसे क्षेत्रों में करते हैं जिससे पूरे खेत में पानी भर जाता है। इस प्रकार सिंचाई करने से भूमि स्तर से वाष्पीकरण द्वारा काफी पानी उड़ जाता है तथा पानी की हानि होती है। एकान्तर नाली सिंचाई विधि में गन्ने की बुआई समतल विधि से करते है तथा गन्ने के जमाव के बाद प्रत्येक दूसरी व तीसरी पंक्ती के मध्य 45 से.मी. चौड़ी व 15 से.मी. गहरी नालियां बना देते हैं और इन्हीं नालियों में सिंचाई करते हैं। जिससे 30–40 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत हो जाती है जिससे गन्ना उत्पादन लागत में कमी आ जाती है।

बूँद–बूँद सिंचाई विधि– बूँद–बूँद सिंचाई विधि से पानी की हानि बहुत कम होती है। जिससे 50–60 प्रतिशत पानी की बचत होती है। पानी की बचत के साथ–साथ गन्ने की उपज में भी 15–20 प्रतिशत की बढोत्तरी पाई गई है। इस विधि का एक और लाभ यह है कि हम तरल उर्वरक भी बूँद – बूँद सिंचाई के साथ दे सकते हैं जिससे गन्ने की पैदावार में वृद्धि होती है तथा उर्वरक की मात्रा में बचत होती है।

खाद एवं उर्वरकों का प्रबंधन

गन्ने की फसल साल भर खेत में रहती है तथा वानस्पतिक उपज ज्यादा होने के कारण पोषक तत्वों की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। 100 टन उत्पादन वाली गन्ने की फसल मिट्टी से लगभग 205 कि. ग्रा. नत्रजन, 55 कि. ग्रा. फास्फोरस, 275 कि. ग्रा. पोटेशियम के अतिरिक्त 30 कि. ग्रा. गंधक व 3.5 कि. ग्रा. लौह का अवशोषण करती है। इन पोषक तत्वों की पूर्ति के लिए 150–200 कि. ग्रा. नत्रजन, 60 कि. ग्रा. फास्फोरुस, 60 कि. ग्रा. पोटेशियम प्रति हेक्टेयर की दर से संस्तुत की जाती है। गंधक की कमी वाले क्षेत्र में 30–40 कि. ग्रा. गंधक प्रति हेक्टेयर देने से गन्ने की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि पाई गई है। गन्ने के खेत को तैयार करते समय जुटाई से पहले 10–15 टन गोबर की खाद अथवा प्रेसमड का प्रयोग करने से मृदा की

उर्वरा शक्ति में सुधार होता है तथा उपज में बढोत्तरी होती है।

पताई बिछाना

अधिकतर किसान गन्ने की सूखी पत्तियों को या तो खेतों में जला देते हैं अथवा दूसरे उपयोग जैसे छपपर बनाने व ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं। जलाने से मिट्टी में रहने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीव मर जाते हैं साथ ही पत्तियों में पाये जाने वाले पोषक तत्व भी नष्ट हो जाते हैं। यदि इन सूखी पत्तियों की एक पतली परत (8 से 10 सेमी.) खेतों में बिछा दी जाए तो मिट्टी की सतह से पानी का वाष्पीकरण कम होता है जिससे 35 से 45 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत होती है। पताई बिछाने से मृदा का तापमान विनियमित हो जाता है । साथ ही मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी अधिक समय तक बनी रहती है जिससे मृदा में पाये जाने वाले लाभदायक सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता से पौधों नत्रजन व फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ जाती हैं। जब यह पत्तियां खेतों में सड़ती है तो मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्वों में बढ़ोत्तरी होती है जिससे मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार होता है। इस प्रकार गन्ने की पैदावार बढ़ती है। सामान्यता सूखी पत्तियां गन्ने की उपज का 10–12 प्रतिशत होती हैं। इनमे 0.42 प्रतिशत नत्रजन, 0.15 प्रतिशत फास्फोरस, 0.5 प्रतिशत पोटाश होते हैं।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार गन्ने की फसल के साथ स्थान, उपलब्ध सूर्य के प्रकाश, पोषक तत्वों एवं जल के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं तथा किल्ले निकलने को अत्यधिक प्रभावित करते हैं जिससे गन्ने की वृद्धि एवं उपज कम हो जाती है। बावक फसल में फसल बोने के 60–120 दिन व पेड़ी फसल में पेड़ी प्रारभ होने के 30–90 दिन के बीच खरपवार की उपस्थिति गन्ने की फसल पर सबसे ज्यादा प्रतिकूल प्रभाव डालती है। बसंत कालीन गन्ने में बुवाई के बाद 45, 65 व 85 दिन पर गुड़ाई करने से खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण हो जाता है। श्रमिकों के अभाव की स्थिति में, गन्ने की बुवाई के तुरंत बाद एट्राजीन (2.0 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व 1000 लीटर पानी में) तथा बुवाई के 60 दिन बाद 2, 4–डी (1.0 कि. ग्रा. सक्रिय तत्व 800–1000 लीटर पानी में) घोल बनाकर छिड़काव तथा इसके बाद 90 दिन की अवस्था पर एक गुड़ाई करने से खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है।

पेड़ी प्रबंधन

अच्छी पेड़ी लेने के लिए बावक फसल की फरवरी – मार्च में कटाई करें। यह समय भूमिगत कलिकाओं की वृद्धि एवं विकास के लिए उपयुक्त होता है। एक समान फुटाव के लिए बावक फसल की कटाई जमीन की सतह से करें तथा ठूंठ काट दें। इसके तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए। तत्पश्चात खाद डालकर, गुड़ाई करके गन्ने की पंक्तियों के बीच पतई बिछा देनी चाहिए। शीघ्र पकने वाली प्रजातियाँ एवं शरद कालीन गन्ना की कटाई जाड़े में की जाती है जिससे भूमिगत कलिकाओं का फुटाव कम ताप की वजह से प्रभावित होता है। अच्छे फुटाव के लिए भूमि सतह से कटे ठुठों पर पोलिथीन की शीट बिछने व ठूंठ के ऊपर 5–7 से. मी. मिट्टी चढ़ाने से मिट्टी का ताप बढ़ जाता है तथा फुटाव में सहायता करता है। भूमिगत कलिकाओं के विकास के लिए कटाई के 15 दिन पूर्व ईथरेल 200 पी पी एम. यूरिया 4% का छिड्कव या एक माह पूर्व 80 कि. ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर का प्रयोग अंतिम सिंचाई के साथ करने से भूमिगत कलिकाओं का फुटाव अच्छा होता है। पेड़ी फसल में बावक फसल के समतुल्य ही फास्फोरस व पोटाश देना चाहिए तथा नत्रजन 25% अधिक देना चाहिए। भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने पेड़ी फसल प्रबंधन मशीन का विकास किया है जो पेड़ी प्रबंधन के सभी काम एक साथ ही पूरा करती है जिससे पेड़ी की उपज अच्छी होती है।

स्वीकृत प्रजाति जो हैं अपनाते, कभी नहीं वे धोखा खाते।
गन्ना बोकर जश्न मनाओ, जीवन में मिठास ले आओ।
थान पे मिट्टी तीन बँधाई, देखो गन्ना ले अँगड़ाई।
चीनी, गुड़, अल्कोहल, चारा, गन्ना जग में सबसे प्यारा।

– डॉ. अजय कुमार साह

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित गन्ना सहफ़सली बुवाई यंत्र

अखिलेश कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना भारतवर्ष की एक प्रमुख नगदी फसल है, जिसे उत्तर भारत में 75 से 90 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोया जाता है। गन्ना दीर्घकालिक फसल है जो 8 से 18 महीने तक खेत में रहता है। गन्ने की दो पंक्तियों के मध्य खाली जगह में अल्पकालिक फसल की बुवाई करके सहफसली खेती करने से खेती को और अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। गन्ने के साथ प्रमुख सहफसलों में आलू, गेहूँ, दलहनी एवं तेलहनी फसलें लाभकारी पायी गयी हैं।

गन्ने की खेती एक श्रम–साध्य क्रिया है जिसमें अत्यधिक श्रम, ऊर्जा एवं लागत की आवश्यकता होती है। गन्ने के साथ सहफसली खेती करने में व्यावहारिक कठिनाई इसकी बुवाई है जो अत्यधिक श्रम–साध्य होने के साथ कठिन होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा गन्ने के साथ सहफसली बुवाई यंत्रों का विकास किया गया है। इन यंत्रों का प्रयोग कार्य को सरल एवं सुचारू रूप से सम्पन्न करने में सहायक होते हैं। इनके प्रयोग से श्रम, समय एवं धन की बचत होती है। गन्ने के साथ सहफसली बुवाई हेतु भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ द्वारा निम्न लिखित कृषि यंत्रों का विकास किया गया है:–

1 गन्ना सह फसल बुवाई यंत्र

2 मेंड़ शैय्या बुवाई यंत्र

3 गन्ना सह मेंड़ शैय्या बुवाई यंत्र

4 गन्ना सह आलू बुवाई यंत्र

गन्ना सहफसल बुवाई यंत्र से परम्परागत बुवाई विधि के अन्तर्गत गन्ने के साथ गेहूँ की बुवाई की जाती है। इस यंत्र की मदद से गन्ने की दो पंक्तियों की बुवाई 75 से. मी. की दूरी पर की जाती है एवं गन्ने की दो पंक्तियों के मध्य 3 पंक्तियाँ गेहूँ की बोई जाती है। सहफसल के रूप में गेहूँ के अतिरिक्त अन्य फसलें जैसे उर्द, मूँग, मसूर इत्यादि दलहनी फसलों की भी बुवाई की जा सकती है। इसे 35 अथवा अधिक अश्व शक्ति के ट्रैक्टर से चलाया जाता है। इस यंत्र की कार्य–क्षमता 0.2 हेक्टेयर/घंटा है। अर्थात इस यंत्र के प्रयोग से लगभग 5 घंटे में एक हेक्टेयर खेत की गन्ना एवं सहफसली बुवाई की जा सकती है। इस यंत्र के प्रयोग से बुवाई की लागत में लगभग 50 प्रतिशत तक की बचत होती है।

मेंड़ शैय्या बुवाई यंत्र भी ट्रैक्टर चालित यंत्र है जिसकी सहायता से नाली सिंचाई मेंड़ शैय्या बुवाई विधि अन्तर्गत मेंड़ शैय्या पर गेहूँ अथवा अन्य दलहनी सहफसलों की बुवाई की जाती है। यंत्र दो मेंड़ शैय्याओं के बीच नालियाँ बनाता जाता है जिसे सिंचाई के लिए प्रयोग किया जाता है। यंत्र एक साथ तीन नालियाँ एवं दो मेंड़ शैय्याएं बनाता है। नालियों के बीच 80 से.मी. की दूरी रखी जाती है तथा दो नालियों के बीच मेंड़ शैय्या पर सहफसल की तीन पंक्तियों की बुवाई होती है। गन्ने की बुआई फरवरी–मार्च में, सिंचाई उपरान्त नालियों में गन्ने के बीज के टुकड़े डालकर पैरों से दबाते हुए, बाद में की जाती है। इस यंत्र की कार्य–क्षमता 0.4 हेक्टेयर/घंटा है। हाथों से नाली एवं मेंड़–शैय्या बनाकर इस विधि में गन्ना एवं सहफसली की बुवाई एक बहुत ही कठिन, श्रम–साध्य एवं खर्चीली प्रक्रिया है इसलिए इस विधि को केवल कृषि यंत्रों का प्रयोग करके ही किया जा सकता है।

ट्रैक्टर चालित गन्ना सह मेंड़ शैय्या बुवाई यंत्र द्वारा नाली सिंचाई मेड़ शैय्या बुवाई विधि के अन्तर्गत मेंड़ शैय्या पर गेहूँ अथवा अन्य सहफसल की बुवाई के साथ–साथ दो मेंड़–शैय्याओं के मध्य नाली में गन्ने की बुवाई भी साथ–साथ सम्पन्न की जाती है। यंत्र एक साथ तीन नालियाँ एवं दो मेंड़ शैय्याएं बनाता है। नालियों के मध्य 75 सेमी. की दूरी होती है। एक बार में केवल दो नालियों में गन्ने की बुवाई होती है तथा तीसरी नाली खाली रखी जाती है लौटते समय खाली नाली में गन्ने की बुवाई सम्पन्न होती है। नालियों के मध्य मेंड़–शैयाओं पर सहफसल की दो पंक्तियों की बुवाई की जाती है। इस यंत्र की कार्य–क्षमता 0.2 हेक्टर/घंटा है अर्थात लगभग 5 घंटे में एक हेक्टर की बुवाई इस यंत्र से की जा सकती है। इस यंत्र का प्रयोग करने से बुवाई लागत में 50 प्रतिशत से अधिक की कमी आती है।

ट्रैक्टर चालित गन्ना सह आलू बुवाई यंत्र गन्ने के साथ सहफसल के रूप में आलू एक लाभदायक फसल है। संस्थान ने एक ट्रैक्टर चालित गन्ना सह आलू बुवाई यंत्र का विकास किया है जिसकी सहायता से गन्ने की दो पंक्तियों को 75 सेमी. की दूरी पर नालियों में बोते हैं तथा दो गन्ने की पंक्तियों के मध्य एक पंक्ति आलू की बोते हैं। यंत्र का परीक्षण भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के प्रक्षेत्र में किया जा रहा है जिसके एक–दो वर्षों में पूरा होने की संभावना है।

उपर्युक्त वर्णित गन्ना सहफसली कृषि यंत्र काफी उपयोगी एवं लाभकारी है। कृषकों तक उपर्युक्त उपयोगी कृषि यंत्रों की उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ ने विभिन्न कृषि यंत्र निर्माताओं से सहमति प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए हैं। उपर्युक्त कृषि यंत्रों को उपयुक्त रख–रखाव एवं सही तरीके से प्रयोग करके गन्ने के साथ सहफ़सली बुवाई करके गन्ने की खेती को और लाभकारी बनाया जा सकता है।

गन्ना सह फसल बुवाई यंत्र

मेड़ शैय्या बुवाई यंत्र

गन्ना सह मेड़ शैय्या बुवाई यंत्र

गन्ना सह आलू बुवाई यंत्र

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा विकसित गन्ने के साथ सहफसली बुवाई यंत्र

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

वैश्विक एवं भारतीय चीनी बाजार के स्वरूप का आंकलन

अश्विनी कुमार शर्मा एवं ब्रह्म प्रकाश

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वैश्विक चीनी बाजार का स्वरूप

वैश्विक स्तर पर चीनी क्षेत्र में व्यापक एवं एतिहासिक बदलाव दूसरी सहस्त्राब्दी (1001–1999) में आया है। चीनी सोने की कीमत के बराबर महंगी हुआ करती थी। इस शताब्दी में चीनी एक असाधारण, बहुमूल्य तथा लकड़ी के छोटे से बक्सों में परिवहन की जाने वाली वस्तु से हजारों टन के थोक के व्यापार तथा उपभोग की जाने वाली वस्तु बन गई। वर्ष 1900 में विश्व की कुल उत्पादित चीनी का 70 प्रतिशत अंश चुकन्दर से बनाया जाता था लेकिन वर्तमान में चीनी का इतना ही अंश अब गन्ने से बनाया जाता है। वर्ष 1990 में 20 प्रतिशत चीनी का उपभोग खाद्य प्रसंस्करण तथा पेय उद्योगों द्वारा किया जाता था जो अब 60 प्रतिशत तक बढ़ चुका है। विश्व के अमीर देश वर्ष 1990 तक 80 प्रतिशत चीनी का उपभोग करते थे जो अब घटकर 30 प्रतिशत रह गया है।

चीनी उत्पादक राष्ट्रों की सरकारों का हस्ताक्षेप चीनी के नियामन तक सीमित न होकर आज उत्पादन व व्यापार तक फैल गया है। 100 वर्ष पूर्व चीनी का उत्पादन व व्यापार निजी लोगों के हाथों में था पर अब उत्पादन के 22 प्रतिशत, निर्यात के 18 प्रतिशत तथा आयात के 26 प्रतिशत अंश पर सरकारों का नियंत्रण है। गत शताब्दी की भाँति अगले 50–100 वर्षों में भी इसी प्रकार के परिवर्तनों की आशा प्रबल है। बढ़ती जनसंख्या व खान–पान की बदलती आदतों के कारण चीनी की मांग बढ़ रही है। एशियाई तथा अफ्रीकी देशों में जहाँ चीनी की उपभोग दर अभी कम है, वहाँ माँग बढ़ने की अत्यन्त सम्भावना है। इसी प्रकार चीनी के उत्पादन में भी परिवर्तन की अपार सम्भावनाएं हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चीनी बाजार के स्वरूप को बिगाड़ने के लिए कई राष्ट्र उत्तरदायी हैं। कई राष्ट्रों ने घरेलू सहायता, व्यापार बिगाड़ने की नितियाँ (जैसे किसानों को न्यूनतम मूल्य की गारन्टी, उत्पादन तथा विपणन कोटा पर अंकुश लगाने के लिए कोटे का निर्धारण, सरकार द्वारा निर्धारित फुटकर मूल्य, प्रशुल्क, आयात का कोटा तथा निर्यात अनुदान, इत्यादि) अपना रखी हैं। यद्यपि वर्तमान में चीनी के मूल्य पिछले 25 वर्षो के उच्चतम स्तर (वर्ष 2006) से काफी कम हैं, चीनी का बाजार मुख्यतया अधिक माँग तथा मूल्य में उतार–चढ़ाव से प्रभावित होता रहता है। वर्तमान में चीनी के मूल्य कम हैं क्योंकि अब वे देश भी ज्यादा चीनी का उत्पादन करने लगे हैं, जो अक्सर चीनी का आयात करते थे। इन देशों ने ''घरेलू सहायता के तरीके'' (अनुदान इत्यादि) अपनाकर ही चीनी का उत्पादन बढ़ाया है।

चीनी के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का स्वरूप प्रायः 'अधिमान्य व्यापार करार' द्वारा निर्धारित होता है जिसके द्वारा चीनी उत्पादक राष्ट्रों की चीनी को अमेरिका तथा यूरोप के मंहगे घरेलू बाजार में प्रवेश मिल जाता है। यह व्यापार समझौते कई विकासशील देशों के चीनी क्षेत्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। जैसे कि ए.सी.पी. (अफ्रीकन, कैरिबियन तथा प्रशान्त महासागरीय) देशों तथा यूरोप के बीच का चीनी व्यापार दो समझौतों द्वारा नियंत्रित होता है। उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार समझौते (NAFTA) से अमेरिका ने अपने आस–पास के देशों को अपने घरेलू बाजार में छूट देने के लिए कोटे का निर्धारण किया हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य कई ऐसे समझौते हैं जिनसे चीनी का मुक्त व्यापार प्रभावित होता है। अगर किसी देश में (जैसे भारत में) अगर चीनी का उत्पादन किसी वर्ष बढ़ता है, तो इन समझौतों के होते हुए निर्यात के लिए चीनी की उपलब्धता बहुत अधिक बढ़ जाती है और चीनी के दाम गिरने लगते हैं।

ब्राजील, यूरोप, भारत, चीन तथा अमेरिका प्रमुख चीनी उत्पादक राष्ट्र हैं। चीनी के उपभोग की दृष्टि से भारत, यूरोप, चीन, ब्राजील तथा अमेरिका प्रमुख राष्ट्र हैं। निर्यात की दृष्टि से ब्राजील, आस्ट्रेलिया, थाईलैंड, क्यूबा तथा ग्वाटेमाला पाँच प्रमुख राष्ट्र हैं जबकि पाँच प्रमुख आयातक राष्ट्र क्रमशः रूस, यूरोप, अमेरिका, कोरिया तथा जापान हैं।

भारत में चीनी की स्थिति आस्ट्रेलिया, ब्राजील तथा थाइलैण्ड जैसे प्रतिभागी देशों से काफी विपरीत है। उपरोक्त देशों में उत्पादित चीनी का अधिकांश भाग निर्यात किया जाता है परन्तु भारत में उत्पादन का अधिकांश भाग घरेलू उपभोग में खर्च हो जाता है (सारिणी 1)। भारत में घरेलू उपभोग के उपरांत बची मात्रा ही निर्यात की जाती है। अतः भारत में चीनी उद्योग की प्राथमिकता घरेलू बाजार में सस्ते मूल्य पर चीनी उपलब्ध कराना है। भारत की तरह परम्परागत रूप से आयात कर रहे कई देश घरेलू आपूर्ति बढ़ाने के प्रयास कर रहे हैं जिससे कई देशों में चीनी उत्पादन बढ़ा है। इससे उनकी आयात पर निर्भरता काफी हद तक कम हो गई है। इन परिवर्तनों का प्रभाव चीनी के उत्पादन स्तर तथा मूल्यों में उतार–चढ़ाव से परिलक्षित हो रहा है।

भारतीय चीनी बाजार का स्वरूप

भारत में चीनी का उत्पादन पिछली शताब्दी में आरम्भ हुआ था जब पहली

सारिणी 1: भारत एवं विश्व के प्रमुख चीनी उत्पादक देशों में चीनी बाजार की स्थिति (2010–2013 का औसत)

देश	उत्पादन (लाख टन)	उपभोग		निर्यात (लाख टन)	आयात (लाख टन)
		कुल (लाख टन)	कि.ग्रा./ व्यक्ति		
ब्राजील	37.5	13.1	61.3	25.2	0.0
भारत	23.3 (25.04)	23.8 (24.8)	18.3	1.5 (2.5)	1.1 (0.83)
यूरोपियन यूनियन	17.1	19.4	35.4	1.7	3.7
आस्ट्रेलिया	4.2	1.2	46.1	3.3	0.0
थाइलैण्ड	9.0	2.8	38.1	6.5	0.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	7.2	10.2	30.9	0.2	3.2
चीन	12.6	14.9	10.4	0.1	1.9
रूस	4.2	5.9	39.3	0.1	1.7

चीनी मिल वर्ष 1904 में स्थापित की गयी थी। 1930 के दशक के आरम्भ में देश का चीनी उत्पादन मात्र 1.2 लाख टन था। स्वतंत्रता के बाद चीनी उद्योग को प्रोत्साहन मिलने के कारण 1950–51 में चीनी उत्पादन बढ़कर 11 लाख टन, 1980 के दशक के अन्त में 100 लाख टन, शताब्दी के अन्त तक 180 लाख टन, 2006–07 में 283 लाख टन तक बढ़ गया है। गत दशकों में वैश्विक चीनी उत्पादन में भारत का अंश 5 प्रतिशत से बढ़कर 15 प्रतिशत तथा उपभोग 5 प्रतिशत से बढ़कर 13 प्रतिशत हो गया है। चीनी उत्पादन में विश्व में दूसरे स्थान पर होने तथा सबसे बड़ा उपभोक्ता राष्ट्र होने के बावजूद आज भारत चीनी में आत्मनिर्भर ही नहीं, अपितु निर्यात योग्य आधिक्य भी रखता है। भारत में चीनी का उपभोग 3.5 प्रतिशत वार्षिक चक्रवृद्धि दर से बढ़ रहा है जो वैश्विक औसत से अधिक है।

भारत में वर्ष 2014–15 में 250 लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ जबकि 72 लाख टन चीनी का पिछले वर्ष का स्टाक उपलब्ध होने के कारण 322 लाख टन चीनी उपलब्ध थी। देश में लगभग 248 लाख टन चीनी की प्रतिवर्ष खपत आकी गई है। पिछले दो वर्षों में लगभग 8–10 लाख टन चीनी का आयात किया गया है। जबकि 25 लाख टन चीनी निर्यात की गई है। ऐसे परिदृश्य में पिछले कुछ वर्षों से भारत में लगभग 55 लाख टन चीनी के स्टाक शेष रह रहे हैं और चीनी की अधिक उपलब्धता के चलते घरेलू बाजार में चीनी के भाव भी कम हुए हैं।

भारत के ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक व आर्थिक विकास में चीनी क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। देश में गन्ने की खेती के अन्तर्गत 50 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है जो कुल बोए गए क्षेत्रफल का लगभग 2.57 प्रतिशत है। इस प्रकार गन्ने की फसल राष्ट्रीय कृषि सकल घरेलू उत्पाद के कुल मूल्य का लगभग 10 प्रतिशत का योगदान करती है तथा 60 लाख गन्ना उत्पादकों की आजीविका का प्रमुख साधन है। महत्वपूर्ण नकदी फसल होने के अतिरिक्त, गन्ने की फसल देश के कुल सिंचित क्षेत्र के सर्वाधिक क्षेत्र में बोई जाने वाली फसलों धान व गेहूँ के उपरांत तृतीय स्थान रखती है। भारत 28.00 लाख टन प्रतिवर्ष चीनी उत्पादित करके व विश्व के कुल चीनी उत्पादन में 15 प्रतिशत का योगदान करके ब्राजील के बाद सबसे बड़ा चीनी उत्पादक राष्ट्र है। गन्ने से सम्बन्धित आर्थिक क्रिया–कलापों से प्रतिवर्ष 80–85 हजार करोड़ रूपयों की आय होती है। जिसका 72–75 प्रतिशत अंश (लगभग 55–60 हजार करोड़) देश के गन्ना उत्पादक किसानों को गन्ना मूल्य के रूप में मिलता है। वर्तमान में विभिन्न क्षमताओं की 762 चीनी मिलें हैं जिनमें 163 नई चीनी मिलें भी सम्मिलित हैं जो शुरू होने की विभिन्न अवस्थाओं में हैं। इनमें से अधिकांश (111) चीनी समूह हैं जिनमें चीनी उत्पादन के साथ विद्युत उत्पादन तथा आसवनी का कार्य भी साथ ही सम्पन्न करने की सुविधा उपलब्ध है। चीनी के प्रसंस्करण के दौरान कई मूल्यवान उप–उत्पाद भी बनते हैं जिनका विभिन्न उद्योगों में उपयोग किया जाता है। खोई, शीरा व फिल्टर केक या प्रेस मड चीनी उद्योग के मुख्य उप–उत्पाद तथा स्पेन्ट वाश, फर्नेस ऐश तथा फ्लु गैस सूक्ष्म उप–उत्पाद हैं। जहाँ चीनी मिल की आय के कई स्रोत हैं लेकिन इन उत्पादों से होने वाली आय का कृषकों को कुछ भी अंश प्राप्त नहीं होता है।

भारत में गन्ने का उत्पादन दो भिन्न कृषि–पारिस्थितकी क्षेत्रों में किया जाता है। उपोष्ण या उत्तर भारत में देश के गन्ने के अन्तर्गत कुल क्षेत्र का 56 प्रतिशत तथा उष्ण कटिबन्धीय दक्षिण भारत में 44 प्रतिशत अंश है। प्रौद्योगिकी तथा संसाधनों के वर्तमान स्तर के साथ, ये क्षेत्र क्रमशः 120 व 160 लाख टन चीनी के उत्पादन की क्षमता रखते हैं। वर्ष 1970–71 में

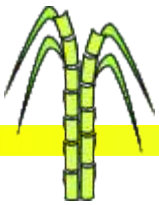

गन्ने के अन्तर्गत औसतन 24.49 लाख हेक्टेयर क्षेत्र था जो वर्ष 2012–13 में बढ़कर औसतन 49.57 लाख हेक्टेयर हो गया है (सारिणी 2)। गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र में प्रतिवर्ष होने वाले उतार–चढ़ाव के बावजूद, गत शताब्दी के अन्त तक प्रति पाँच वर्ष में 9 प्रतिशत तक की औसत वृद्धि दर्ज की गयी है। जबकि इस नई शताब्दी में क्षेत्र में कोई वृद्धि दर्ज नहीं की गयी है, अपितु क्षेत्र में थोड़ी कमी आई है। कुल बोए गए क्षेत्र में गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र का अंश अभी भी लगभग 2.5 प्रतिशत के करीब ही स्थिर है।

चीनी का बड़ा उपभोक्ता व दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक होने के बावजूद भी भारत में चीनी उत्पादन व व्यापार नीति में कोई निश्चित पूर्वानुमान नहीं रहता है। उत्पादन में अनिश्चितता के साथ–साथ उद्योग पर लगे विभिन्न नियंत्रणों के कारण चीनी उद्योग अभी तक अपनी पूर्ण क्षमता का दोहन नहीं कर पाया है। भारत में चीनी का उत्पादन गन्ने के उत्पादन पर सीधे निर्भर रहता है। इसी कारण गन्ने के अधिक उत्पादन होने पर चीनी उत्पादन बढ़ जाता है तथा कम होने पर चीनी का उत्पादन भी कम हो जाता है।

भारत में लगभग 60 लाख गन्ना कृषक है। जिनके औसतन खेत की जोतों का क्षेत्रफल 0.77 हेक्टर है (सारिणी 3)। उपोष्ण राज्यों में उत्तर प्रदेश में ही लगभग 30 लाख गन्ना कृषक हैं तथा प्रदेश के गन्ने की जोतों की आकार महाराष्ट्र व अन्य दक्षिण राज्यों की तुलना में अत्यन्त कम है। छोटी जोत होने के कारण भारत में मंहगी उन्नत गन्ना उत्पादन प्रौद्योगिकी को अपनाने की सम्भावनाएं अत्यन्त सीमित हैं। इसी कारण गन्ने की उत्पादन लागतें भी भारत में काफी ऊँची हैं। कुल लाभ में कृषकों के लाभ का अंश प्रतिवर्ष कम हो रहा है जिससे गन्ना कृषक पोपलर व मैंथा जैसी अन्य फसलों की तरफ रूख कर रहे हैं। भारत में गन्ने की उत्पादकता का स्तर भी लगभग स्थिर ही रहा है। वर्ष 1991 से 2014 की अवधि में गन्ने की उत्पादकता में 0.15 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज की गई है।

सारिणी –3 : भारत में गन्ने की कुल जोतों की संख्या तथा उनका औसत आकार

	जोत			प्रति खेत औसतन गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र			
	कुल (लाख)	अंश (%)	कुल जोतों का प्रतिशत	सीमान्त (< 1 हे.)	छोटे (1–2 हे.)	बड़े (> 10 हे.)	कुल
महाराष्ट्र	10.1	16.9	8.38	0.33	0.66	2049	0.62
उत्तर प्रदेश	30.3	50.6	14.00	0.34	0.81	7.40	0.72
अखिल भारत	59.9	100.0	5.07	0.36	0.77	3.53	0.77

सारिणी 2 : भारत में गन्ना खेती का परिदृश्य

मद	1970–71	1995–96	2013–14	1991–2014 की अवधि के दौरान चक्रवृद्धि दर (प्रतिशत)
गन्ने के अन्तर्गत क्षेत्र (लाख हे.)	24.49	37.69	49.57	0.19
गन्ने का उत्पादन (लाख टन)	1148.8	2547.50	3376.90	1.47
गन्ने की उत्पादकता (टन/हे.)	46.74	67.18	68.20	0.15
पेरा गया गन्ना (लाख टन)	36.79	131.54	234.26	3.19

वैश्विक बाजार के उतार–चढ़ाव के परिवेश में गन्ना किसान की आय की स्थिति

गन्ना उत्पादन का एक महत्वपूर्ण बिन्दु चीनी मिलों को आपूर्ति किए गए गन्ने के मूल्य का भुगतान है। अन्य उद्योगों में कच्चे माल का भुगतान अग्रिम में करना पड़ता है लेकिन चीनी उद्योग में चीनी मिलों द्वारा कच्चे माल (गन्ना) का अग्रिम भुगतान नहीं किया जाता है। किसानों से खरीदे गए गन्ने का भुगतान किसानों को गन्ने के प्रसंस्करण होकर बनी चीनी के बिकने के बाद ही 14 दिनों के बाद किया जाता है। यह अवधि कई बार महीनों व सालों तक भी बढ़ जाती है। जिससे कृषक समुदाय, विशेषतया युवा पीढ़ी को गन्ना उत्पादन में कोई आकर्षण नहीं लगता। प्रत्येक वर्ष 31 मार्च को (सारिणी 4 में निहित) चीनी मूल्यों के बकाए के आँकड़े दर्शाते हैं कि 2008–09 में 7.2 प्रतिशत (1225 करोड़ रूपये) का बकाया था जो वर्ष 2013–14 के चीनी मौसम में बढ़कर 38.2 प्रतिशत (18648 करोड़ रूपये) तक पहुँच गया। कई बार गन्ना मूल्य का भुगतान सम्बन्धित चीनी वर्ष में भी नहीं

किया जाता है। वर्ष 2006–07 का गन्ने मूल्य के लगभग 6.20 प्रतिशत का बकाया अगले वर्ष 2011–12 के चीनी वर्ष समाप्त हो जाने पर भी बाकी था।

गन्ने के मूल्य का कृषकों को देर से भुगतान करने पर खेत फैक्ट्री सम्बन्धों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। गन्ना शीघ्र खराब होने वाली फसल होने के कारण कटाई के बाद शीघ्र ही पेर लिया जाना चाहिए अन्यथा गन्ने का सुक्रोज इन्वर्ट शर्करा में परिवर्तित होने लगता है। जिससे चीनी नहीं बन सकती। अतः इसे ध्यान से रखते हुए गन्ना उत्पादक एक विशेष चीनी मिल में गन्ना आपूर्ति करने को बाध्य है। एक मिल को गन्ना आपूर्ति वाले कृषकों की संख्या एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र तथा एक फैक्ट्री से दूसरी फैक्ट्री में भिन्न हो सकती है। उपोष्ण भारत में चीनी मिलों को गन्ने की आपूर्ति कृषक संघों/गन्ना संघों द्वारा की जाती है तथा महाराष्ट्र में सहकारी समिति/संघों द्वारा की जाती है। जहाँ दक्षिण भारत में एक चीनी मिल में 3,000 से 10,000 तक कृषक गन्ने की आपूर्ति करते हैं, वहीं उत्तरी भारत में लगभग 10,000 से 40,000 तक कृषक गन्ने की आपूर्ति करते हैं। अन्य कृषि फसलों के विपरीत, गन्ने की कटाई इसके विपणन से सम्बद्ध रहती है। चीनी मिलों द्वारा चीनी की उचित परता प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि कृषक मिल को ताजे गन्ने की ही आपूर्ति करें। कटाई को उत्पादन का अवयव माना जाने के कारण ही उत्पादन लागत में कटाई की लागत भी जोड़ी जाती है परन्तु गन्ने में कटाई का सीधा सम्बन्ध विपणन से होता है। इसी कारण, कई राज्यों में कटाई के कार्य का कार्यान्वयन चीनी मिलों द्वारा ही किया जाता है तथा कटाई के कार्य को किसानों के हाथ से वापस ले लिया गया है।

सारिणी 4: कृषकों को गन्ने के मूल्य का भुगतान तथा बकाए की स्थिति

चीनी सत्र (30 अक्टूबर से 30 सितम्बर)	दिनांक पर स्थिति	गन्ने का भुगतान किया जाने वाला मूल्य (करोड़ों रू. में)	भुगतान किया गया गन्ना मूल्य (करोड़ों रू. में)	गन्ने का बकाया मूल्य (करोड़ों रू. में)	गन्ने के भुगतान किए जाने मूल्य का बकाया गन्ना मूल्य (करोड़ों रू. में)
31 मार्च की स्थिति					
2013–14	31.03.2014	48794.10	30145.98	18648.04	38.22
2012–13	31.03.2013	53436.17	40734.00	12702.17	23.77
2011–12	31.03.2012	44596.21	36018.75	8577.46	19.23
2010–11	31.03.2011	36530.88	32215.59	4315.29	11.81
2009–10	31.03.2010	32051.17	29328.61	2723.09	8.50
2008–09	31.03.2009	17002.88	15777.50	1225.37	7.21
सम्बन्धित चीनी सत्र की समाप्ति पर स्थिति					
2011–12	15.11.2012	51941.82	51584.96	356.86	0.69
2010–11	15.11.2011	45035.46	44808.15	227.31	0.50
2009–10	15.11.2010	39301.03	39236.58	64.45	0.16
2008–09	15.11.2009	20247.00	20224.60	22.40	0.11
	31.10.2009	20246.56	20197.54	49.02	0.27
2006–07	15.11.2012	29455.09	27629.33	1825.76	6.20
	30.09.2007	29389.03	26834.38	2554.65	8.69

वैश्विक चीनी बाजार को दृष्टिगत रखते हुए भारत में चीनी उत्पादन को संतुलित करने के लिए व्यापक बदलाव करने की आवश्यकता है। चीनी उत्पादन एवं इथेनॉल उत्पादन में एक सामंजस्य बैठाने की आवश्यकता है ताकि चीनी के मूल्य कम होने की स्थिति में गन्ने से कम चीनी एवं ज्यादा इथेनॉल बनाने की व्यवस्था सुनिश्चित हो सके।

भारत को गन्ना उत्पादन एवं चीनी उत्पादन दोनों की उत्पादन लागत को काफी कम करने की आवरश्यकता हैं ताकि थाईलैंड एवं पाकिस्तान में बनी चीनी से भारत में उत्पादित चीनी की लागत कम हो सके। ऐसा होने से भारत के पड़ोसी देश भारत से चीनी खरीदने के इच्छुक होंगे। चीन देश की जनसंख्या अधिक होने के साथ एक प्रमुख चीनी आयातक देश है। भारत को चीन देश के चीनी बाजार में शामिल होने की आवश्यकता है। इसके लिए भारत को चीन सहित अन्य पड़ोसी देशों को ''सबसे अनुकूल देश'' की सूची में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि चीन व अन्य पड़ोसी देश कम आयात शुल्क देकर भारतीय चीनी का आयात कर सके और भारत से चीनी का निर्यात सुनिश्चित हो सके। चीनी का बहुत ज्यादा स्टॉक न बचा रहे और चीनी मिलों द्वारा किसानों को उनकी उपज का उचित व समय पर भुगतान किया जा सके।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

पौधों में पोषक तत्वों का महत्व एवं कमी के लक्षण

आर. के. सिंह[1], विनोद कुमार[2] एवं विनय कुमार सिंह[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग
[2]भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पोषक तत्वों से तात्पर्य उन सभी ऐसे तत्वों से है जो पौधों की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पौधे इन तत्वों को वायु जल और मिट्टी के माध्यम से ग्रहण करते हैं। पौधों को अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए कुल 17 पोषक तत्वों की अवश्यकता होती है जो इस प्रकार है:–

1 कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजनः गैसीय तत्व। हवा एवं पानी से मिलने वाले तत्व।

2 नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियमः मुख्य तत्व।

3 कैल्शियम, गंधक, मैग्निशियमः द्वितीयक तत्व।

4 लोहा, मैगनीज, ताँबा जस्ता, बाँरोन, मॉलीब्डेनम, क्लोरीन, निकिलः सूक्ष्म तत्व।

पौधों में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण, वृद्धि में कमी, पत्तियों का पीला या बैंगनी होना आदि – दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यह लक्षण पौधों की किस्म विशेष के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं । सभी आवश्यक पोषक तत्वों का एक समान महत्व है। पौधें को कार्बन, हाइड्रोजन एवं आक्सीजन की पूर्ति हवा एवं जल के माध्यम से होती है।

अन्य आवश्यक पोषक तत्व खनिज तत्वों की श्रेणी में आते हैं। तत्व विशेष के अभाव में पौधे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाते हैं एवं तत्व विशेष की कमी में पौधें में उत्पन्न होने वाले लक्षणों को केवल उसी तत्व की पूर्ति करके रोका जा सकता है।

पौधों में पोषक तत्वों के अभाव या अधिकता के लक्षण निम्न प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं :

नत्रजन

कमी के लक्षण

सर्वप्रथम पत्तियाँ हल्की हरी से शिराओं सहित पीली हो जाती हैं, पौधों की वृद्धि कम हो जाती है। अनाज फसलों के निचली पत्तियों के उपरी भाग में पीले रंग के अंग्रजी के V आकृति उभरती हैं। फलों का रंग इस तत्व की कमी के बावजूद भी सामान्य रहता है।

टमाटर में नत्रजन कमी के लक्षण

फॉस्फोरस

कमी के लक्षण

पत्तियाँ गहरी हरी या बैंगनी हो जाती हैं। पत्तियों की शिराओं के मध्य का भाग प्रायः लाल, बैंगनी या भूरे रंग का हो जाता है और अन्त में पत्तियाँ झड़ जाती हैं। जड़ों की वृद्धि रूक जाती है। अत्यधिक कमी की स्थिति में पौधा बौना दिखाई देता है।

पौधें की कुछ प्रजातियों में फासफोरस की कमी के कारण पत्तियों की मुख्य शिरा को छोड़ कर शेष भाग हल्का हरा हो जाता है तथा पत्तियाँ दराती (हसुँआ) की तरह हो जाती हैं जिसे सिकल लीफ (हसुँआ पत्ती) कहते हैं।

मक्के की पत्तियों पर फॉसफोरस (स्फुर) की कमी के लक्षण

पोटेशियम

कमी के लक्षण

पोटेशियम की कमी में सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों के किनारे झुलसे हुए दिखाई देते हैं पत्ती के उपरी शिरे के किनारे पर मृत (मरे हुए) धब्बे उभरते हैं। दलहनी फसलों

अमरूद की पत्ती में पोटेशियम की कमी के लक्षण

में पोटेशियम के अभाव में पत्तियों के किनारों पर सफेद दाने पड़ जाते हैं। इस तत्व की कमी से टमाटर के फल फट जाते हैं एवं उसकी सुगन्ध एवं गुणों में गिरावट आती है।

पोटेशियम की कमी से होने वाले रोग :

डाई बैक : इस तत्व की अधिक कमी से वृक्षों के डाई बैक (शीर्ष का सूखना) नामक रोग हो जाता है।

गुच्छ रोग : पोटेशियम के अभाव में गाजर, सिलेरी और चुकंदर में झाड़ीनुमा वृद्धि होने लगती है, जो गुच्छे के समान होती है। ऐसे लक्षण मटर एवं अनाज वाली फसलों, आदि में देखे जाते हैं।

कैल्शियम

कमी के लक्षण

कैल्शियम की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों, तनों तथा जड़ों के बढ़ने वाले भागों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों का अग्र भाग पीछे की ओर मुड़कर हुक की तरह दिखाई देने लगता है। पत्तियाँ विकृत तथा खुरदरी सी हो जाती हैं। उसके किनारे झुलस से जाते हैं और जड़ों का विकास रूक जाता है।

टमाटर में कैल्शियम की कमी के लक्षण

कैल्शियम की कमी का चिरपरिचित लक्षण टमाटर के पुष्प, पुष्पगुच्छ का सूखना तथा टमाटर फल के अंतिम शिरा का जलने जैसा दिखाई पड़ना प्रमुख है ।

मैग्नीशियम

कमी के लक्षण

मैग्निशियम के अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों में दिखाई देते हैं बाद में नई पत्तियाँ भी प्रभावित हो जाती हैं। सामान्य रूप से पत्तियों पर हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देते हैं, उनका रंग हल्का हो जाता है, किन्तु शिराएँ हरी बनी रहती है। अत्यधिक कमी में ऊतक क्षय होता है एवं अपरिपक्व पत्तियाँ भी गिरने लगती हैं।

मकई पत्ती में मैग्निशियम कमी के लक्षण

गंधक

कमी के लक्षण

गंधक की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों में दिखते हैं। पत्तियाँ हल्की हरी से पीली हो जाती हैं। गंधक की कमी के सभी लक्षण नत्रजन की कमी के लक्षणों से मिलते जुलते है। परन्तु नत्रजन के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों में ही दिखते हैं। जब पौधे में नत्रजन की कमी साथ साथ हो तो पूरा पौधा ही पीला दिखाई देता है। गंधक की अत्यधिक कमी की स्थिति में नई पत्तियों के अग्र भाग तथा किनारों का झुलसना, तने की पोरी का छोटा होना, प्ररोह पश्चमारी आदि लक्षण दिखाई देते हैं। तेल वाली फसलों एवं कन्द वाली फसलों जैसे सरसों, आलू आदि में सल्फर की कमी से उपज में कमी, गुणवता व आकार प्रभावित होती है।

सरसों के पौधों में गंधक कमी के लक्षण

लोहा (लौह)

कमी के लक्षण

पौधों में लोहे की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों मे दिखाई देते हैं। इसके अभाव में शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ जाता है तथा पौधे छोटे और कमजोर हो जाते हैं। अनाज के पौधों की पत्तियों पर लंबी पीली हरी/पीली धारियाँ बन जाती है, जो बाद में सफेद रंग की हो जाती है।

टमाटर में लोहे की कमी के लक्षण

मैग्नीज

मैग्नीज के अभाव के लक्षण मुख्य रूप से नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं। कुछ

फसलों में अभाव के लक्षण सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों पर ही दिखाई देते हैं। अभावग्रस्त पत्तियों पर हरिमाहीन धब्बे पड़ जाते हैं, परन्तु उनकी शिराये हरी बनी रहती हैं। अत्यधिक कमी की स्थिति में हल्के रंग के धब्बे के स्थान पर पीले या भूरे सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। पौधों की वृद्धि रूक जाती है। अनाज की फसलों में मैग्नीज के अभाव के कारण पत्तियाँ भूरे रंग की तथा पारदर्शी हो जाती है, बाद में पत्तियों पर ऊतक क्षय भाग दिखाई देने लगते हैं।

मैग्नीज की कमी से होने वाले रोग

जई का भूरी चित्ती रोग : इसे धूसर धारी, धूसर चित्ती या शुष्क चित्ती के नाम से भी पुकारते हैं। जई, जौ, गेंहूँ राई और मक्का की फसलें धूसर चित्ती रोग से प्रभावित होती है। इस रोग में पत्तियों के निचले आधे भाग में धूसर रंग की छोटी छोटी चित्तिया पड़ जाती है। यही आपस में मिलकर लंबी धारी का रूप धारण कर लेती है। इसके बाद प्रभावित पत्तिया झुक जाती है और मर जाती हैं। यह लक्षण आमतौर पर तीसरी या चौथी पत्ती पर देखे जाते हैं।

सोयाबीन में मैग्नीज की कमी के लक्षण

गन्ने का अंगमारी रोग : कई पत्तियों पर सर्वप्रथम आंशिक रूप से हरिमाहीनता हो जाती है और बाद में यही धब्बे आपस में मिलकर धारियों के रूप में दिखने लगते हैं।

मटर का पंक रोग: मटर की फलियाँ एवं बीज इस रोग से विशेष रूप से प्रभावित होते हैं।

चुकन्दर का चित्तीदार पीला रोग: पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं शिरायें हरी बनी रहती है। प्रभावित पत्तियों की उपरी सतह उपर की ओर मुड़ सी जाती है।

जस्ता

जस्ते की कमी के लक्षण:

सामान्यतः पुरानी पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं, परन्तु नई पत्तियाँ भी प्रभावित हो जाती है। आमतौर पर पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती है और उन पर पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियों पर सफेद धारिया सी पड़ जाती है और शिराओं के बीच के ऊतक भी मर जाते हैं नत्रजन की कमी जैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं एवं पत्तियाँ बेलनाकार दिखाई देती है।

धान के पौधे में जस्ते की कमी के लक्षण

जस्ते की कमी से होने वाले रोग

धान का खैरा रोग : रोपाई के 20 – 25 दिन बाद पौधें की तीसरी पत्तियाँ पहले हरिमाहीनता के लक्षण प्रगट करती है। फिर इस पर भूरे रंग के छोटे छोटे धब्बे पड, जाते हैं जो बाद में एक दूसरे से मिलकर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं। परिणामस्वरूप पूरा पौधा ही भूरा लाल दिखाई पड़ने लगता है।

मक्के का सफेद चित्ती रोग : मक्के में जस्ते की कमी से पुरानी पत्तियों की शिराओं के बीच के भाग में हल्की पीली धारिया पड़ जाती हैं जो बाद में सफेद रंग धारण कर लेती हैं। नई निकली हुई पत्तियाँ प्रायः हल्की पीली या सफेद रंग की दिखाई देती हैं।

फलो का गुच्छ रोग : इसे वामन पत्ती नाम से भी जाना जाता है । रोग में पत्तियों पर पीले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तिया कम चौड़ी लम्बी और कुरूप हो ताती है। अंत में प्रभावित शाखाएँ मर जाती है।

नींबू का झुर्री रोग : पत्तियों का अंतः शिरा क्षेत्र सर्वप्रथम पीला पड़ने लगता है। पत्तियाँ आकार में छोटी हो जाती हैं और केवल मुख्य शिरा के आधार पर ही हरिमाहीनता दिखाई देती है। अंत में प्रभावित शाखाएँ मर जाती है।

ताँबा

कमी के लक्षण

ताँबें के अभाव के लक्षण सर्वप्रथम नई पत्तियों पर दिखाई पड़ते हैं अत्यधिक कमी से पत्तियाँ कोमल, लचीली, हरिमाहीन (सफेद) होकर मुड़ जाती है। ताँबें के अभाव में बढ़ रहे कल्ले और कलियों की संख्या सामान्य से अधिक हो जाती है। पत्तियों के मध्य भाग पीले पड़ जाते हैं, जबकि शिराएँ तथा पत्ती के किनारे हरे दिखाई देते हैं। तने की शिराएँ मर जाती

गेंहूँ की फसल में ताँबें की कमी के लक्षण

है और आखिरी पत्तियाँ भूरे रंग की हो जाती हैं। अत्यधिक कमी से पत्त्याँ कोमल, लचीली और हरिमाहीन होकर मुड़ जाती है। ताँबे के अभाव में बढ़ रहे कल्लों और कलियों की संख्या असामान्यतया अधिक हो जाती हैं।

क्षारीय रोग–श्वेत अग्र : ताँबे की कमी के फलस्वरूप अनाजों, जई चुकन्दर और दलहनी फसलों में दिखाई देने वाले लक्षणों को क्षारीय रोग श्वेत अग्र के नाम से जाना जाता है। प्रभावित पौधें की पत्तियों का अग्र भाग हरिमाहीम होकर मर सा जाता है इस रोग के कारण बीज का निमार्ण ठीक से नहीं होता है।

बोरान

पौधें में बोरान की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं। पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ जाती है। जड़ों का विकास रूक जाता है। मुख्य तने की फुगती (फुनगी) मर जाने के कारण फूल और फल नही लग पाते हैं। इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन भी आ जाता है, झुरियाँ पड़ जाती है और हरिमाहीनता के धब्बे भी दिखाई देने लगते हैं। बोरान की कमी अधिक होने पर पत्तिया सूख जाती हैं।

बोरान की कमी से होने वाले रोग

आंतरिक गलन (शीर्ष गलन) : इसे शीर्ष गलन (फुनगी गलन) या शुष्क गलन के नाम से जाना जाता है। यह रोग चुकंदर में देखा जाता है। आंतरिक जड़ों के ऊत्तकों का मर जाना इस रोग का प्रमुख लक्षण हैं। नई पत्तियाँ बुरी तरह मुड़ जाती हैं शिरायें पीली पड़ जाती है और पर्णवृंत कड़े से हो जाते हैं। शाखाओं के बढ़ने वाले अग्र भाग मरने लगते हैं।

फूलगोभी का भूरा रोग : इस रोग में शीष पर भूरे चकते दिखाई पड़ते हैं। पत्तियाँ मोटी तथा कड़ी हो जाती हैं और नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। मुख्य शिरा के किनारे और पर्ण वृंत पर फफोले से पड़ जाते हैं।

फूल गोभी में बोरान की कमी के लक्षण

तंबाकू का शिखर रोग : नई निकलने वाली पत्तियों का आधार अग्रभाग की अपेक्षा अधिक पीला दिखाई पड़ता है कलियाँ मर जाती है। पुरानी पत्तियाँ मोटी और कड़ी हो जाती है। मध्य शिरा टूट जाती है और पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़ जाती है।

नींबू के फलों का कठोरपन : बोरॉन की कमी के कारण नीबू कुल के पौधें के अग्र भाग मर जाते हैं। पेड़ों में फल कम आते और फल झड़ जाते हैं। फलों का आकार भद्दा हो जाता है और छिलका मोटा हो जाता है। मध्यवर्ती अक्ष के चारों ओर गोंद की तरह धब्बे देखने को मिलते हैं।

मॉलिब्डेनम

इस तत्व के अभाव के लक्षण पुरानी पत्तियों से प्रारम्भ होकर अग्र शिरे की ओर बढ़ते हैं। शिराओं के मध्य भाग में चमकीले पीले हरे अथवा पीले नारंगी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं और पत्तियाँ मुड़ कर प्याले के आकार की हो जाती है। पुरानी पत्तियाँ असाधारण रूप से बड़ी हो जाती है जबकि नई पत्तियाँ तुलनात्मक रूप से बहुत छोटी हो जाती हैं। दलहनी फसलों में मॉलीब्डेनम की कमी के लक्षण प्रारंभिक अवस्था में नाइट्रोजन की कमी के लक्षणों से मिलते जुलते हैं। मॉलिब्डेनम के अभाव में उपस्थित नाइट्रेट का उपापचयन न होने से नाइट्रोजन की कमी हो जाती है।

मॉलिब्डेनम की कमी से होने वाले रोग

ह्विपटेल : यह सरसों वर्गीय पौधे मुख्य रूप से फूलगोभी में मॉलिब्डेनम की कमी से होने वाला रोग है। रोग के लक्षण मध्य शिरा के पास अर्द्ध पारदर्शक अंडाकार धब्बों के रूप में जो बाद में सफेद होकर मर से जाते हैं। पत्तियों के किनारे टेढ़े मेढ़े होकर ऊपर की ओर मुड़ तुड़ जाते हैं। ह्विपटेल की स्थिति पैदा होने के प्रारंभ में पत्तियाँ आकार में लंबी हो जाती है। मटर, लूसर्न, सोयाबीन में पत्तियों का पीला पड़ना, मुरझा जाना, किनारों पर से मुड़ना और झुलस जाना इस तत्व के अभाव के लक्षण है।

फूलगोभी में मॉलिब्डेनम की कमी के लक्षण (फूलगोभी में ह्विपटेल)

क्लोरीन

क्लोरीन की कमी अधिकांश स्थितियों में नहीं पाई जाती है। नई पत्तियाँ नीली

हरी तथा चमकीली दिखाई पड़ने लगती है। दिन की गर्मी में पत्तियों का अग्रभाग मुरझाकर झुक जाता है। रात में ठंडक पाकर पत्तियों की दशा में पुनः सुधार हो जाता है।

लक्षणों में फसल विशेष के अनुसार भिन्नता पाई जाती है।

पातगोभी की पत्तियाँ मुड़ जाना। बरसीम की पत्तियों का मोटा तथा छोटा हो जाना और पत्तियों का किनारा कटा फटा होना। जौ की नई पत्तियों में हरिमाहीनता का उत्पन्न होना मक्का की पत्तियों का सूख जाना

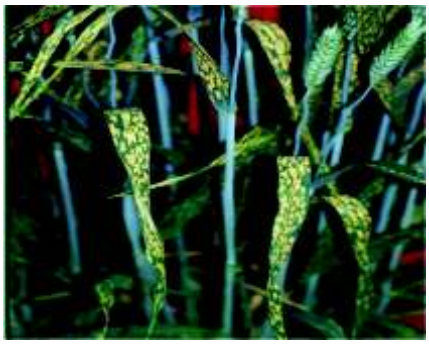

गेंहूँ में क्लोरीन की कमी के लक्षण

निकिल

निकिल की आवश्कता बीज के शत् प्रतिशत् अंकुरण के लिए होती है। निकिल तत्व यूरिया को अमोनियम में परिवर्तित करने में होने वाले रासायनिक क्रिया में उत्प्रेरक का कार्य करता है। दलहनी एवं अन्य फसलों में नत्रजन स्थिरीकरण के लिए उपयोगी है।

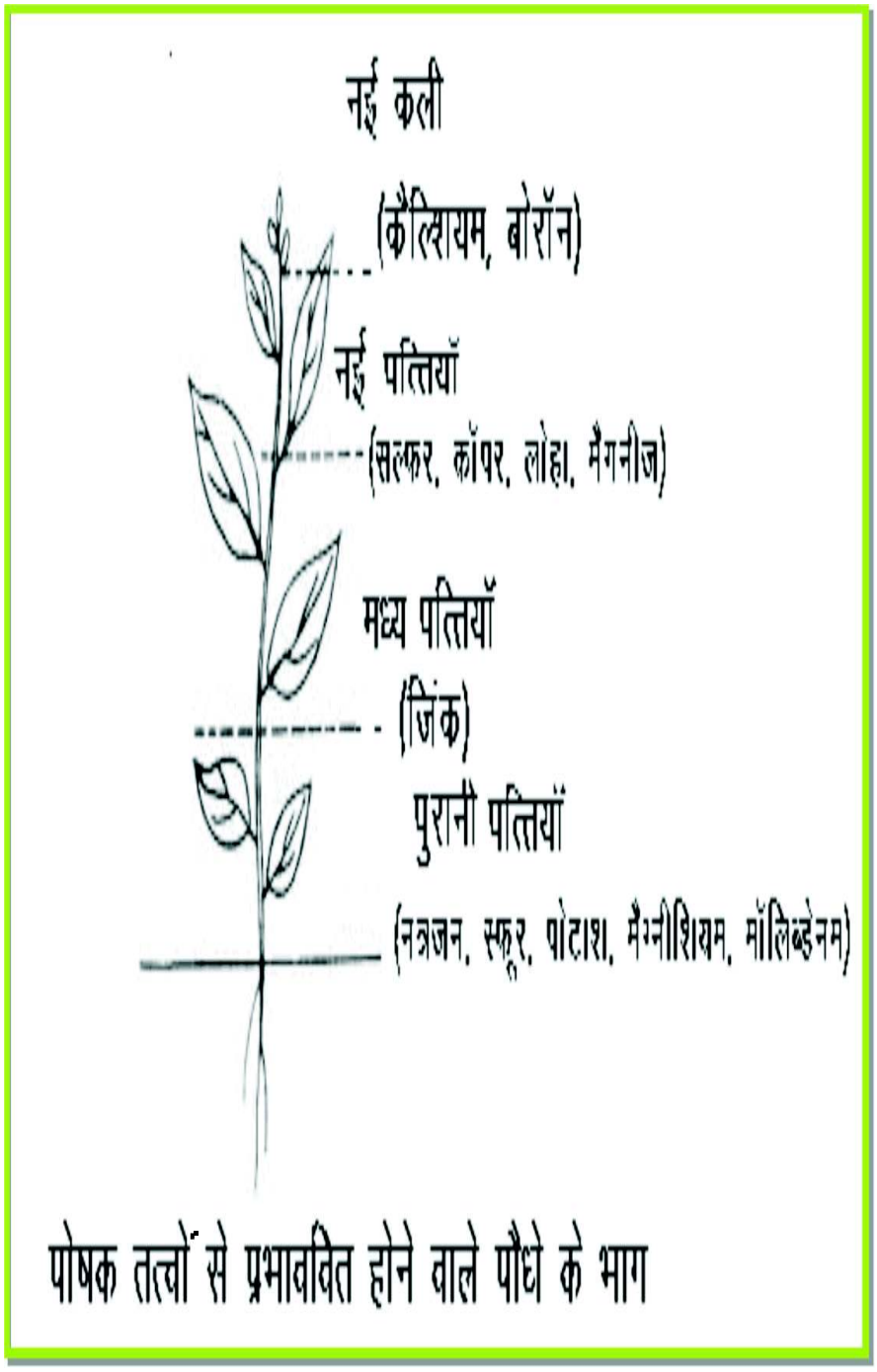

पोषक तत्वों से प्रभावित होने वाले पौधे के भाग

हिन्दी जैसी सरल भाषा दूसरी नहीं है।

मौलाना हसरत मोहानी

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

केले का ऊतक संवर्धनः तकनीक एवं उपयोगिता

संजीव कुमार, सोमनाथ होल्कर एवं आर.के. सिंह
भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

केला आम जनमानस का एक प्रिय फल है जिसकी मांग बाजार में वर्ष भर बनी रहती है। छोटी जोत के किसानों के लिए केले की खेती काफी लाभदायक है। फल के साथ ही साथ केले के पत्ते भी विभिन्न त्योहार, व्रत एवं पूजा में उपयोग में लाए जाते हैं। कच्चे केले का उपयोग भी सब्जियों के रूप में किया जाता है। इसके साथ ही साथ केले के फल तोड़ने के बाद, इसके बचे हुए तने को काट कर वर्मी कम्पोस्ट बनाने में भी उपयोग किया जा सकता है। केले की उपयोगिता को देखते हुए राष्ट्रीय स्तर पर त्रिचरापल्ली में एक राष्ट्रीय केला अनुसंधान केन्द्र भी कार्य कर रहा है एवं इसकी विभिन्न अधिक उपज एवं रोगरोधी प्रजातियाँ बड़े पैमाने पर खेती हेतु संस्तुत की गई है, जिन्हें किसानों तक अतिशीघ्र पहुँचाने की आवश्यकता है।

व्यवहारिक तौर पर यह देखा गया है कि शोध द्वारा विकसित एवं खेती हेतु संस्तुत केले की नई प्रजातियाँ किसानों तक शीघ्र नहीं पहुँच पा रही है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि पादप विज्ञान कि नई विधियों जैसे जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग करके केले की खेती को एक लाभकारी व्यवसाय बनाया जाए। वैसे तो सामान्यतया केले को उसके बगल से निकले वाले नये पौध (सकर) के माध्यम से उगाया जा सकता है। लेकिन इस तरह से नये पौध तैयार करने में काफी समय लगता है क्योंकि केले के एक पौध से 3–4 नये पौध ही बनते है। सबसे पहले बड़ी समस्या रोग ग्रस्त एवं स्वस्थ केले के पौध पहचानने की रहती है क्योंकि दोनों एक जैसे ही दिखते हैं। सकर द्वारा रोग के पूरे खेत में फैलने की सम्भावना बहुत अधिक रहती है। अतः उच्च गुणवत्ता युक्त एवं रोग मुक्त केले के पौधों की उपलब्धता के द्वारा किसान हमेशा अच्छी पैदावार एवं अच्छा मुनाफा कमा सकता है। नई केले की प्रजातियों के बहुगुणन हेतु टिशू कल्चर या उत्तक सवंर्धन एक ऐसी ही विधि है जो बहुपयोगी एवं पुर्णरूपेण लाभकारी है। भारत सरकार ने इस तकनीक की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए तथा नये आयाम एवं विकास के लिए विज्ञान एवं तकनीक मंत्रालय के अंतर्गत विशेष रूप से जैवप्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना किया है।

केले की ऊत्तक संवर्धन तकनीक

उत्तक संवर्धन की प्रक्रिया में रोगमुक्त केले के अग्रभाग को लेकर प्रयोगशाला में जीवाणु रहित एवं पूर्णनियत्रिंत वातावरण में मातृ पौधों की विभिन्न विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए नये पौधों का विकास किया जाता है। इस प्रक्रिया को माइक्रोप्रोपेगेशन या साधारण रूप से टिशूकल्चर कहते है। इस पूरी प्रक्रिया में मुख्यतः निम्नलिखित चरण होते है।

- सवंर्धन माध्यम का चुनाव
- संवर्धन हेतु पादप अंग को जीवाणुमुक्त करना
- ऊत्तक सवंर्धन का प्रारम्भ
- कल्चर को बढ़ाना (बहुगुणन)
- नई पौध में जड़ का विकास
- नये पौधों का अनुकूलन एवं खेत में स्थानांतरण

संवर्धन माध्यम का चुनाव

उत्तक संवर्धन तकनीक का सफल होना बहुत कुछ सवंर्धन माध्यम पर निर्भर करता है। ऐसा पाया गया है कि केवल एक माध्यम में ही हर तरह की प्रजाति के टिशू का संवर्धन नहीं किया जा सकता है। इस कार्य में माध्यम में विभिन्न तरह के बदलाव जैसे वृद्धि नियामको की मात्रा, विटामिन की मात्रा, या माध्यम का पी.एच. मान बदलने की जरूरत होती है सवंर्धन कार्य तरल या अर्धढोस माध्यम पर किया जा सकता है। केलों के उत्तक संवर्धन में मुख्यतः मुराशिग एवं स्कूग माध्यम (1962) का प्रयोग किया जाता है। सवंर्धन माध्यम में मुख्यतः कार्बनिक, अकार्बनिक लवण, वृद्धि नियामक (आक्सिन, साइटोकाइनिन, जिबेरेलिक एसिड ईत्यादि), शर्करा (सुक्रोज), ठोस कारक (अगार) का प्रयोग किया जाता है। पोषक माध्यम को पूर्ण रूप से जीवाणु रहित किया जाता है, इसके लिए इसें 121^0 सेंटीग्रेड पर 20 मिनट तक गर्म किया जाता है।

पादप अंग का चुनाव

इस विधि मे केले के अग्रभाग को बोतल के अन्दर उचित सवर्धन माध्यम में अनुकूल वातावरण में वृद्धि एवं परिवर्धन कराते है। इसके लिए जिस प्रजाति के केले का बहुगुणन करना होता है, उसके पौधे के अग्रभाग (वह भाग जो तने के बीच में रहता है एवं वृद्धि करता है) को काटकर बाहर कर लेते है। यह ध्यान रखना चाहिए कि मातृ पौधा रोगमुक्त एवं विषाणुमुक्त हो तथा अच्छी वृद्धि अवस्था में हो।

पादप अंगों को जीवाणुरहित करना

संवर्धन प्रारम्भ करने से पहले पादप अंग (अग्रभाग) का निर्जमीकृत करना अतिआवश्यक होता है, जिससे यह जीवाणु या कवक रहित हो जाए। इसके लिए विभिन्न प्रकार के एवं उपयुक्त मात्रा में रसायन जैसे मरक्यूरिक क्लोराइड, कैल्शियम हाइपोक्लोराइट, इथाईल अल्कोहल या क्लोरीन वाटर उपयोग करते है। खेत से प्रयोगशाला तक लाने के लिए पादप अंग को उपयुक्त कवकनाशी (1 प्रतिशत बाविस्टीन) से युक्त घोल में रखा जाता है। उपचारित करने के पश्चात् पादप अंगों को अच्छी तरह निर्जमीकृत आसुत जल से कई बार घुल लिया जाता है। इस अवस्था में पौधे सवंर्धन माध्यम में रखने के लिए तैयार हो जाते है। यह पूरी प्रक्रिया एक विशेष प्रकार के उपकरण, लैमिनर एयर–फ्लो कैबिनेट के अन्दर की जाती है।

केले की अग्रकलिका जिसे संवधर्न माध्यम में निर्जमीकृत करके संरोपित किया गया है

जीवाणुरहित किये गये पादप अंग को जीवाणुरहित सवंर्धन माध्यम की बोतल में सावधानी पूर्वक संरोपित किया जाता है। संरोपित करने के पश्चात्, बोतल को अच्छी तरह से ढक्कन को बंद करके पूर्णनियंत्रित संवर्धन कक्ष (कल्चर रूम) में कल्चर रैक पर रख दिया जाता है। संवर्धन कमरे में प्रकाश की व्यवस्था ट्यूबलाइट के द्वारा एवं तापमान नियंत्रण एयरकण्डीशनर या हीटर द्वारा किया जाता है। संवर्धन कक्ष में सामान्यतः 16 घण्टे प्रकाश एवं 8 घण्टे अंधेरा तथा 25^0 सेंटीग्रेड तापमान रखा जाता है। परन्तु अलग–अलग प्रजातियों एवं टिशू के लिए इनसे भिन्न वातावरण की जरूरत हो सकती है।

पौध संवर्धन

प्रथम चरण में पादप अंगों को संवर्धन माध्यम में रख कर वृद्धि की जाती है। सवंर्धन माध्यम में 4–6 सप्ताह के उपरांत नई कलिका का विकास प्रारम्भ हो जाता है। इस नई कलिका में पूर्ण पौध बनाने की क्षमता होती है। जब कलिका विकास कर तने का रूप लेना प्रारम्भ करती है तब इसे काटकर पुनः बहुगुणन माध्यम में संरोपित किया जाता है, जिससे काफी अधिक संख्या में नये पौध बनाये जा सकें। इस नये बहुगुणन माध्यम में साइटोकाइनिन वृद्धि नियामकों का प्रयोग होता है जिससे पौध की नई ढेर सारी शाखाओं का विकास हो सके। अलग–अलग प्रजातियों में शाखा विकास की दर अलग–अलग होती है, जिसे शोध द्वारा हमेशा बढाने की कोशिश की जाती है।

संरोपित अग्रकलिका से नयी कलिका के विकास का आरम्भ

अगले चरण में परखनली में तैयार शाखाओं का विकास 5–7 से.मी. तक हो जाता है। अब इन शाखाओं को काटकर एक नये सवंर्धन माध्यम में रखा जाता है। इस संवर्धन माध्यम में जड़ों को विकसित करने वाले वृद्धि नियामकों का प्रयोग करते है; जिसमें आक्सिन की मात्रा अधिक होती है। इस जड़ निकलने की प्रक्रिया में लगभग 4–6 सप्ताह लग जाते हैं। व्यवसायिक उत्तक संवर्धन में इस पूरी प्रक्रिया को कई बार दोहराया जाता है जिससे लाखों की संख्या में पौध तैयार हो सके।

बहुगुणन माध्यम पर अधिक संख्या में नयी शाखाओं का विकास

केले के उत्तक संवर्धित पौधों का अनुकूलन

पूर्णरूप से विकसित एवं तैयार केले के पौध को बाहर खुले खेत में लगाने से पहले इसका कठोरीकरण (हार्डनिंग) किया जाता है, क्योंकि परखनली के पौधों को अगर सीधे खुले खेत में लगा दिया जाए तो कमजोर होने के कारण पौधों के मरने की काफी संभावना होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि परखनली में पौधा अधिक आर्द्रता एव कम तापमान पर उग रहा है। अतः पौधे को खुले वातारण अर्थात् कम आर्द्रता एवं ताप के लिए अनुकूलन आवश्यक हो जाता है। इसके लिए पहले पौध को परखनली या बोतल से निकाल कर इनकी जड़ों में चिपके पोषक तत्वों एंव अगार इत्यादि को बहते जल में अच्छी तरह धो लेते है। इसके उपरांत पौधों को पालीथीन के पैकेट में जीवाणुरहित मिट्टी (1:1 के अनुपात में दोमट मिट्टी एवं बालू का मिश्रण) में लगा कर वृद्धि एवं अनुकूलन कक्ष में 8–10 दिन के लिए रख देते है, जिससे कम तापमान एवं प्रकाश एवं अधिक आर्द्रता (50 प्रतिशत से अधिक) रखा जाता है। अधिक आर्द्रता के लिए कई बार जल की महीन बूदों के फुहारे दिये जाते है। एक सप्ताह के बाद इस पौधे को छाये में करीब 10–15 दिन तक रखते है एवं आर्द्रता को धीरे–धीरे घटाते हुए सामान्य स्तर तक ले जाते है साथ ही साथ प्रकाश

अधिक आर्द्रता, कम तापमान एवं प्रकाश में टिशू कल्चर केले के पौधों का खुले वातावरण के लिए

एवं तापमान को भी धीरे–धीरे बढ़ाते है। अब ये पौधे खुले खेत में लगाने के लिए तैयार होते है। इस प्रकार की क्रमबद्ध प्रक्रिया पूरे साल चलाने पर लाखों की संख्या में केले के पौध तैयार किये जाते है। टिशू कल्चर नये पौध बहुत नाजुक होते है अतः नर्सरी में एवं किसान खेत पर प्रारम्भिक अवस्था में पौधों का अधिक ध्यान देने की जरूरत पड़ती है। इसके लिए नर्सरी में काम करने वाले लागों एवं किसानों को भी रखरखाव हेतु प्रशिक्षित किया जाना जरूरी होता है।

ऊत्तक संवर्धित पौध का गुणवत्ता नियंत्रण

अधिक उत्पादन के लिए गुणवत्तायुक्त पौध की उपलब्धता अतिआवश्यक है। उत्तक संवर्धन के उपरांत पौध की गुणवत्ता में पौधे का विषाणुमुक्त होना, एवं मातृपौधों की भांति आकार एवं गुणवत्ता को होना बहुत ही जरूरी है। केले में चार प्रकार के विषाणु (जैसे मोजेक वायरस, ब्रेक्ट वायरस, बंचीटाप वायरस तथा स्ट्रीक वायरस) का प्रकोप देखा गया है। अतः उत्तक संवर्धन प्रारम्भ करने से पहले मातृवक्ष को इन विषाणुओं से मुक्त होने का परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण प्रयोगशालाओं में सबसे प्रचलित विधि एलिजा (ELISA) द्वारा या विषाणु डी.एन.ए. का पी.सी.आर. करके किया जा सकता है। इसी तरह उत्तक संवर्धित पौधों की मातृ वृक्ष से समानता को भी डी.एन.ए. परीक्षण द्वारा पता लगाया जा सकता है। पौधों को खेत में उगाकर विषाणु या लक्षण के लिए परीक्षण किये जाने की पुरानी विधि काफी समय लेने वाली एवं खर्चीली थी, परन्तु ELIS या डी.एन.ए. आधारित विधियां बहुत ही कम समय में सटीक परिणाम देने वाली एवं सस्ती भी है।

भारत सरकार का विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डी.बी.टी.), पौध उत्तक संवर्धन के क्षेत्र में एन.सी.एस.–टी.सी.पी. (उत्तक संवर्धन से तैयार पौधों के लिए राष्ट्रीय प्रमाणन प्रणाली) वर्ष 2006 से बीज अधिनियम 1966 की धारा 8 के तहत प्रमाणन एजेन्सी के रूप में कार्यरत है। एन.सी.एस.–टी.सी.पी. अपनी ए.टी.एल. (परीक्षण प्रयोगशाला) की ओर से उत्तक संवर्धित पौध का प्रमाणन सुनिश्चित करता है एवं उन उत्तक संवर्धन उत्पादन इकाइयों को मान्यता प्रदान करता है जो इसकी दिशानिर्देशों का पालन करते है। वर्ष 2014–15 में भारत में मान्यता प्राप्त उत्तक–संवर्धन पौध उत्पादन इकाईयों की कुल संख्या 88 की जिनमें कुछ बडे औद्योगिक समूहों की इकांइया भी शामिल है। वर्तमान में टिशू कल्चर पौधों की गुणवत्ता जांच के लिए कुल पांच परीक्षण प्रयोगशालाए (ए.टी.एल.) संचालित है।

NCS-TCP द्वारा संचालित परीक्षण प्रयोगशाला (ATL)	
1.	भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, रायबरेली रोड, पो. दिलकुशा लखनऊ 226002 (उत्तर प्रदेश)
2.	केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला 171001 (हिमाचल प्रदेश)
3.	राष्ट्रीय केला अनुसंधान संस्थान, थोगमलई रोड, पो. थायनूर, तिरूचिरापल्ली 620102 तमिलनाडु
4.	कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, जी के वी के परिसर बंगलोर 560062 (कर्नाटक)
5.	वंसतदादा शुगर संस्थान मंजरीफार्म, तालुका हवेली, पुणे 412307 महाराष्ट्र

टिशू कल्चर केले की खेती

जलवायु

केला उष्ण जलवायु का पौधा है। जो कि भूमध्य रेखा के दोनों तरफ गर्म व तर जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक मात्रा में पैदा किया जा जाता है। गर्म तथा नमीयुक्त वातावरण केले के उत्पादन हेतु उपयुक्त है। केले के खेती के लिए उपयुक्त तापक्रम 20^0 सेंन्टीग्रेड से 35^0 सेन्टीग्रेड होता है। जबकि 10^0 सेन्टीग्रेड से नीचे व 40^0 सेन्टीग्रेड से ऊपर तापमान इसके लिए हानिकारक है।

केले की उन्नतशील प्रजातियाँ

ग्रैन्डनैन, डार्फ केवेन्डिश, रोबस्टा जातियों की सफलतापूर्वक खेती करके अधिक से अधिक आय प्राप्त किया जा सकता है।

रोपण विधि

उत्तक सर्वधन विधि से तैयार केले के पौधों को 2 मी0 × 2 मी0 की दूरी पर रोपित करने पर प्रति एकड़ 1000 पौधे टीश्यूकल्चर पौधे की आवश्यकता होगी।

खेत का प्रबन्धन

यदि जल उपलब्ध हो तो केले की रोपाई वर्ष भर की जा सकती है। केले की रोपाई फरवरी से अप्रैल के प्रथम सप्ताह व मानसून के शुरूआत जून–जुलाई मे करनी चाहिए। अतः मानसून शुरू होने के साथ किसी भी समय पौध का रोपण कर सकते हैं। पौध रोपण से पूर्व मिटटी की गहरी जुताई करके पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। तत्पश्चात रस्सी व मीटर की सहायता से 2 मीटर लाईन से लाईन व 2 मीटर पौध से पौध की दूरी पर निशान लगाकर 60 × 60 × 60 सेमी आकार के गढ्ढे खोद कर काली सडी गोबर की 20 किलोग्राम की आधी मात्रा व वर्मीकम्पोस्ट की 4 किलोग्राम की आधी मात्रा का मिश्रण

अधिक आर्द्रता, कम तापमान एवं प्रकाश में टिशू कल्चर केले के पौधों का खुले वातावरण के लिए

क्र0 सं0	प्रजाति	घेर का औसत वजन (किलो ग्राम)
1	ग्रैन्ड नाईन	20–25
2	रोबस्टा	20–25
3	डवार्फ कैवेन्डिस	20–25
4	करपूरवल्ली	20–25
5	मालभोग	15–20
6	मोन्दन	15–20
7	वीरूपाक्षी	12–15
8	नेय पूवन	10–15
9	नेन्द्रन	4–7

बनाकर इन गढढों में भर कर टिश्यूकल्चर केले की पौध को रोप कर हल्की सिचाई कर देना चाहिए, एवं शेष बची हुई मात्रा का प्रयोग 3 माह बाद पौधों के चारों ओर थाला बना कर करें और सिंचाई कर दें।

जल प्रबंधन

केले की फसल को वर्ष–भर जल की आवश्यकता रहती है। इसके लिए गर्मियों में 5–10 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई व ठंडक में 10–15 दिन के अन्तराल पर मिट्टी में नमी को ध्यान में रखते हुए करते रहना चहिए। यदि मिटटी में नमी ज्यादा है तो सिचाई नहीं करनी चाहिए। सिंचाई की समुचित व्यवस्था करनी चहिए। सिचाई नहरों, नलकूप, व डिंप सिंचाई द्वारा किया जाता है । यद्यपि केले को अधिक पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन इसके चारो तरफ पानी इकट्ठा नहीं होना चाहिए क्योंकि पानी के बीच पौधे खडें नहीं हो सकते हैं। अतः जलनिकास की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। केले के पत्तियों की पलवार बिछाकर गर्मियों में नमी को संरक्षित किया जा सकता है।

मिट्टी चढाना एवं सहारा देना

वर्षा ऋतु के तुरन्त बाद पौधों के तनो पर मिट्टी चढानी चाहिए। क्योंकि पौधों के चारों तरफ मिट्टी धुल जाती है। पौधों के गिरने की सम्भावना रहती है। जब केले में फल आने लगता है तब पौधा धीरे–धीरे भारी होने के साथ–साथ ही पौधों को अपनी तरफ झुकाते चला जाता है। यदि इस समय पौधो को सहारा नही दिया जाए तो पौधे जमीन से उखड जाएगें। इसकी सुरक्षा के लिए दो बॉस को आपस में बाधॅकर कैची की तरह बना लेते हैं। इसे फलों के गुच्छों के पास तने में लगाकर सहारा देते है।

गुच्छों को ढकना

पौधों पर गुच्छा आ जाने पर वे एक तरफ झुक जाते हैं। यदि इनका झुकाव पूर्व या दक्षिण की तरफ होता है तो फल तेज सूर्य प्रकाश से खराब हो जाते है। साथ ही चिड़िंया व तोते पक्षी आदि चोच से फल को नुकसान पहुॅचाते है। जिसकी सुरक्षा हेतु फल को पॉलिथीन या केले के पत्तों से ढक दिया जाना चाहिए।

फल को तोडना एवं प्रबंधन

जब फल पूर्णतः परिपक्व हो जाये तथा अंगुलिकाएं गोलाई ले लें तब उनको हरी दशा में ही फलों के गुच्छे को तेज चाकू से काट लेना चाहिए, अगर फल को दूर के बाजारों में भेजना है तो इसको

खेत में लगे टिशू कल्चर केले के पौधे एवं फल

पकाया नहीं जाता है। फलों को पकानें के लिए केले के सूखे पत्तों से अच्छी तरह से ढक दिया जाता है जिससे यह 4–5 दिनों में फल पक कर तैयार होने लगते हैं।

फसल सुरक्षा

पौधों का प्रतिदिन निरिक्षण करते रहना चाहिए। यदि पौधे में कही भी असामान्य दाग धब्बें दिखायी दें तो सर्वप्रथम रोगों से बचाव हेतु उस भाग को सावधानीपूर्वक तेज चाकू से काट कर खेत से दूर गड्ढा खोदकर मिटटी मे दबा दे। सुरक्षा हेतु खेत को खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। प्रकोप अधिक होने पर फफूॅदनाशी का छिड़काव 2 ग्राम/लीटर के हिसाब से 6–7 दिन के अन्तराल पर 2–3 बार कर देना चाहिए।

केले के पौधे मे कुछ हानिकारक कीटों का भी प्रकोप होता है। जिनमे से प्रमुखरूप से तना बेधक कीट, कंद छेदक, पत्ती खाने वाला कैटरपिलर आदि। इनसें सुरक्षा हेतु नयी पत्तियों को कीट के प्रसार को रोकने के लिये निकालते रहना चाहिए। पौध प्रभावित होने पर कीटनाशी 1 मिली प्रति लीटर पानी का छिडकाव आवश्यकतानुसार एक से दो बार 15 दिनो के अंतराल पर करें।

टिशू कल्चर केले से लाभ

- इस विधि द्वारा बहुत ही कम समय में अधिक से अधिक पौधे तैयार किये जा सकते है।
- इस विधि से मातृ पौधे के जैसे ही आकार एवं गुण वाले पौधे तैयार होते है।
- टिशू कल्चर द्वारा पौधे की गुणन क्षमता को कई सौ गुना बढ़ाया जा सकता है।
- पौध की अग्रकलिकाओं के कोन की सहायता से विषाणु मुक्त पौधे भी तैयार किये जा सकते हैं।
- उत्तक संवर्धन के द्वारा केले के पौधे पूरे वर्ष प्रयोगशाला में बहुगुणित किये जा सकते हैं।

टिशू कल्चर से उन्नतशील प्रजाति के केले के पौध की उपलब्धता

बायोटेक पार्क सेक्टर जी, जानकीपुरम कुर्सी रोड़ लखनऊ 226 001 फोनः 0522– 27333174	कैडिला एग्रो समीउल्लाह पौधशाला इटौजा, बख्शी का तालाब, लखनऊ फोनः 09616525819
शील बायोटेक एस–255, ग्रेटर कैलाश–2 नई दिल्ली 110 048 फोन : 011–41637732	जैन इरीगेशन मकान सं. सी–98, ग्राउण्ड फ्लोर निराला नगर, लखनऊ फोनः 0522–2247886
कैडिला एग्रो पूर्वांचल नर्सरी, रामपुर बुजुर्ग (गुलहरिया) गोरखपुर फोनः 09415440539	जैन इरिगेशन ग्राउण्ड फ्लोर एल–1/1श्री कृष्णा पुरी, बोरिंग रोड पटना 800001 फोनः 0612–6560266/ 09431800782
कैडिला एग्रो आई आर एम हाउस, निकट सरदार सेवा समाज, सी जी रोड अहमदाबाद 380009 फोनः 079–26562615	टिशू कल्चर प्रोडक्शन फेसिलिटी डा. एम.सी. सक्सेना ग्रुप आफ कालेज 171, IIM दुबग्गा बाइपास, लखनऊ 226003

केले का उत्तक संवर्धन उद्योग

भारत वर्ष में विदेशों की भाँति उत्तक सवंर्धन में काफी शोध हुए हैं; एवं वर्तमान में इस क्षेत्र में कई बड़े औद्योगिक समूह, जैसे कैडिला एग्रो, जैन इरिगेशन, बायोटेक पार्क लखनऊ, रिलायंस एग्रो इत्यादि कार्य कर रहे हैं। गहन शोध एवं निजी क्षेत्र की सहभागिता के फलस्वरूप अब टिशू कल्चर से बनाये गये उन्नतशील प्रजाति के केले के पौध बाजार मे मिलने लगे है। उपयोगिता की दृष्टि से यह विधि काफी व्यवहारिक एवं लाभदायक सिद्ध हुई है जिसके फलस्वरूप केले के वार्षिक उपज में आशातीत वृद्धि हुई है, जिसका लाभ किसानों के जीवनस्तर को उपर उठाने में भी मिला है।

- इस विशाल देश के हर भाग में शिक्षित–अशिक्षित, नागरिक और ग्रामीण सभी हिंदी को समझते हैं।
- देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।

राहुल सांकृत्यायन

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

फसल विविधीकरण में दलहनी फसलों की भूमिका

ब्रह्म प्रकाश, अश्विनी कुमार शर्मा एवं अतुल कुमार सचान
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कृषि के वैश्वीकरण से दक्षिण एशिया विशेषकर भारत में नई चुनौतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। कृषि उत्पादों के गिरते वैश्विक मूल्यों के कारण उन कृषक समुदायों की सम्पन्नता खतरें में आ गई हैं। जिनके पास भूमि का एक छोटा सा भाग है। मुख्य खाद्य फसलों की स्थिर उत्पादकता, भूमि जोतों का छोटा होना, प्राकृतिक संसाधनों के अधिक दोहन से क्षरण, कृषि में निवेश की कमी, उत्पादन लागतों के बढ़ने के साथ कारक उत्पादकता के घटने से विश्व बाजार में भारतीय कृषि की विशेषज्ञता घटी है। साथ ही कृषि क्षेत्र के टिकाऊपन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः भारतीय कृषि में उभर रही नई चुनौतियों का सामना करने के लिए अधिक प्रतियोगात्मक एवं उच्च मूल्यों वाले कृषि उत्पादों हेतु कृषि विविधीकरण करना अत्यंत आवश्यक है।

फसल विविधीकरण

वर्तमान कृषि परिदृश्य विशेषकर सिंचित क्षेत्रों में कुछ विशेष फसलों की खेती ही दर्शाता है क्योंकि 80 प्रतिशत से अधिक खाद्य पदार्थ लगभग 10 फसलों से प्राप्त होते हैं। अतः एक फसल को उगाने से पैदा हो रही चुनौतियों का सामना करने के लिए फसल विविधीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ धान–गेहूँ फसल प्रणाली में बरसीम, सरसों व गन्ने के साथ विविधीकरण करने से फैलेरिस माइनर का प्रकोप कम होता है। इसी प्रकार धान–गेहूँ फसल प्रणाली में दलहनी फसलों को दाने, चारे तथा हरी खाद के समावेश से उर्वरता तथा मृदा स्वास्थ्य में सुधार होता हैं। गत कुछ दशकों में पंजाब व हरियाणा में धान, पश्चिम बंगाल में गेहूँ, गुजरात में मूँगफली, मध्य प्रदेश में सोयाबीन तथा बिहार में शीतकालीन मक्के का परिचय फसल विविधीकरण के कुछ उल्लेखनीय उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वी भारत में धान से खाली क्षेत्रों में दलहनी तथा तिलहनी फसलों तथा पूर्वी उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में रबी राजमा का परिचय बड़ा प्रभाव डाल रहा हैं। सिंचित तथा पानी की कमी वाली दशाओं में उच्च तथा स्थिर उत्पादकता तथा लाभ हेतु उन्नतशील फसलों तथा फसल प्रणालियों को चिन्हित करने की आवश्यकता है।

फसल विविधीकरण में दलहनी फसलें

एक तरफ प्रतिकूल जलवायु तथा अस्थिर पारिस्थितकी तंत्र के अन्तर्गत दलहनी फसलों का अन्य फसलों की तुलना में जीवित रहने की असाधारण क्षमता तथा दूसरी तरफ ग्रामीण जनसंख्या के लिए कृषि उत्पादन तथा पोषण सुरक्षा को सततता प्रदान करने हेतु फसल विविधीकरण के लिए दलहनी फसलें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों के समावेश से मृदा उर्वरता में भी सुधार होता है। विभिन्न स्थानों पर की गयी गहन शोध से यह सिद्ध हो चुका है कि वर्तमान फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों के समावेश से मृदा उर्वरता के अतिरिक्त प्रणाली की कुल उत्पादकता शुद्ध आय व ऊर्जा उत्पादकता में सुधार होता हैं। फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों द्वारा विविधीकरण करने के निम्नलिखित चार विकल्प उपलब्ध हैं :

- सिंचित क्षेत्रों में कैच फसल के रूप में दलहनी फसलों की शीघ्र पकने वाली प्रजातियों का समावेश
- नए क्षेत्रों में दलहनी फसलों का परिचय
- वर्तमान प्रणालियों में उगाई जा रही कम उत्पादक फसलों का दलहनी फसलों से बदलाव
- दूर–दूर बोई जाने वाली फसलों से अर्न्तसस्य फसल व रिले फसल की रूप में दलहनी फसलें

प्रथम विकल्प के लिए शीघ्र ओज, अगेती तथा एक साथ सभी फलियों के पकने वाली, उच्च आदानों के लिए उत्तरदायी तथा प्रमुख कीटों से प्रतिरोधिता के साथ उच्च उत्पादक क्षमता वाली प्रजातियों के विकास की आवश्यकता हैं। दूसरा विकल्प जो अधिक स्वीकार्य है, के लिए गैर–परम्परागत क्षेत्रों में सस्य प्रौद्योगिकी के साथ विभिन्न दलहनी फसलों की शीघ्र तथा अति शीघ्र पकने वाली उच्च उत्पादन क्षमता वाली प्रजातियों के विकास पर निर्भर है। तीसरे विकल्प के लिए विभिन्न दलहनी फसलों में आ रही उत्पादकता की स्थिरता को तोड़ने की आवश्यकता पड़ेगी जिससे वे भी धान्य फसलों की तुलना में अधिक प्रतियोगात्मक

तथा लाभकारी सिद्ध हो सकें।

विविधीकरण के विकल्प

वर्तमान फसल प्रणालियों को दलहनी फसलों के समावेश द्वारा विविधीकरण करने के प्रचुर अवसर हैं। कुछ महत्वपूर्ण उन्नतशील नई फसल प्रणालियाँ निम्नवत हैं :

1. **धान–गेहूँ आधारित फसल प्रणालियाँ :** भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्रों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अन्तर्गत 105 लाख हे. क्षेत्र है। भारत के कुल खाद्यान्न उत्पादन का 23 प्रतिशत अंश का योगदान करने वाली यह सबसे लोकप्रिय फसल प्रणाली है। परन्तु लम्बे समय से इस प्रणाली के लगातार प्रचलन से उत्पादकता में स्थिरता व मृदा उर्वरता का क्षरण हो रहा हैं। धान–गेहूँ फसल प्रणाली के विविधीकरण हेतु धान के स्थान पर शीघ्र पकने वाली अरहर तथा गेहूँ के स्थान पर, विशेषकर नहर के अन्तिम सिरे तथा अपलैन्ड्स में चना या मसूर द्वारा बदलाव किया जा सकता है।

2. **अरहर–गेहूँ फसल प्रणाली :–** अरहर की शीघ्र पकने वाली प्रजातियाँ जैसे उपास 120, मानक, ए.एल. 210, पूसा 991 तथा पूसा 992, जो 130–150 दिनों में पकती हैं, के विकास से पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर पश्चिमी राजस्थान व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सिंचित क्षेत्रों में लगभग 2 लाख हे. अतिरिक्त क्षेत्र में अरहर उगाई जा सकती है। दक्षिण भारत में खरीफ ऋतु के दौरान कम ऊँचाई, शीघ्र पकने वाली तथा डिटरमिनेट वृद्धि आदत वाली आई. सी.पी.एल. 87 के विकास ने धान फसल का विकल्प प्रदान किया हैं।

3. **धान–चना/मसूर फसल प्रणाली :–** देर से बोई जा सकने वाली चने की प्रजातियों (के.पी.जी. 59, पूसा 256, पी. बी.जी. 1 तथा पूसा 372) की पहचान से उत्तरी भारत के कमान्ड क्षेत्र के अंतिम सिरे पर जहाँ सीमित सिंचाई के कारण गेहूँ की अच्छी फसल ले पाना सम्भव नहीं होता, गेहूँ के स्थान पर चने का लाभकारी विकल्प उपलब्ध किया है। सीमित संसाधनों वाले बाधकों की दशा में विशेषकर उर्वरक तथा सिंचाई के जल की सीमित उपलब्धता के अन्तर्गत चना तथा मसूर की फसलें, गेहूँ की तुलना में अधिक लाभदायक पायी गयी हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार व पश्चिम बंगाल के अधिक नमी वाले निचले इलाकों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली अत्यन्त लाभकारी पायी गयी हैं।

4. **धान–गेहूँ फसल प्रणाली में दलहनी फसलों का समावेश करना :–** मूँग की शीघ्र पकने वाली (60–65 दिनों), एक साथ सभी फलियों के पकने तथा पीत चितेरी रोगरोधी प्रजातियों (पी.डी. एम. 11, पी.डी.एम. 54, एम.एल. 267, पी.डी.एम. 139, पूसा विशाल, एस.एम. एल. 668, पन्त मूंग 5, एच.यू.एम. 2, पन्त मूंग 2 प्रजातियों के विकास ने बसन्त/ग्रीष्म ऋतु में सघन फसल प्रणाली के लिए नए विकल्प प्रस्तुत किए हैं। पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के सिंचित क्षेत्रों में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के विविधीकरण हेतु ग्रीष्मकालीन मूंग अत्यन्त लोकप्रिय हो रही है।

5. **उत्तरी भारत के मैदानी क्षेत्रों में रबी राजमा :–** पूर्वी उत्तर प्रदेश, उत्तरी बिहार, महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र तथा उड़ीसा के सिंचित क्षेत्रों में रबी फसल के रूप में राजमा की फसल का सफलतापूर्वक समावेश किया गया है। उदय, अम्बर, एच.यू.आर. 15 व एच.यू.आर. 137 राजमा की उपयुक्त प्रजातियाँ हैं।

6. **धान से खाली क्षेत्रों में दलहनी फसलें :–** भारत में धान से खाली क्षेत्र लगभग 150 लाख हे. है। इन क्षेत्रों में उपयुक्त प्रजातियाँ के चयन द्वारा उर्द व मूंग जैसी दलहनी फसलों के समावेश से इन क्षेत्रों का दोहत किया जा सकता है। आन्ध्र प्रदेश में उर्द की चूर्णी फफूंदी रोग रोधी प्रजाति एल.बी.जी. 17 के उपयुक्त सस्य प्रौद्योगिकी के विकास से उर्द के अन्तर्गत क्षेत्र कई गुना बढ़ गया है।

7. **अर्न्तसस्य फसल के रूप में दलहनी फसलें :–** खरीफ ऋतु में दलहनी फसलों, मोटे अनाज व धान जैसी फसलों के साथ अर्न्तसस्य के रूप में आधार फसल के रूप में अरहर की फसल बहुत उपयुक्त पायी गयी हैं। धान–गेहूँ फसल प्रणाली की तुलना में अरहर+धान अर्न्तसस्य प्रणाली अधिक उत्पादक व लाभदायक पायी गयी हैं। उत्तरी भारत के मैदानों के बारानी क्षेत्रों में मोटे अनाजों, अरहर व कपास तथा सिंचित क्षेत्रों में गन्ने के साथ मूंग, उर्द व लोबिया जैसी शीघ्र पकने वाली दलहनी फसलें उत्कृष्ट अर्न्तसस्य फसलें हैं। इनके उपयुक्त दोहन की आवश्यकता है।

अवसर

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने देश की

आवश्यकताओं व प्रौद्योगिकी विकास की सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र का सुझाव दिया है। अपलैण्ड पर बोया जा रहा धान, बारानी गेहूँ, शुष्क क्षेत्रों में बोई जा रही कपास तथा छोटे मिलेटस फसलों की नई फसलों से बदलाव की परम आवश्यकता हैं। दूसरी तरफ मक्का, सिंचित कपास, गन्ना, चारा, तिलहनी व दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़ाने की आवश्यकता हैं। दलहनी फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र बढ़ाने के लिए नए क्षेत्रों में तथा सघन फसल प्रणालियों तथा इनके समावेश जैसे कई अवसर उपलब्ध हैं।

धान्य फसलों के अन्तर्गत आने वाले एक बड़ा क्षेत्र की उत्पादकता अत्यन्त कम है तथा इन क्षेत्रों में दलहनी फसलें उगाए जाने की अपार सम्भावनाएं हैं। इन क्षेत्रों में धान तथा गेहूँ न बोए जा सकने के कारण दलहनी फसलें उचित विकल्प प्रदान करती हैं। उदाहरणार्थ बारानी अपलैण्ड पारिस्थितकी तन्त्र में गत तीन दशकों में धान की उत्पादकता अत्यन्त कम रही है यहाँ पर उच्च मूल्य प्रदान करने वाली दलहनी फसलें निश्चित रूप से फसल प्रणाली में स्थान पा सकती हैं। वर्तमान में अपलैण्ड धान के अन्तर्गत 60 लाख हे. क्षेत्र है जिसमें अधिकांश क्षेत्र छत्तीसगढ़ में है।

166 लाख हेक्टेयर खाली पड़े क्षेत्र में दलहनी फसलों की खेती की अच्छी सम्भावना है। पूर्वी भारत के 80 लाख हे. से अधिक क्षेत्र में जहाँ सर्वाधिक वर्षा होती है तथा भूमि की संरक्षित नमी का उपयोग किया जा सकता है, केवल एक ही फसल उगाई जा रही हैं। बारानी निचले क्षेत्रों में वर्षा ऋतु के बाद धान की फसल लेने के पश्चात दलहनी फसलों की खेती से शुष्क अवधि में भूमि में नत्रजन के स्थिरीकरण के साथ–साथ धान से खाली क्षेत्रों में खेती सम्भव हो सकेगी। हाल ही में किए गये अध्ययनों में यह पाया गया है कि दलहनी फसलों के तनों से 33.60 कि.ग्रा. तथा उनकी जड़ों से अतिरिक्त 13–36 कि.ग्रा. नत्रजन/हे. की दर से भूमि समृद्ध होती है।

भविष्य

शीघ्र पकने वाली प्रजातियों के विकास एवं उनकी सस्य प्रौद्योगिकी की उपलब्धता से कई उत्पादक तथा लाभदायक फसल प्रणालियाँ चिन्हित की गयी हैं जो पहले ही अपनी क्षमता प्रदर्शित कर चुकी है अथवा नए क्षेत्रों में उनका अत्यन्त उज्जवल भविष्य है जिनसे वर्तमान की फसल प्रणालियों का विविधीकरण सम्भव है। गन्ना, केला, कपास व ज्वार जैसी फसलों को दूरी पर बोए जाने के कारण दो पंक्तियों के मध्य काफी स्थान उपलब्ध रहता है जिसमें अल्पावधि वाली दलहनी फसलों की अन्तर्सस्य खेती की जा सकती है। टपक सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो जाने से, शीघ्र पकने वाली दलहनी फसलों की अर्न्तसस्य खेती का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है। सघन फसल प्रणालियों में दलहनी फसलों के समावेश से देश दलहन उत्पादन में तो आत्म निर्भर हो ही जाएगा साथ ही दलहनी फसलों की जड़ों में उपस्थित राइजोबियम जीवाणु द्वारा वायुमण्डल की नाइट्रोजन को मृदा में स्थिरीकरण करने की विलक्षण क्षमता के कारण मृदा स्वास्थ्य तथा फसलों की पत्तियों के झड़ने से मृदा में जीवांश की मात्रा में भी सुधार होता है।

सुंदर है, मनोरम है, मीठी है, सरल है, ओजस्विनी है और अनूठी है ये हिंदी।

पाथेय है, प्रवास में, परिचय का सूत्र है, मैत्री को जोड़ने की सांकल है ये हिंदी।

पढ़ने व पढ़ाने में सहज है, ये सुगम है, साहित्य का असीम सागर है ये हिंदी।

तुलसी, कबीर, मीरा ने इसमें ही लिखा है, कवि सूर के सागर की गागर है ये हिंदी।

वागेश्वरी के माथे पर वरदहस्त है, निश्चय ही वंदनीय माँ-सम है ये हिंदी।

अंग्रेजी से भी इसका कोर बैर नहीं है, उसको भी अपनेपन से लुभाती है ये हिंदी।

यूँ तो देश में कई भाषाएँ और हैं, पर राष्ट्र के माथे की बिंदी है ये हिंदी।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

कपास की उन्नत उत्पादन तकनीक

मोनिका जायसवाल, अजीत सिंह, मेघा विभूते, भूपेन्द्र सिंह एवं संदीप राठौड़
कृषि विज्ञान केंद्र, बुरहानपुर

मध्य प्रदेश के कपास क्षेत्र का लगभग 75 प्रतिशत निमाड़ अंचल में आता है। इसके अतिरिक्ति धार, झाबुआ, देवास, छिदंवाड़ा जिलों में कपास फसल ली जाती हैं। मध्यम से भारी बलुई दोमट एवं गहरी काली भूमि जिसमें पर्याप्त जीवांश हो व पानी निकास की व्यवस्था हो, कपास के लिए अच्छी होती है।

प्रजाति का चयनः आजकल अधिकतर किसान बी.टी. कपास लगा रहे है। जी.ई. सी. द्वारा लगभग 250 बी.टी. जातियॉ आती है। बीजी–1 जातियों में तीन प्रकार के डेन्डू छेदक इल्लियों, चितकबरी इल्ली, गुलाबी डेन्डू छेदक एवं अमेरिकन डेन्डू छेदक के लिए प्रतिरोधक पायी जाती हैं जबकि बीजी–2 जातियॉ इनके अतिरिक्त तम्बाकू की इल्ली की भी रोक करती है। म.प्र.मे प्रायः तम्बाकू की इल्ली कपास पर नहीं देखी गई अतः बीजी–1 जातियॉ ही लगाना पर्याप्त है।

बुवाई का समय एवं विधिः यदि पर्याप्त सिंचाई सुविधा उपलब्ध है तो कपास की फसल को मई माह में ही लगाया जा सकता है सिंचाई की पर्याप्त उपलब्धता न होने पर मानसून की उपयुक्त वर्षा होते ही कपास की फसल लगावें। कपास की फसल को मिटट्ी अच्छी भुरभुरी तैयार कर लगाना चाहिए। सामान्यतः उन्नत जातियों का 2.5 से 3.0 किग्रा. बीज (रेशाविहीन/डिलिन्टेड) तथा संकर एवं बीटी जातियॉ का 1.0 किग्रा. बीज (रेशाविहीन) प्रति हेक्टेयर की बुवाई के लिए उपयुक्त होता है। उन्नत जातियॉ में चौफुली 45–60x45–60 सेमी पर लगायी जाती है। (भारी भूमि में 60x60 मध्य भूमि में 60x45, एवं हल्की भूमि में) संकर एवं बीटी जातियों में कतार एवं पौधे से पौधे के बीच की दूरी क्रमशः 90 से 120 सेमी. एवं 60 से 90 सेमी रखी जाती है।

सघन रोपण पद्धति द्वारा कपास की बुवाई : कपास भारत की व्यापारिक दृष्टिकोण से एक महत्वपूर्ण फसल है जो कि विश्व में सबसे अधिक क्षेत्रफल के साथ उत्पादन में तीसरे नम्बर पर है। बी.टी. कपास के आने से पहले उत्पादन काफी कम था, लेकिन बी.टी. कपास के आने के बाद कपास के उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी हुई। वर्तमान समय में कपास मे उत्पादन बढाने के लिए एक मात्र विकल्प है कि ह्रास्य प्रबंधन एवं फसल प्रणली में बदलाव लाया जाये। वर्तमान समय में भारत में कपास की बुवाई अधिक दूरी जैसे 120x120 सेमी. से लेकर 90x90 सेमी. पर करते हैं जिसमे मात्र 6944 से लेकर 12356 पौध/हे. का समावेश हो पाता है। देश के विभिन्न हिस्सों में परीक्षण के बाद वैज्ञानिकों की यह अनुशंसा है कि यदि सघन बुवाई पद्धति से कपास की खेती की जाय तो निश्चित तौर पर उत्पादन में और बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

कपास सघन बुवाई पद्धति (एचडीपीएस): अधिक उपज प्राप्त करने के उद्देश्य से विश्व के विभिन्न देश जैसे यू.एस.ए., आस्ट्रेलिया, चीन, ब्राजील एवं उजबेकिस्तान मे सधन बुवाई पद्धति अपनाई जा रही है। भारत मे यह पद्धति एक स्थाई उत्पादन प्रणाली देने हेतु काफी महत्वपुर्ण है। हमारे देश मे 60% क्षेत्र मे कपास की खेती वर्षा आधारित की जाती है ऐसे क्षेत्रो मे उत्पादन काफी कम होता है। वर्षा आधारित खेती मे सुरक्षा एवं सिंचाई की उपलब्धता करीब –करीब नही के बराबर रहती है। अधिकतम क्षेत्रो मे वर्षा जून से शुरू होकर सितंबर तक समाप्त हो जाती है। डेंडू बनने की प्रक्रिया लम्बी अवधि वाली एवं संकर किस्मों मे अक्टूबर से शुरू होकर नवम्बर में अधिक मात्रा मे होती है। इस अवस्था में सिंचाई एवं पोषण प्रबंधन अधिक उपज के लिए अति आवश्यक है। इस विधि के अन्तर्गत कम अवधि एवं सीधी ऊपर बढ़ने वाली प्रजातियाँ जैसे सुरज, सुप्रिया, पीकेवी–081, एनएच–615 एकेए–07 एवं एचडी–123 का चुनाव कर सकते है। केंद्रीय कपास अनुसंधान संस्थान, नागपुर द्वारा विभिन्न क्षेत्रों मे परीक्षण के आधार पर यह देखा गया है कि पौध संख्या प्रति हेक्टेयर 1.5 से 2.2 लाख बढाकर मध्यम भूमि मे वर्षा आधारित क्षेत्रो से 18–20 कुन्तल/हेक्टेयर से अधिक उपज प्राप्त कर सकते है।

मुख्य बिन्दुः

गहरी मृदा	:	75x10 सेमी.(सिंचित दशा) 60x10 सेमी.(वर्षा आधारित)
उथली एवं मध्यम मृदा	:	60x10 सेमी.(सिंचित दशा) 45x10 सेमी.(वर्षा आधारित)
प्रजाति	:	सुरज, पीकेवी–081, एनएच–615, सुप्रिया, जेके–4
बीज दर	:	5 किग्रा/एकड

पोषक तत्व प्रबन्धन : कपास की फसल में गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। जैव उर्वरक जैसे एजेटोबैक्टर एवं पी.एस.बी. का प्रयोग 8–10 किग्रा. प्रति हेक्टर किया जा सकता है। इनके प्रयोग से मिट्टी में पड़े स्फूर (फास्फोरस) का उपयोग बढ़ जाता है तथा प्रयोग की जा रही नत्रजन की मात्रा को 10 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है। कपास फसल मे प्रति हेक्टयर प्रयोग की जाने वाली नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा इस प्रकार हैं।

क्रम	प्रारूप/स्थिति	नत्रजन (किग्रा.)	फास्फोरस (किग्रा.)	पोटाश (किग्रा.)
01	सिंचित	150	80	50
02	अर्धसिंचित	100	60	30
03	असिंचित	80	60	20

प्रति हेक्टर उर्वरक प्रयोग की मात्रा (किग्रा.) समूह/विकल्पवार

स्थिति	पोषक तत्वों की सिफारिश एन.पी.के./हे.	समूह – 1			समूह – 2			समूह – 3			समूह – 4		
		यूरिया	सुफर	पोटाश	डी.ए.पी.	यूरिया	पोटाश	एन.पी.के. 12:32:16	यूरिया	पोटाश	एन.पी.के. 10:26:26	यूरिया	पोटाश
सिंचित	150:80:50	325	500	83	173	258	83	250	260	17	307	260	–
अर्धसिंचित	100:60:30	217	375	50	130	166	50	188	170	–	230	167	–
असिंचित	80:60:20	173	375	33	130	124	33	188	125	–	230	100	–

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग : गोबर खाद अथवा कम्पोस्ट को बुवाई से पहले मिट्टी में मिला देना चाहिए। अर्धसिंचित एवं असिंचित कपास में नत्रजन 1/3 भाग, पोटाश एवं फास्फोरस 1/2 भाग बोनी के समय या अंकुरण के 30 से 35 दिन के अन्दर देना चाहिये। बाकी बची हुई पोटाश एवं फास्फोरस की मात्रा 60–65 दिन फसल होने पर देना चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा 90 से 120 दिन के बीच मे देनी चाहिये। सिंचित कपास में उर्वरकों को निम्नानुसार देना चाहिए।

समय	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश
बुवाई के समय	10 प्रतिशत	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत
अंकुरण के 1 माह बाद	25 प्रतिशत	–	–
अंकुरण के 2 माह बाद	25 प्रतिशत	50 प्रतिशत	50 प्रतिशत
अंकुरण के 3 माह बाद	25 प्रतिशत	–	–
अंकुरण के 4 माह बाद	15 प्रतिशत	–	–

रासायनिक उर्वरक देने का तरीका:

- घेरा बनाकर पौधे के चारों ओर 5–6 सेमी. दूर 4 सेमी. गहरा गोलाई में घेरा बनायें उसमें उर्वरक डालकर हसियाँ/ खुरपी की सहायता से मिट्टी में मिला देना चाहिए।
- सर्वप्रथम मिट्टी परीक्षण से यह ज्ञात कर लें कि हमारे खेत में मुख्य पोषक तत्व नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की क्या स्थिति है।
- सम्भव हो तो सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी जॉच करा कर पता करे कि किस तत्व की अधिकता अथवा कमी है।
- मिट्टी परीक्षण के आधार पर फसल को पोषक तत्व प्रदान करने की योजना बनायें।
- मिट्टी में यदि गन्धक (सल्फर) तत्व की कमी हो तो पूर्ति हेतु जिप्सम या जिंक सल्फेट (25 किग्रा./हे.) का प्रयोग करे।
- फसल चक्र अपनायें।
- कपास के साथ अन्तरवर्तीय फसलें जैसे अरहर (6:2 के अनुपात में) लगाये इसके अलावा सोयाबीन को भी अन्तरवर्ती फसल के रूप में लगाया जा सकता है।
- यदि उपलब्ध होतो केंचुआ खाद का प्रयोग अवश्य करें।

सिंचाई की कुछ अति आवश्यक आवस्थायें :

- अंकुरण हेतु (बुवाई के 0–15 दिन तक)
- बुवाई के 85–100 दिन बाद अर्थात पुष्प अवस्था के समय।
- बुवाई के 125 दिन बाद अर्थात बॉल बनने एवं विकास के समय।
- बॉल खुलने के समय अर्थात बुवाई के 140–150 दिन बाद।
- पुष्पावस्था से पहले अधिक और जल्दी–जल्दी सिंचाई देना उत्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

- पुष्पावस्था और बॉल बनने के समय मिटट्री में नमी की कमी भी उत्पादन कम करती है।
- सिंचाई एक कतार छोड़कर करना लाभदायक है लेकिन सबसे उत्तम टपक सिंचाई पद्धति है।

कपास के प्रमुख कीट एवं उनका प्रबंधन :

➢ **काटन जैसिड (फूदका) :** निम्फ (शिशु) और प्रौढ़ (वयस्क) सामान्यतः पत्ती की निचली सतह में रस चूसते है और पत्तियों में जहर छोड़ देते है जिसके कारण पत्तियॉ सिकुड जाती

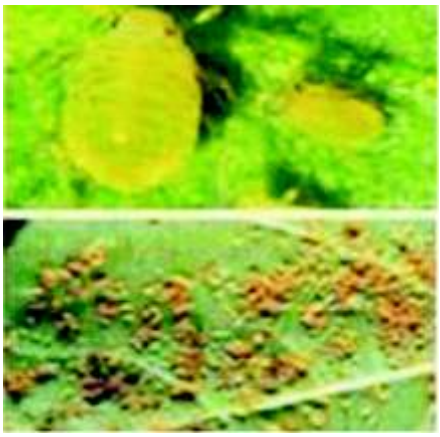

है। शुरूआती दौर में पत्तियॉ पीली हो जाती है तथा किनारों पर लाल हो जाती है बाद में पूरी पत्तियॉ लाल दिखाई देती है। ज्यादा प्रकोप होने की अवस्था में पत्तियॉ सूख जाती हैं और सड़ने लगती हैं।

नियंत्रण : इमिडाक्लोप्रिड 17.8 :एस. एल दवा 10 मिली./पम्प प्रयोग करना चाहिए ।

➢ **सफेद मक्खी (बेमीसिया टेबेसाई):** सफेद मक्खियाँ हनीडयू निकालती है इसलिए पत्तियाँ चिपचिपी या कजली फफूँद से ढँकी हो सकती है। पत्तियों की निचली सतह पर आक्रमण करती है। अभ्रक और वयस्क रस चूसतें हैं। प्रभावित पत्ती पीली पड़कर सूख जाती है। कजली फफूँद प्रकाश संश्लेषण में बाधा डालती है। कॉटन लीफ कर्ल वायरस (सी.एल.सी.वी.) प्रसारित करती है। हनीडयू उत्पन्न करती है जिसके कारण रूई खराब हो जाती है। पत्तियों में पोषक तत्वों को कम करती है जिसके कारण बढ़वार, उत्पादन तथा कपास की गुणवत्ता में कमी आती है। सफेद मक्खी 60–120 दिन के बीच अत्याधिक क्षति कर सकती है।

आर्थिक हानि स्तर : 8–10 वयस्क प्रति पत्ती या 20 शिशु प्रति पत्ती ।

नियंत्रण : एसिटामाप्रिड 20 :एस.पी. 6–8 ग्राम प्रति पम्प ।

➢ **मिलीबगः** नियंत्रण हेतु प्रोपीनोफास 50 ई.सी. + साइपरमेथ्रीन 1प्रतिशत का मिश्रण 40 मिली. + एसीफेट 30 ग्राम प्रति पम्प प्रयोग करें।

एकीकृत कीट प्रबंधन कैसे करें :

- ग्रीष्मकालीन जुताई, फसल चक्र एवं अन्तरवर्तीय सस्य क्रियाऍं अपनायें।
- यांत्रिक विधियों से रोकथाम के साथ साथ प्रकाश प्रपंच का उपयोग करें।
- जैविक कीट नियंत्रण विधि अपनायें एवं मित्र कीटों की संख्या खेतों में बढ़ायें जैसे क्रायसोपा यह सफेद मक्खी, मॉहू एवं अन्य कीटों के अण्डे खाता है।

➢ **लेडी बर्ड बीटल :** इस परभक्षी कीट का वयस्क अण्डाकार चमकीले लाल नांरगी रंग का होता है। यह कीट सफेद मक्खी तथा इल्लियॉ के अण्डों पर अण्डे दे देता है।

नियंत्रण : नीम की खली का खेतों में प्रयोग किया जाय। नीम तेल (1500 पी.पी.एम.) का छिड़काव 2.5 मिली./लीटर की दर से किया जाए।

कपास के रोग :

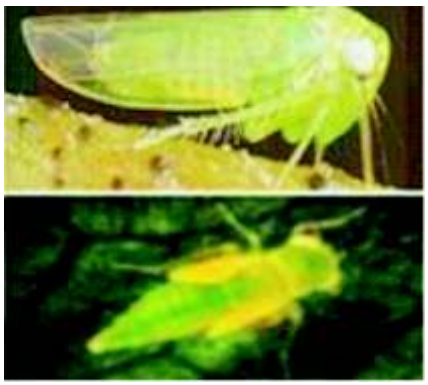

➢ **पूर्ण धब्बा/ झुलसा रोग (अल्टरनेरियापर्ण/अल्टरनेरिया मैक्रोस्पोरा):** इस फफूंद का रोगाणु (माइसीलियम) बीज, रोग ग्रस्त पत्तों एवं अल्टर नेट होस्ट में रहता है। इस रोग के चलते पत्तियों पर छोटे, भूरे, गोल धब्बे जो बैगनी किनारा लिए रहते है बन जाते है। छोटे–छोटे धब्बे आपस में मिलकर एक बड़े धब्बे का आकार ले लेते है। वातावरण में अधिक नमी होने पर यह धब्बे काले रंग के हो जाते है एवं पत्ते गिर जाते है।

नियंत्रण : मेनकोजेब दवा 2 ग्राम एक लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव करें।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

खरीफ मक्का की वैज्ञानिक खेती

अनिल कुमार यादव[1], रमेश कुमार[2] एवं पी. के. द्विवेदी[3]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, (स्काडा), भोजपुर, आरा

[2]भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, लुधियाना

[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, (स्काडा), भोजपुर, आरा

विश्व मे मक्का एक महत्वपूर्ण फसल के रुप में जाना जाता है। यह 160 से अधिक देशों में उगाया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, ब्राजील, मेक्सिको, फ्रांस और भारत प्रमुख मक्का उत्पादक देश हैं। मक्का को विश्व में खाद्यान्न फसलों की रानी कहा जाता है क्योंकि इसकी उत्पादन क्षमता खाद्यान्न फसलों में सबसे अधिक है। भारत में धान एवं गेहूँ के बाद मक्का सबसे महत्वपूर्ण धान्य फसल है। भारत में लगभग 75% मक्का की खेती खरीफ के मौसम में होती है। अपने देश में सन् 2013–14 में 9.4 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में मक्के की फसल ली गई जिससे 23 मिलियन टन पैदावार प्राप्त हुई एवं औसत उत्पादकता 25 क्विंटल/हेक्टेयर दर्ज की गई। विश्व के कुल मक्का उत्पादन में भारत का 3% योगदान है। मक्का को भारतवर्ष में लगभग सभी क्षेत्रों में उगाया जाता है। कुल मक्का उत्पादन में 80 प्रतिशत योगदान इन प्रमुख राज्यों का है ये राज्य हैं– आंध्रप्रदेश 20.9%, कर्नाटक 16.5% राजस्थान 9.9%, महाराष्ट्र 9.1%, बिहार 8.9%, उत्तर प्रदेश 6.1%, मध्यप्रदेश 5.7%, हिमांचल प्रदेश 4.4% इसके अलावा जम्मू कश्मीर व उत्तर पूर्वी राज्यों में भी इसकी खेती होती है। मक्के का उपयोग मानव आहार (23%) पशु आहार (12%) कुक्कुट आहार (51%), स्टार्च (12%), शराब (1%) तथा बीज (1%) के रुप में किया जाता है। भारतवर्ष में मक्का से लगभग 1000 से ज्यादा उत्पाद तैयार किये जाते हैं। मोटे अनाज के रूप में कभी गरीबों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली मक्का आज कृषि आधारित उद्योग जगत में अपना स्थान बना चुकी है।

मक्का और खासकर विशेष प्रकार के मक्का (बेबीकॉर्न एवं स्वीटकॉर्न) की साल भर खेती होती है तथा पौष्टिक चारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है, जिसका साइलेज बनाया जा सकता है, जो हरे चारे की कमी को दूर करने मे काफी मदगार हो सकता है। शहरों के आस–पास मक्का की खेती हरे भुट्टे के लिए मुख्य रुप से की जाती है। आजकल मक्के की विभिन्न प्रजातियों को अलग–अलग तरह से उपयोग में लाया जाता है। मक्का को पॉपकॉर्न, स्वीटकॉर्न एवं बेबीकॉर्न के रुप में पहचान मिल चुकी है। धान– गेहूँ फसल चक्र के द्वारा उपज में ह्रास के समाधान के लिये फसल चक्र विविधीकरण में मक्का की खेती एक अहम् भूमिका निभा सकती है।

मृदा का चयन एवं तैयारी

मक्के की खेती विभिन्न प्रकार की मृदायों में सफलता पूर्वक की जा सकती है। उचित जल निकासयुक्त बलुई मटियार से दोमट मृदा जिसमें वायु संचार एवं जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो तथा पी. एच. मान 6.5 से 7.5 बीच हो इसकी खेती अच्छी होती है। लवणीय मृदा में मक्का की बुआई मेढ़ के उपर के बजाय किनारों में करें जिससे जड़ें नमक से कम प्रभावित होगी।

खरीफ फसल के लिये खेत की तैयारी जून के दूसरे सप्ताह में शुरु कर देनी चाहिए। एक गहरी जुताई 15 से 20 से. मी. मिट्टी पलटने वाले हल से करनी चाहिए। अगर खेत गर्मियों में खाली है तो जुताई गर्मियों में करना अधिक लाभदायक रहता है। इस जुताई से खरपतवार कीट पतंगें व बीमारियों की रोकथाम में काफी सहायता मिलती है। खेत की नमी को बनाये रखने के लिए कम से कम समय जुताई करके तुरंत पाटा लगाना लाभदायक रहता है। जिन इलाकों में दीमक का प्रकोप हो वहॉ आखिरी जुताई के समय क्लोरोपॉयरीफास 20 ई.सी. की 1 लीटर/एकड़ की दर से बुवाई के पहले मिट्टी में मिला दें।

बुआई का समय

अधिकतर राज्यों में जहाँ पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हों वहाँ पर खरीफ में बुआई की उपयुक्त समय मध्य जून से मध्य जूलाई है। बुआई के समय ऐसा सुविधाजनक तालमेल बिठाया जाना चाहिए जिससे प्राकृतिक वर्षा का अच्छी तरह से उपयोग किया जा सके और जमीन को अगली फसल के लिए तैयारी का पर्याप्त समय मिल सके। सिंचाई वाले क्षेत्रों में वर्षा प्रारम्भ होने के 10–15 दिन पहले ही बुआई करने से 15 प्रतिशत अधिक उपज का लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जबकि वर्षा होने के साथ अथवा वर्षा के शुरु हो जाने के बाद की बुआई करने से यह लाभ प्राप्त नहीं होता है। अगेती बुआई करने से, खेतों में खरपतवार की रोकथाम करने का भी पर्याप्त अवसर मिल जाता है। वर्षा सिंचिंत क्षेत्रों के लिए, जहाँ सिंचाई के साधन नहीं होते हैं, यह उचित होगा कि वहाँ जैसे ही, मिट्टी में अंकुरण के लायक नमी और पौधों के खड़े रहने के लायक जमीन तैयार हो, तुरंत फसल की बुआई कर देनी चाहिए। जिन किसानों के पास सीमित सिंचाई साधन हैं वे अगेती बुआई कर सकते हैं। अगेती बुआई की

फसल को 1–2 बार सिंचाई की आवश्यकता होती है जब तक कि सामान्य वर्षाकाल प्रारंभ न हो।

बीज की मात्रा

प्रति एकड़ बीज की मात्रा एवं कतार से कतार तथा पौधे से पौधे की दूरी निम्नलिखित सारणी में दी गयी है–

	बीज की मात्रा (कि.ग्रा./एकड़)	कतार से कतार की दूरी (से.मी.)	पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.)
मक्का (संकर/संकुल)	8–10	60–70	20–25
स्वीट कॉर्न	3	75	25–30
पॉप कॉर्न	4–5	60	20
चारे हेतु	20–30	30	10

बीजोपचार

बीजोपचार बहुत सस्ता, सरल एवं कारगर उपचार है जिससे कई तरह के रोग एवं कीटों से फसल की सुरक्षा हो जाती है। हमें बीजोपचार करके ही खेत की बुआई करनी चाहिए।

रोग से सुरक्षा हेतु बीजोपचार

पौधों में रोग पैदा करने वाले फफूँद के बीजाणु बीज के साथ लगे होते हैं अथवा मिट्टी में सुसुप्तावथा में पड़े रहतें हैं जो उपयुक्त वातावरण पाकर अंकुरित होते हैं एवं पौधों को ग्रसित करते हैं। इन फफूँद जनित रोगों से सुरक्षा हेतु फफूँद नाशक दवा कार्बेन्डाजिम व कैपटान 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज 1:1 के अनुपात में अच्छी तरह मिलाकर प्रयोग करें।

मिट्टी में रहने वाले कीटों से सुरक्षा के लिए बीजोपचार

तिरपाल या पक्की सतह पर बीज का ढ़ेर लगाकर 4 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. इमिडाक्लोरोपिड या 8 मि.ली. क्लारोपायरीफास 20 प्रतिशत ई.सी. का पानी में घोल बनाकर उसे अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

बुआई की विधि

जल भराव से होने वाले नुकसान से बचाने व पौधों की जड़ों को पर्याप्त नमी मिलती रहे इसके लिए उचित होगा कि फसल को मेंड़ों पर बोया जाय। बीज को उचित दूरी पर लगाना चाहिए। आज कल विभिन्न बीज माप प्रणालियों के प्लांटर उपलब्ध हैं, किन्तु इनक्लाइंट प्लेट, कपिंग या रोलर टाईप के सीट मीटरिंग प्रणाली सर्वोत्तम पायी जाती हैं। बुआई में प्लांटर का उपयोग करना चाहिए क्योंकि इससे एक ही बार में बीज व उर्वरकों को उचित स्थान पर डालने में मदद मिलती है।

मेंड़ (रिज) पर मक्का बोने के लाभ

1. पानी बीज खाद की मात्रा में कमी एवं बचत।
2. फसल को पकने से पूर्व गिरने से बचाने के लिए।
3. क्षारीय व लवणीय मृदाओं में अधिक पैदावार ली जा सकती है।
4. इस विधि से मक्का उत्पादन करने पर न सिर्फ नालियों का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता है बल्कि जल जमाव के निकासी के लिए किया जा सकता है।
5. छोटे पौधों में मशीन द्वारा निराई–गुड़ाई की जा सकती है।

अंतर्वर्ती फसल (इंटरक्रापिंग)

अन्तःफसल एक तरह का बीमा है जो किसान को जैविक व अजैविक आपदाओं से बचाता है मक्का के साथ कम अवधि में पकने वाली दलहनी फसलें जैसे मूँग, उड़द, लोबिया, तिलहनी फसलें जैसे मूँगफली, सोयाबीन तथा सब्जिया एवं फूल आदि फसलें ली जा सकती हैं।

अंतर्वर्ती फसल खेती में मुख्य फसल की निर्धारित उर्वरक की मात्रा के अलावा अन्तः फसल की निर्धारित उर्वरक मात्रा का प्रयोग भी करना चाहिए।

मक्का तथा अन्तः फसल की दो–दो या मक्का की दो एवं अन्तः फसल की एक पंक्ति बोनी चाहिए।

खरपतवारों का नियंत्रण अन्तःफसल में निराई गुड़ाई से करना चहिए ं।

शाकनाशी रसायनों के इस्तेमाल से अंतवर्ति फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

उर्वरक प्रबन्ध

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परिक्षण के आधार पर करना चाहिए। भारतीय मृदाओं में नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटाश के अतिरिक्त कुछ सूक्ष्म तत्वों जैसे लोहा, जस्ता आदि की कई क्षेत्रों में कमी देखी गई है। बुआई से 10–15 दिन पूर्व खेत में भलि भॉति सड़ी हुई 10–12 टन/हेक्टेयर गोबर की खाद मिला देनी चाहिए। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए 60–65 किलो ग्राम नाइट्रोजन, 25–30 किलो ग्राम फासफोरस, 25–30 किलो ग्राम पोटाश तथा 10 किलो ग्राम जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। फासफोरस, पोटाश और जिंक की पूरी मात्रा तथा 10% नाइट्रोजन को बुआई के समय देना चाहिए। शेष नाइट्रोजन को चार हिस्सों में निम्नलिखित तरीके से देना चाहिए।

- 20 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में चार पत्तियाँ आने के समय देनी चाहिए।
- 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल में दो पत्तियाँ आने के समय देनी चाहिए।
- 30 प्रतिशत नाइट्रोजन फसल की पुष्पन अवस्था में हो या फूल आने के समय देना चाहिए।
- 10 प्रतिशत नाइट्रोजन का प्रयोग दानों के भराव के समय देना चाहिए।

सिंचाई

मक्का में धनबाल एवं मोचा (नर एवं मादा पुष्पन) व दाने बनने के समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए। अतः आवश्कतानुसार

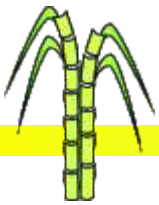

सिंचाई जरूर करें। पुष्पन के समय पानी न मिलने पर सही पराग दाने कम बनते हैं। बारिश के बाद खेत से जल निकास की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, नहीं तो पौधे पीले पड़ जाते हैं और उनकी बढ़वार रूक जाती है।

खरपतवार नियंत्रण

खरीफ के मौसम में खरपतवारों की अधिक समस्या देखी गयी है, जो फसल से पोषण, जल एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिसके कारण उपज में भारी नुकसान होता हैं। मक्का में अच्छी उपज लेने के लिए समय रहते खरपतवारों का नियंत्रण अति आवश्यक है। बरसात के दिनों में निराई–गुड़ाई के लिए समय भी कम मिल पाता है अतः रसायनिक खरपतवारनाशी के प्रयोग से वर्षा ऋतु में लाभदायक परिणाम प्राप्त कर सकते है। इसके लिए 24 से 48 घंटे के अंदर एट्राजीन 800 ग्राम न्युनतम 200 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। छिड़काव करने वाले व्यक्ति को छिड़काव करते समय आगे की बजाय पीछे की तरफ बढ़ना चाहिए ताकि मृदा पर बनी एट्राजीन की परत ज्यों की त्यों बनी रहें। अच्छे वायु संचार तथा बचे हुए खरपतवारों को जड़ से उखाड़ने के लिए बाद में एक या दो निराई की जा सकती है।

मक्का के प्रमुख कीट एवं ब्याधियाँ

कीट प्रबंधन

तना छेदक कीट– खरीफ मौसम पूरे देश में मक्के का तना छेदक (काइलो पार्टेलस) का लार्वा मुख्य रूप से पौधों को काफी नुकसान पहुचाती हैं। तना छेदक पतंगे पत्तियों पर अंडे देती हैं। इसकी सूंडी गोभ में घुसकर पौधों को नष्ट कर देती है। अगर तना छेदक का प्रकोप अधिक हो तो पौध जमने के 12–15 दिनों के पश्चात् 3–4 मि.ली. क्लोरोपायरीफास 20 ई.सी. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें अथवा जब फसल घुटने भर के हों जाय और तना छेदक कीट का आक्रमण हो जाय तो कार्बोफ्यूरान 3 जी. दानेदार या फोरेट 10 जी. दानेदार कीटनाशी का इस तरह व्यवहार करना चाहिए कि प्रत्येक गाभा में 3–4 दाने चला जाय।

पत्र लपेटक कीट– व्यस्क कीट सुनहरे रंग का होता है जिनके पंखों पर तीन काली अनुप्रस्थ धारियां बनी होती हैं। मादा कीट पत्तियों पर अंडे देती है और इससे निकला पिल्लू स्वस्थापित धागे से पत्ती के किनारों को जोड़कर नाली बनाता है। पिल्लू इसके अन्दर रहकर हरियाली को चुसता रहता है जिससे पौधें कमजोर व रोगी दिखता हैं।

प्रबंधन – कम प्रकोप की अवस्था में फट्ठी के सहारे पौधों को खोल देना चाहिए तथा आवश्यक होने पर डायमेथोएट 30 प्रतिशत ई.सी. का 300 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

भुट्टा छेदक (कॉबबोरर) – इस कीट का पिल्लू मक्के की बाली में प्रवेश कर बाली को खाता है।

प्रबंधन – इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफोस 36 प्रतिशत ई.सी. या क्यूनालफास 25 प्रतिशत ई.सी. का 300 मि.ली. प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

बिमारियों का प्रबंधन – खरीफ के मौसम में मक्का की फसल में देश के विभिन्न भागों के अनेक प्रकार की बिमारियों का पकोप पाया जाता है। समय पर अगर इनका उचित प्रबंधन न किया जाय तो इससे फसल की काफी क्षति होती है।

लीफ ब्लाइट (झुलसा) – यह मुख्यतः हेलिमेन्थोस्पोरियम में डिस तथा हेलिमेन्थोस्पोरियम टार्सिकम नामक फफूंद के कारण होता है। मेडिस में पत्तियों के शिराओं के बीच में पीले भूरे अंडाकार धब्बे बन जाते हैं जो बाद में लंबे होकर चौकोर हो जाते हैं जबकि टर्सिकम में हरे भूरे या पुआल के रंग के नाव के आकार के धब्बे बनते हैं। मेडिस में धब्बे की संख्या ज्यादा जबकि टर्सिकम में कम होती है। मेडिस में धब्बे का आकार छोटा जबकि टर्सिकम में बड़ा होता है। बैंडेज लीफ व शीथ ब्लाइट में पत्तों व शीथ पर स्लेटी या भूरे रंग की गहरी पट्टिया दिखाई देती है।

प्रबंधन – इसकी रोकथाम के लिए मैनकोजेब 75% का 800 ग्राम से 1 कि.ग्रा. दवा 150–200 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़काव करें तथा आवश्कतानुसार 15 दिनों बाद दुबारा दवा का छिड़काव करना चाहिए। जिन क्षेत्रों में इस रोग का प्रकोप ज्यादा हो उन क्षेत्रों में रोग प्रतिरोधी किस्में लगाना चाहिए।

पोलीसोरा रस्ट (हरदा रोग) – यह रोग नमी अधिक होने पर पत्तियों के दोनों सतहों पर गोल, लंबें, सुनहरे या गहरे भूरे रंग का पाउडर बिखरा दिखाई देता है जो बाद में भूरे काले रंग का हो जाता है।

प्रबंधन – रोग के लक्षण प्रकट होने पर 15 दिन के अन्तराल पर 2.0 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से डायथेन एम–45 छिड़काव करना चाहिए।

फसल की कटाई व गहाई – फसल अवधि पूर्ण होने के पश्चात् अर्थात जब भुट्टों को ढकने वाली पत्तियां पीली पडने लगें तथा दाने में लगभग 25 प्रतिशत नमी होने पर कटाई करना चाहिए। कटाई के बाद मक्का फसल में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गहाई है। उससे दाने निकालने के लिए सेलर का उपयोग किया जाता है। सेलर नही होने की अवस्था में साधारण थ्रेसर में मक्का की गहाई की जा सकती है।

भण्डारण – कटाई व गहाई के पश्चात् प्राप्त दानों को धुप में अच्छी तरह से सुखाकर भण्डारित करना चाहिए। यदि दानों का उपयोग बीज के लिए करना है तो इन्हें इतना सुखा लें जिससें नमी की मात्रा 12 प्रतिशत से कम रहें। ध्यान रखें की संकर मक्का के बीज को दुबारा बुवाई के लिए नहीं रखना चाहिए। बीज के लिए या खाने के लिए टिन से बने ड्रम में भुट्टे सहित रखें और रखते समय फयूमिनो की एक टिकिया की प्रति छः क्विंटल की दर से ड्रम या बोरों के मध्य में रखें।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

लोटनल पॉलीहाउस – बेमौसमी पौध उत्पादन तकनीक

भूपेन्द्र सिंह[1], विनय कुमार सिंह[3], चंचिला कुमारी[1], मनीष कुमार[1], रुपेश रंजन[1] एवं राज कुमार सिंह[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, कोडरमा
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग
[3]भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

वर्षा ऋतु अथवा उसके बाद सब्जियों की स्वस्थ पौध तैयार करना लगभग असंभव या बहुत ही कठिन कार्य है, जिसका मुख्य कारण उस समय अत्यधिक खरपतवारों के होने के कारण विभिन्न प्रकार के कीटों जैसे सफेद मक्खी आदि का वातावरण में बहुत अधिक संख्या में मौजूद होना हैं, जिसके कारण खुले वातावरण में स्वस्थ पौध तैयार करना बहुत कठिन है। यही नहीं उस समय अधिक तापमान व उच्च आर्द्रता होने के कारण भूमि में मौजूद भूजनित रोग (कवक) अत्यधिक सक्रिय रहते हैं, जिसके कारण भी स्वस्थ पौध तैयार करना मुश्किल हो जाता है तथा कई बार तो इसके कारण पौध तैयार करना लगभग असभंव हो जाता हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान स्थित भारत इजराइल परियोजना के वैज्ञानिकों ने कम लागत में स्वस्थ विषाणु रोग रहित पौध उगाने की तकनीक प्रस्तावित की हैं।

क्योंकि ज्यादातर सब्जियों को उनकी पौध उगाकर रोपित किया जाता है, इसलिये सब्जी उत्पादन में पौध उत्पादन की उचित तकनीक का बहुत बड़ा योगदान है। स्वस्थ पौध अधिक व अच्छी गुणवत्ता के उत्पादन में सहायक सिद्ध होती है। सब्जियों के उत्पादन में स्वस्थ पौध का होना बहुत आवश्यक व महत्वपूर्ण है। जैसा कि हम जानते हैं कि कुछ सब्जियों जैसे टमाटर, मिर्च, शिमला मिर्च, बैगन आदि की पौध को खुले खेत में उगाने पर पौध में विषाणु रोगों का प्रकोप ज्यादा होता है। भारत जैसे विकासशील देश में सब्जियों की उत्पादकता कम होने तथा उत्पादन की गुणवत्ता में कमी के कई कारण हैं, जैसे कि उच्च गुणवत्ता वाले सब्जी बीजों का आवश्यक मात्रा में उपलब्ध न होना या उत्पादकों को उनकी उचित जानकारी न होना या फिर उच्च गुणवत्ता वाले विभिन्न संकर बीजों या सामान्य किस्मों का उत्पादकों को समय पर उपलब्ध न होना, कीट व रोगरोधी किस्मों की कमी होना, कीट व रोगों की रोकथाम हेतु उचित उपाय न होना, पूर्ण सस्य क्रियाओं की जानकारी न होना या उनका पूर्णतया न अपनाया जाना आदि। उत्पादकता में कमी तथा निम्न गुणवत्ता वाले उत्पादन में पौध उत्पादन व उसकी गुणवत्ता की मुख्य भूमिका रहती हैं। यही नहीं आज विभिन्न सब्जियों में उपलब्ध संकर किस्मों के बीज अत्यंत महंगे हैं तथा उत्पादकों के पास उन महंगे बीजों से उच्च गुणवत्ता वाली स्वस्थ पौध तैयार करने की तकनीकी जानकारी नहीं हैं। इस तकनीक द्वारा उच्च गुणवत्ता विषाणु रोगरहित पौध तैयार करना संभव है। स्वस्थ व उच्च गुणवत्ता की पौध द्वारा बीज उत्पादन व बीज की गुणवत्ता को भी बढ़ाया जा सकता है।

कम लागत के नेट हाउस

इस प्रकार की संरचनाओं के निर्माण के लिये बी ग्रेड की जी आई पाइपों को अर्धचंद्रकार रूप में मोड़ा जाता है तथा जमीन में आधार बनाकर इनकों स्थापित कर दिया जाता हैं। तदुपरांत 40 मेश तथा धूप से बेअसर नेट को उचित व आवश्यक आकार में काटकर उसके ऊपर ढ़क दिया जाता है। नेट को ढ़कने के बाद नेट को किनारों से मिट्टी में दबा दिया जाता है ताकि नेट हाउस में नेट का कसाव अच्छा रहें। इन संरचनाओं की जमीन से ऊंचाई 5.5 से 6 फीट की होती है। इस प्रकार की संरचना में प्रवेश के लिये क्रमानुसार दो दरवाजों को लगाया जाता है। दो दरवाजे लगाने का उद्देश्य यह होता है कि जब हम प्रथम दरवाजे को खोलकर अंदर जायें तो शरीर मे उपस्थित धूल के कण व बाहर से शरीर के साथ चिपके कीड़े वहीं पर झाड़ दिये जायें। इस प्रकार 50 वर्ग मीटर क्षेत्रफल में नेट हाउस के निर्माण में 3000–3500 रूपये का खर्च आता है। किसान इसके आकार को आवश्यकतानुसार घटा या बढ़ा सकते हैं। इसके बाद इसके अंदर आवश्यकतानुसार भूमि की गुड़ाई करके 15 से.मी. उठी हुई लंबी क्यारियां बना सकते हैं तथा बीज की बुआई उचित दूरी पर कतारों में करनी चाहिये। बुआई के बाद हजारे से हल्की सिंचाई करनी चाहिये। सिंचाई गर्मियों में दिन में दो बार व सर्दियों

में आवश्यकतानुसार ही करें। सर्दियों में इस प्रकार की संरचना में पौध उगाने से पौध की पाले व कम तापमान से भी रक्षा होती हैं। क्योंकि इस मौसम में इस प्रकार की संरचना के अंदर का तापतान बाहर की तुलना में ज्यादा रहता है। यदि तापमान बहुत कम हो तो नाइलोन नेट के ऊपर प्लास्टिक ढककर इसे एक पॉली हाउस के रूप में भी उपयोग में लिया जा सकता है। गर्मी के मौसम में अधिक तापमान को कम करने के लिये प्लास्टिक की बजाय छाया करने वाले नेट का प्रयोग किया जा सकता है।

लो टनल में पौध उत्पादन

इस प्रकार की संरक्षित संरचनाओं का निर्माण क्यारियों की चौड़ाई व लंबाई के अनुरूप किया जाता हैं। इसकी ऊँचाई जमीन की सतह से 1.0 से 1.5 फीट तक हो सकती है। इसके निर्माण के लिए पतलें तारों को आवश्यक लंबाई में काटने के बाद क्यारियों की चौड़ाई के दोनों किनारों पर एक दूसरे के लंबवत् गाड़ देते हैं। इसके बाद 40 मेश का नेट ऊपर से ढकने के बाद किनारों को जमीन में मिट्टी से दबा देते हैं। इस प्रकार की संरचनाओं के निर्माण में वाक–इन–टनल की तुलना में कम खर्च आता है। इस प्रकार का संरचनाओं का निर्माण जमीन से 15 से.मी. की ऊँचाई पर उठी हुई क्यारियों में बीज की बुआई के बाद ही किया जाता है।

क्यारियों की सतह का नेट से ढककर पौध उत्पादन

इस विधि में सबसे कम खर्च आता है। इसमें नर्सरी की क्यारी के आकार का नेट क्यारी की लम्बाई के दोनों सिरों पर उचित दूरी पर लकड़ी की खूटियों के सहारे स्थापित कर दिया जाता है तथा नेट के किनारों को मिट्टी में दबा दिया जाता है। इससे पौध पर किसी प्रकार के कीटों खासकर सफेद मक्खी का आक्रमण नहीं हो पाता है। जिससे विषाणु रोगों से पौध की रोकथाम हो जाती है। सर्दी के दिनों में इस प्रकार के नेट से पौध को पाले से कुछ हद तक बचाया जा सकता है। क्योंकि नेट के अंदर का तापमान बाहर के तापमान से अधिक रहता है जिससे पौध की वृद्धि अच्छी व पौध खुले वातावरण के मुकाबले जल्दी तैयार हो जाती है।

इस प्रकार कीट अवरोधी नाइलोन नेट के उपयोग से विभिन्न प्रकार की कम लागत की संरचना बनाकर या सीधे नेट को क्यारियों के ऊपर ढककर पूर्णतया विषाणु रोग रहित सब्जी पौध का उत्पादन संभव है। खासकर नेट का प्रयोग वर्षाकालीन मौसम व उसके बाद अवश्य करना चाहिए।

- अगर हिन्दुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र भाषा बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, राष्ट्रभाषा हिन्दी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिन्दी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते, हमारा मतलब संबंधों के लिए हम हिन्दी सीखें।
- विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा का हिमायत करने वाले देश के दुश्मन हैं।
- अखिल भारत के परस्पर व्यवहार के लिये ऐसी भाषा की आवश्यकता है जिसे जनता का अधिकतम भाग पहले से ही जानता समझता है।

महात्मा गाँधी

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मिर्च की उन्नत खेती

मेघा विभूते, अजीत सिंह, मोनिका जायसवाल, भूपेन्द्र सिंह
कृषि विज्ञान केंद्र, बुरहानपुर

मिर्च मसाले वाली फसलों मे एक प्रमुख फसल है। भारत में इसकी खेती मुख्यतः आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसुर एवं मद्रास आदि राज्यों में होती है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश में भी इसकी खेती काफी मात्रा में की जाती है। यह मध्यप्रदेश के निमाड क्षेत्र में अधिक मात्रा में उगाई जाती है। भारत में मिर्च की खेती 7.38 हेक्टेयर में होती है जिससे 18.52 लाख टन हरी मिर्च का उत्पादन प्रतिवर्ष किया जाता है। प्रदेश में इसकी खेती लगभग 50 हजार हेक्टर क्षेत्रफल में की जाती है एवं उत्पादन 23 हजार मेट्रिक टन होती है। मिर्च मे विटामिन ए एवं सी प्रचुर मात्रा मे पाए जाते हैं। मिर्च का तीखपन केप्सेसिन नामक एल्केलाइडस की मात्रा पर निर्भर करता

है। कृषक मिर्च की उन्नत पद्धति अपना कर उत्पादन मे वृद्धि कर सकते हैं।

जलवायु

इसकी खेती आर्द्र जलवायु में उत्तम तरीके से की जा सकती है। 130–150 दिन की पाला मुक्त अवधि एवं 15–35^0 सें. का तापमान इसके लिए अनुकूल होता है।

भूमि

मिर्च की खेती किसी भी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है लेकिन दोमट मिट्टी सब से उपयुक्त होती है। पानी के निकास की व्यवस्था उत्तम होनी चाहिए एवं मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए। मृदा का पी.एच. मान 6.5 से 7 के बीच हो तो सर्वोत्तम है। क्षारीय भूमि को छोड़कर हर तरह की भूमि में उगाई जा सकता है।

पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने कें बाद 2–3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करके मिट्टी को भुरभुरी कर लेना चाहिए। जुताई से पहले देशी खाद एक समान मिला दी जाती है। जुताई के बाद खेत में पाटा लगाएँ व सिंचित फसल के लिए सुविधानुसार उपयुक्त आकार की क्यारियाँ बना लें।

बुआई :– नर्सरी में बीज अक्टूबर–नवंबर

प्रतिरोपण–फरवरी–मार्च

बीज की मात्रा :– 1.25 – 1.50

उन्नत किस्में :–

किस्में	वर्गीकरण	उपज/हेक्टेयर
पूसा सदाबहार	पौधे छोटे एवं फलियाँ लम्बी होती हैं।	औसत उपज 14–15 टन/ हेक्टेयर
पूसा ज्वाला	यह 85 दिन में तुड़ाई के लिए तैयार होने वाली किस्म है। पौधे एक मीटर ऊँचे और मिर्च 7.5 से.मी. लंबाई वाली होती हैं।	औसत उपज 12–15 टन/हेक्टेयर
पंजाब गुच्छेदार	इसकी फलियाँ छोटी (5 से.मी.), सूरजमुखी एवं 5–15 फलियों के गुच्छे में फलती हैं।	औसत उपज 15 टन/हेक्टेयर
पंजाब सुख	यह लंबी फली वाली किस्म है (7 से.मी.)। यह अगेती किस्म है	औसत उपज 20 टन/हेक्टेयर
संकर किस्म सी.एच. 1	पौधे 1 मी. ऊँचे और मिर्च करीब 7 से.मी. लम्बी होती हैं। यह फफूंद एवं विषाणु की बीमारियों से मुक्त है।	उपज 25 टन/ हेक्टेयर
संकर किस्म सी.एच. 3	यह एक अगेती संकर किस्म है। फलियाँ 8 से.मी. होती है।	औसत उपज 27–28 टन/हेक्टेयर

किलोग्राम बीज प्रति हेक्टर

पौधशाला प्रबंधन :– इस विधि में सर्वप्रथम पौधशाला की मिट्टी की अच्छी तरह से निराई गुडाई कर गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद मिलाते है मिर्च की पौध ऊँची क्यारी में लगाई जाती है। क्यारियों की चौड़ाई 1.25 मी., ऊँचाई 15 से.मी. एवं लम्बाई सुविधानुसार रखी जाती है । उसके बाद फार्मेल्डिहाइड का जलीय घोल (20 मि.ली./लीटर पानी) से क्यारियों की सिंचाई करते हैं इसके बाद क्यारियों को 72 घंटे तक पालीथीन से ढ़क देते हैं। इस विधि का प्रयोग प्रायः मई – जून माह मे जब तापक्रम 40–45 डि. से.ग्रे. रहता है किया जाता है इसके कम से कम 5 दिन के बाद बीज की बुआई की जाती है। बीजों को सीधी कतारों में बोया जाता है। क्यारियों मे बीज की बुवाई कतारों मे करना चाहिये। कतारों के बीच की दूरी 5 से.मी. रखी जाती है। बीज बोने के 8–10 दिनो बाद बीज अंकुरित होने लगते है। 40–45 दिन में पौध प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाता है।

उर्वरक :– अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से रोपण से पूर्व खेत में डालना चाहिए। मिर्च के खेत में 140 कि.ग्रा. यूरिया, 200 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट एवं 30 कि. ग्रा. पोटाश डालना चाहिए। इनमें से फॉस्फेट एवं पोटाश की पूरी मात्रा एवं यूरिया की आधी मात्रा रोपण से पूर्व खेत तैयार करते समय एवं यूरिया की शेष मात्रा प्रथम तुड़ाई के तुरंत बाद डालना चाहिए। संकर प्रजाति के खेती के दौरान 165 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हेक्टेयर डाली जानी चाहिए।

रोपण विधि :– बीज बोने के 5–6 सप्ताह बाद जब पौध 15–20 से.मी. ऊंची बढ जाये तो वह रोपाई के लिए उपयुक्त हो जाती है। पौध की रोपाई तैयार किए गए खेत की क्यारियों में करते हैं। रोपाई का सर्वोत्तम समय सायंकाल होता है, जब धूप कम हो जाए। पंक्तियों के बीच की दूरी 75 से.मी. व पौधों के बीच की दूरी 60 से.मी. रखी जानी चाहिए ।

की आवश्यकता होती है अगर मल्च प्रयोग किया जाए तो 9–10 सिंचाई भी पर्याप्त होती है।

निराई / गुड़ाई

45–50 दिन तक खेत को खरपतवार से मुक्त रखें। प्रथम गुड़ाई पौधा रोपाई के 25–39 दिन के पश्चात करनी चाहिए, दूसरी गुड़ाई फुल आने की अवधि में करना चाहिए। खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टाम्प–30 प्रतिशत दवा का 1.30 से 1.75 लीटर प्रति एकड़ की दर से रोपाई के तीन– चार दिन बाद स्प्रे करना अथवा रोपाई के पूर्व तैयार खेत में टोक ई–25 दवा का 1.5 लीटर प्रति एकड़ की दर से स्प्रे करना लाभप्रद पाया गया है।

फूलों एवं फलों का गिरना व बचाव

मिर्च पौधों की आरंभिक अवस्था अर्थात अगस्त–सितम्बर के महीने में पौधों से फुल व फल सड़कर गिरने की समस्या रहती है इससे पैदावार कम हो जाती है। इस समस्या को रोकने के लिए पौधों पर

क्यारियों का लेआउट

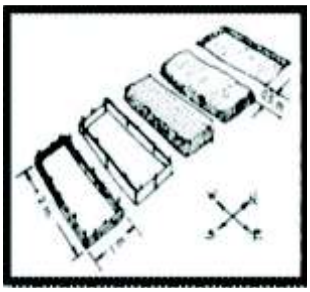

क्यारी तैयार करना

क्यारियाँ

कृत्रिम क्यारियाँ

पौधों को पौध गलन रोग से बचाएं इसके लिये जिनेब नामक फफुंद नाशक दवा के घोल से रोपणी की सिचांई करें। 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से उपयोग करें तथा 10–12 दिनों के अन्तराल से रोपणी की सिंचाई करें।

सिंचाई :– प्रतिरोपण के तुरंत बाद पहली सिंचाई दी जाती है। गर्मियों में 7–10 दिनों एवं सर्दियों में 12–15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई दी जाती है। मृदा में अधिक नमी होने से जड़ों में गलन हो सकता है। मिर्च में कुल 15–16 सिंचाई

फूल आने की अवस्था में एन.ए.ए. वृद्धि कारक का 10 से 40 पी.पी.एम. का घोल (प्लानोपिक्स) छिड़काव करने से नियंत्रण हुआ है। प्रथम छिड़काव के 20 से 25 दिन बाद दूसरा छिड़काव करना चाहिए।

उपज :– मिर्च हरी अवस्था में तोड़ी जाए

या पूरी तरह से पक कर लाल हो जाने पर इसमें क्रमिक तौर पर 7–10 बार तोड़ना पड़ता है। सूखी मिर्च की उपज 10–20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त होती है तथा हरी मिर्च की उपज 60–100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है।

प्रमुख बीमारियाँ एवं कीट व उनकी रोकथाम

आर्द्र गलन

रोग के लक्षण यह सभी सब्जी फसलों की नर्सरी में आने वाली बीमारी है। नवजात पौधे जमीन की सतह से ही गलकर गिरने लगते हैं। इसकी रोक के लिए बीज को 0.2 प्रतिशत कैप्टान से शोधित करना चाहिए।

रोकथाम

- मिर्च की नर्सरी उठी हुयी क्यारी पद्धति से तैयार करें जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो।
- बीजोचार कार्बेन्डाजिम 1 ग्रा. दवा से 1 किलो बीज की करें।
- कैप्टान (0.2 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (0.02 प्रतिशत) के घोल से नर्सरी को सिंचित करना चाहिए।

एन्थ्रेक्नोज

रोग के लक्षण *कोलेटोट्राइकम कैप्सीकी* नामक फफुँद से होने वाला अतिव्यापक एवं महत्वपूर्ण रोग है। विकसित पौधों पर शाखाओं का कोमल शीर्ष भाग ऊपर से नीचे की ओर सूखना प्रारम्भ होता है।

रोकथाम

- फसल चक्र अपनायें तथा स्वस्थ्य व प्रमाणित बीज बोयें बुवाई पूर्व बिजोपचार अवश्य करें।
- रोग के प्रारंभिक अवस्था में ही लाइटक्स 50, डाइथेन 45, के 0.25 प्रतिशत धोल का 7 दिन अंतराल पर आवश्यकता अनुसार छिडकाव करें।

लीफ कर्ल:

रोग के लक्षण : पत्तियाँ मुड़कर कड़ी हो जाती है। पौधों का विकास रूक जाता

है, तथा वे झाड़ीनुमा दिखते हैं। यह बीमारी सफेद मक्खी (व्हाइट फ्लाई) से फैलती है।

रोकथामः पौधशाला में पौध तैयार करने के पूर्व फिपरोनिल 0.3 प्रतिशत (10–15 ग्राम प्रति वर्ग मी) अच्छी प्रकार मिला दें। रोगार 1.5 मिली दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

थ्रिप्स और माइटस : ये कीट पौधो का रस चुसते हैं तथा विषाणु रोग फैलाने में सहायक होते हैं।

रोकथाम : बुवाई के पूर्व थायोमिथम्जाम 5 ग्राम प्रति किलो बीज दर से बीजोचार करें।

- नीम बीज अर्क का 4 प्रतिशत का छिडकाव करें।
- रासायनिक नियंत्रण के अंतर्गत फिप्रोनिल (5 प्रतिशत एस.सी.) 1.5 मिली. के 1 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- एसिटामिप्रिड 0.2 ग्रा. या इमिडक्लोप्रिड 0.3 ग्रा. या थायोमिथम्जाम 0.3 ग्रा. को 1 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

ग्लोबल वार्मिंग– एक विश्वव्यापी समस्या

आर. के. सिंह, एच. एम. मीना एवं एस. पूनीयाँ
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

ग्लोबल वार्मिंग आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या के रूप में विद्यमान है। ग्लोबल वार्मिंग धरती के वातावरण के तापमान में हो रही लगातार बढ़ोत्तरी है। इससे न केवल मनुष्य, बल्कि पृथ्वी पर अस्तित्व में रहनेवाले पशु–पक्षी और वनस्पति जगत भी मुश्किल में हैं। कृषि क्षेत्र में भी ग्लोबल वार्मिंग का व्यापक असर दिख रहा है। इस समस्या से निपटने के लिए हरसंभव प्रयास किए जा रहे हैं, किन्तु समस्या का निदान नहीं हो पा रहा है।

ग्लोबल वार्मिंग

हमारी धरती प्राकृतिक तौर पर सूर्य की किरणों से ऊष्मा प्राप्त करती है। ये किरणें वायुमंडल से गुजरती हुईं धरती की सतह से टकराती हैं और फिर वहीं से परावर्तित होकर लौट जाती हैं। धरती का वायुमंडल कई गैसों से मिलकर बना हैं जिनमें कुछ ग्रीनहाउस गैसें भी शामिल हैं। इनमें से अधिकांश धरती के ऊपर एक प्रकार से एक प्राकृतिक आवरण बना लेती हैं। यह आवरण लौटती किरणों के एक हिस्से को रोक लेता है और इस प्रकार धरती के वातावरण को गर्म बनाए रखता है। ग्रीनहाउस गैसों में बढ़ोतरी होने पर यह आवरण और भी सघन होता जाता है। ऐसे में यह आवरण सूर्य की अधिक किरणों को रोकने लगता है जिससे धरती के वातावरण के तापमान में लगातार बढ़ोतरी होती जा रही हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण

ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ और बड़ी संख्या में हो रहा जंगलों का विनाश ग्लोबल वार्मिंग की प्रमुख वजह है। साथ ही, ग्लोबल वार्मिंग के लिए जिम्मेदार मनुष्य की गतिविधियां भी हैं। ग्रीनहाउस गैस वो होती है जो पृथ्वी के वातावरण में प्रवेश तो कर जाती हैं, लेकिन फिर वो यहाँ से वापस आकाशीय वायुमंडल में नहीं लौट पाती हैं। फलस्वरूप पृथ्वी के वातावरण के तापमान में बढ़ोत्तरी होती रहती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यदि इन गैसों का उत्सर्जन इसी प्रकार चलता रहा तो 21वीं शताब्दी में पृथ्वी का तापमान 3 से 8 डिग्री सेंटीग्रेड तक बढ़ सकता है। ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रोजन आक्साइड जैसी गैसें होती हैं। इनमें भी सबसे अधिक उत्सर्जन कार्बन डाइऑक्साइड गैस का होता है। बिजली सन्यत्रों को बिजली पैदा करने के लिए भारी मात्रा में जीवाश्म ईंधन का उपयोग करना पड़ता है, जिससे बड़ी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड गैस पैदा होती है। गाड्यिों में लगे गैसोलीन इंजिन भी कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन का एक प्रमुख कारण है। इसके अलावा घरों में लगे बिजली और अन्य उपकरण से भी इस गैस का उत्सर्जन होता है। इसकी एक अन्य वजह क्लोरो फ़्लोरो कार्बन (सीएफ़सी) है जो रेफ्रीजरेटर्स, अग्निशामक यंत्रों इत्यादि में इस्तेमाल की जाती है। यह धरती के ऊपर बने एक प्राकृतिक आवरण ओजोन परत को नष्ट करने का काम करती है। ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली घातक पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इस ओजोन परत में एक बड़ा छिद्र हो चुका है जिससे पराबैंगनी किरणें सीधे धरती पर पहुंच रही हैं और इस तरह से उसे लगातार गर्म बना रही हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव

वातावरण के तापमान में वृद्धिः आईपीसीसी 2014 के अनुसार पिछले 130 वर्षों (1880–2012) में, वैश्विक औसतन संयुक्त भूमि और समुद्र की सतह के तापमान में 0.85 डिग्री सेंटीग्रेड (0.65–1.06 डिग्री सेंटीग्रेड) की वृद्धि हुई है। अगर हम प्रत्येक दस साल के मौसम का अध्ययन करें तो पाएंगे कि इसमें लगातार कुछ–न–कुछ बघेतरी हो ही रही है। मौसम वैज्ञानिकों की तरफ से आशंका यही जताई जा रही है कि आने वाले समय में ग्लोबल वार्मिंग में और बढ़ोतरी होगी।

समुद्र सतह में बढ़ोत्तरीः ग्लोबल वार्मिंग से यदि धरती का तापमान बढ़ेगा तो ग्लैशियरों पर जमा बर्फ पिघलने लगेंगी। ग्लैशियरों की बर्फ के पिघलने से समुद्रों में पानी की मात्रा बढ़ जाएगी जिससे साल–दर–साल उनकी सतह में भी बढ़ोत्तरी होती जाएगी। भारत के समुद्री किनारे अधिक प्रभावित होंगे, जिसका विपरीत प्रभाव गोवा, केरल आदि में पड़ेगा। मुंबई और कोलकाता जैसे महानगर समुद्री सतह के ऊपर उठने से परेशान होंगे। ग्लैशियरों के तेजी से पिघलने के कारण देश के जलतंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और खेती के साथ पीने के पानी का संकट उत्पन्न होगा।

मानव स्वास्थ्य पर असरः माना जा रहा है की इससे उष्ण कटिबंधीय रेगिस्तानों में नमी बढ़ेगी और मैदानी भागों में बेतहाशा गर्मी पड़ेगी। बढ़ता तापक्रम मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव डालेगा।

पशु–पक्षियों व वनस्पतियों पर असरः ग्लोबल वार्मिंग का पशु–पक्षियों और वनस्पतियों पर भी गहरा असर पड़ेगा। माना जा रहा है कि गर्मी बढ़ने के साथ ही 2050 तक मछ्ली के उत्पादन में बड़ी गिरावट आएगी, जिससे मछलीपालकों के साथ–साथ सरकारी अर्थव्यवस्था पर भी असर पड़ेगा। एक ग्लोबल विश्लेषण के अनुसार यह सामने आया है कि सूखा, बाढ़, उष्णकटिबंधीय चक्रवात, भारी वर्षा की घटनाएँ, और गर्मी तरंगें नकारात्मक रूप से कृषि उत्पादन को प्रभावित करेगा और साथ ही तापमान में बढ़ोतरी, भारत में फसलों के उत्पादन को 2080–2100 ई. तक 10–40% तक प्रभावित करेगी।

ग्लोबल वार्मिंग के प्रति दुनियाभर में चिंता बड़ी है और समय–समय पर इसको लेकर दुनिया भर के देशों के बीच बैठकें हो रही हैं। लेकिन यह समझने की बात है कि इसके दुष्प्रभाव को कम करने के लिए जन–जागरूकता की जरूरत है। यह जिम्मेदारी केवल सरकार की नहीं है। इसके लिए हमें कई प्रयास करने होंगे, जैसेः

- सभी देशों को एक निश्चित समयसीमा तक हानिकारक गैसों के उत्सर्जन को कम करने कि दिशा में काम करना होगा।
- प्रत्येक व्यक्ति को पेट्रोल, डीजल और बिजली का उपयोग कम करने कि दिशा में सतत प्रयास करने की जरूरत है।
- जंगलों की कटाई को रोकना होगा और ज्यादा से ज्यादा पेड़–पौधे लगाने होंगे। पेड़–पौधों की प्रदूषण कम करने की अहमियत को समझना होगा।

प्रकृति ने हमें बहुत कुछ दिया है। आजतक इसके संसाधनों का मनुष्य जाति ने दोहन ही किया है। यह हम लोगों कि जिम्मेदारी है कि हम भी प्रकृति को बदले में कुछ दें और उसे इतना नाराज़ न कर दें कि हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ जाए। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, हम लोगों को चेतने की जरूरत है।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

उच्च गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन तकनीकी

विनय कुमार सिंह[1], चंचिला कुमारी[2], रुपेश रंजन[2], राज कुमार सिंह[3] एवं राकेश कुमार सिंह[1]
[1]भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, कोडरमा
[3]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग

कृषि में बीज गुणवत्ता का विशिष्ट महत्व है। क्योंकि हमारे यहाँ फसलों की औसत उत्पादकता बहुत ही कम है। जिसका प्रमुख कारण प्रदेश के कृषकों द्वारा कम गुणवत्ता वाले बीजों का लगातार प्रयोग है। जिससे फसलों में दी जाने वाली अन्य लागतों का भी हमें पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता है। फसलों में लगने वाले अन्य लागत का अधिकतम लाभ अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों का प्रयोग करके ही लिया जा सकता है। उच्च गुणवत्ता के प्रमाणित बीज के प्रयोग से ही लगभग 20 प्रतिशत उत्पादकता/ उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। अतः किसान भाईयों को अपनी फसलों के बीज जैसे– धान, गेहूँ, समस्त दलहनी फसलों एवं राई–सरसों को छोडकर समस्त तिलहनी फसलों का बीज प्रत्येक चार वर्ष में बदल कर बुवाई करें। इसी प्रकार ज्वार, बाजरा, मक्का, अरण्डी एवं राई/सरसों की फसलों में प्रत्येक तीन वर्ष पर बीज बदल कर बुवाई की जानी चाहिए।

उस बीज को उत्तम कोटि का माना जाता है जिसमें आनुवांशिक शुद्धता शत –प्रतिशत हो अन्य फसल एवं खरपतवार के बीजों से रहित हो, रोग व कीट के प्रभाव से मुक्त हो, जिसमें जीवन शक्ति और ओज भरपूर हो तथा उसकी अंकुरण क्षमता उच्च कोटि की हो, जिसमें खेत में जमाव और अन्ततः उपज अच्छी हो। अतः किसान भाईयों से अनुरोध है कि अपने विकास खण्ड से बीज प्राप्त कर अपने पुराने बीजों को बदलते हुए प्रमाणित बीजों से बुवाई करें, जिससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि हो। शोधित बीज बच जाने पर पुनः प्रयोग करें। बीज प्रमाणीकरण संस्था से पुनः जमाव परीक्षण कराकर मानक के अनुरुप होने पर पुनः बोया जा सकता है।

देश एवं प्रदेश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या की जीविका कृषि पर आधारित है। जिसके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर में वांछित सुधार केवल खेती के सुदृढ़ीकरण से ही संभव है। इन उन्नतिशील प्रजातियों के उच्च गुणवत्तायुक्त बीजों का टिकाऊ कृषि उत्पादन में उच्च स्थान है। कृषकों को मात्र नवीनतम प्रजातियों के प्रमाणित बीज ही उपलब्ध करा देने से उत्पादन में 15–20 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है।

बीज

पौधे का वह भाग जिसमें भ्रूण अवस्थित है, जिसकी अंकुरण क्षमता, आनुवंशिक एवं भौतिक शुद्धता तथा नमी आदि मानकों के अनुरुप होने के साथ ही बीज जनित रोगों से मुक्त है।

बीज के प्रकार

केन्द्रीय प्रजाति विमोचन समिति (सी. वी. आर. सी.) के विमोचन के उपरान्त ही बीज उत्पादित किया जा सकता है। अधिसूचित फसलों/प्रजातियों की निम्न श्रेणियाँ होती है।

1) प्रजनक बीज

यह बीज नाभकीय (न्यूक्लियस) बीज से बीज प्रजनक अथवा सम्बन्धित पादक प्रजनक की देखरेख में उत्पादित किया जाता है जिसकी आनुवंशिक एवं उच्च गुणवत्ता का पूरा ध्यान रखा जाता है। यह आधारीय बीज के उत्पादन का स्रोत है। इस बीज के थैलों पर पीले (गोल्डन) रंग का लेबल लगता है जिसे सम्बन्धित अभिजनक द्वारा जारी किया जाता है।

2) आधारीय बीज

बीज का उत्पादन प्रजनक बीज से किया जाता है। आवश्यकतानुसार आधारीय प्रथम से आधारीय द्वितीय बीज का उत्पादन किया जाता है। इसकी उत्पादन, संसाधन, पैकिंग, रसायन उपचार एवं लेबलिंग आदि प्रक्रिया बीज प्रमाणीकरण संस्था की देखरेख में मानकों के अनुरूप होती है। इसके थैलों में लगने वाले टैग का रंग सफेद होता है।

3) प्रमाणित बीज

कृषकों को फसल उत्पादन हेतु बेचे जाने वाला बीज प्रमाणित बीज है जिसका उत्पादन आधारीय बीज से बीज प्रमाणीकरण संस्था की देख रेख में मानकों के अनुरूप किया जाता है। प्रमाणित बीज

के थैलों का रंग नीला होता है।

4) सत्यापित बीज

इसका उत्पादन, उत्पादन संस्था द्वारा आधारीय/प्रमाणित बीज से मानकों के अनुरूप किया जाता है। उत्पादन संस्था का टैग लगा होता है या थैले पर उत्पादक संस्था द्वारा नियमानुसार जानकारी उपलब्ध करानी होती हैं।

बीज उत्पादन तकनीकी प्रक्रिया

इस विधि में एक योजना बनाकर बीज मानकों के अनुरूप वैज्ञानिक तरीकों से उत्पादित किया जाता है। ताकि उत्पादन, संसाधन, भण्डारण एवं वितरण का कार्य प्रभावी ढंग से निष्पादित एवं बीज की गुणवत्ता बीज के बोने तक बनी रहे। इस प्रक्रिया की निम्न विशेषतायें हैं :

1. आनुवांशिक एवं भौतिक रूप से शुद्ध आधार बीज का उपयोग किया जाता है।
2. उन्नत कृषि सस्य विधियों एवं फसल सुरक्षा को अपनाया जाता हैं।
3. आनुवंशिक या भौतिक संदुषण के स्रोतों से निर्दिष्ट प्रकक्करण दूरी का ध्यान रखा जाता है।
4. अनुपयुक्त पौधों की बीज फसल से समय पर निकाला जाता हैं।
5. खरपतवार और अन्य फसलों के पौधों को भी समय से निष्कासित किया जाता है ताकि इन बीजों का फसल बीजों में मिश्रण न हो पायें।
6. रोगग्रस्त पौधों को भी समय से रोग फैलाने के पूर्व निकाल दिया जाता हैं।
7. बीज फसल की कटाई, गहाई, मड़ाई, सफाई आदि में विशेष सवधानी रखी जाती है ताकि यांत्रिक क्षति एवं मिश्रण न हो।
8. भंडारण के समय कीट, रोग संक्रमण आदि की रोकथाम हेतु विशेष ध्यान दिया जाता हैं।
9. आनुवंशिक एवं भौतिक शुद्धता की जाँच के लिये परीक्षण किये जाते हैं इसके अतिरिक्त अंकुरण परीक्षण, आद्रता परीक्षण आदि भी किये जाते हैं।
10. बीजों का संसाधन विशेष सर्तकता के साथ किया जाता है ताकि बीजों की गुणवत्ता मानकों के अनुरूप बनी रहें।
11. संसाधित बीज को उपयुक्त थैलों में भरकर प्रमाण पत्र संलग्न कर सील किया जाता है।
12. न्यून तापमान एवं आद्रता पर बीजों का भण्डारण किया जाता है जिससे रोग एवं कीट से बीज सुरक्षित रहे एवं अंकुरण क्षमता प्रभावित न हो।

बीज गुणवत्ता

बीजों की गुणवत्ता को वाँछित स्तर पर सुनिश्चित करने के लिये बीज प्रमाणीकरण का प्राविधान है। जनक बीजों का प्रमाणीकरण गठित समिति द्वारा किया जाता है जबकि आधारीय एवं प्रमाणित बीजों का प्रमाणीकरण का उत्तरदायित्व प्रदेश की प्रमाणीकरण संस्था का है। प्रमाणीकरण की प्रक्रिया निम्न चरण में पूर्ण की जाती है।

1. बीज का सत्यापन

आधारीय एवं प्रमाणित बीजों के उत्पादन हेतु क्रमशः प्रजनक एवं आधारीय बीजों का प्रयोग आवश्यक है। उसी श्रेणी के बीज से उसी श्रेणी के बीज उत्पादन की अनुमति विशेष परिस्थितियों में दी जाती है। बीज प्रमाणीकरण संस्था निरीक्षण के समय बिल, भण्डार रसीद तथा टैग से बीज स्रोत का सत्यापन करती है।

2. फसल निरीक्षण

पुष्पावस्था एवं फसल पकने के समय दो निरीक्षण आवश्यक है। निरीक्षण के समय बीज फसल में आवाँछित पौधे नहीं होने चाहिए। फसल भी खरपतवार रहित होनी चाहिए। निरीक्षण के समय खेत में जगह–जगह पर काउन्ट लिये जाते है। काउन्ट की संख्या खेत क्षेत्रफल तथा एक काउन्ट पौधों की संख्या पर निर्भर करती हैं। यदि काउन्ट में अवांछित पौधों की संख्या निर्धारित मानक से अधिक है तो फसल निरस्त कर दी जाती है।

3. प्रयोगशाला परीक्षण

विधायन के उपरान्त प्रत्येक लाट से न्यायदर्श लेकर प्रयोगशाला में परीक्षण हेतु भेज दिया जाता है। जनक बीजों का परीक्षण विश्वविद्यालय की तथा आधारीय व प्रमाणित बीजों का परीक्षण बीज प्रमाणीकरण संस्था की प्रयोगशाला में किया जाता है। यदि कोई न्यायदर्श बीज मानक के अनुरूप नहीं पाया जाता है तो उसको निरस्त कर दिया जाता है।

4. टैगिंग

विधायन के उपरान्त बीजों को ऐसे आकार के थैलों में भरा जाता है कि उसमें एक एकड़ बुवाई हेतु बीज आ जाय। जनक बीज पर सुनहरी पीले रंग का टैग सम्बन्धित प्रजनक तथा आधारीय व प्रमाणित बीजों पर क्रमशः सफेद व नीले रंग के बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं।

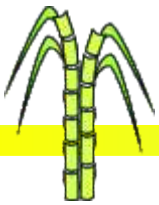

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

मूंगफली की वैज्ञानिक खेती

विनोद कुमार, देवेश चौधरी एवं विनय कुमार सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मूंगफली खरीफ की मुख्य तिलहनी फसल है। यह वायु और वर्षा द्वारा भूमि को कटने से बचाती है। मूंगफली के दाने में 22–28 प्रतिशत प्रोटीन, 10–12 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट व 48–50 प्रतिशत वशा पाई जाती है। 100 से.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मूगफली की पैदावार अच्छी होती है। निम्न सघन पद्धतियाँ अपनाकर मूंगफली की उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है।

प्रजातिः टा–64, टा–28, चन्द्रा, एम–13, चित्रा, कौशल, अम्बर।

बीज दर, बुआई का समय एवं दूरी पर बुआई : प्रायः कृषक मूंगफली के बीज का प्रयोग कम मात्रा में करते है जिसके कारण खेत में पौधों की संख्या कम होती है और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः यह आवश्यक है कि मूंगफली की विभिन्न प्रजातियों के लिए निर्धारित मात्रा में ही बीज का प्रयोग करें तथा बीज की बुआई जून के द्वितीय पक्ष से जुलाई के प्रथम पक्ष तक अवश्य कर दें। शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की बुआई बड निक्रोसिस बीमारी से बचने के लिए जुलाई के द्वितीय पखवारे में करना उचित होगा।

संतुलित उर्वरक का प्रयोगः मूंगफली की अच्छी पैदावार के लेने के लिए उर्वरकों का प्रयोग बहुत आवश्यक है। यह उचित होगा कि उर्वरकों का प्रयोग भूमि परीक्षणों की संस्तुतियों के आधार पर कया जाय। यद परीक्षण नहीं कराया गया है तो नत्रजन 20 किलोग्राम, फास्फोरस 30 किलोग्राम, पोटाश 45 किलोग्राम, जिप्सम 200 किलोग्राम एवं बोरेक्स 4 किलोग्राम प्रति की दर से प्रयोग किया जाय। फास्फेट का प्रयोग सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में किया जाय तो अच्छा रहता है यदि फास्फोरस की निर्धारित मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट के रूप में प्रयोग की जाय तो प्रथक से जिप्सम के प्रयोग की आवश्यकता नही रहती है। नत्रजन, फास्फोरस और पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा तथा जिप्सम की आधी मात्रा कूड़ों में नाई अथवा चोगें द्वारा बुवाई के समय बीज के करीब 2–3 सेमी. गहरा डालना चाहिए। जिप्सम की शेष आधी मात्रा तथा बोरेक्स की सम्पूर्ण मात्रा फसल की 3 सप्ताह की अवस्था पर टापड्रेसिंग के रूप में बिखेर कर प्रयोग करें तथा हल्की गुड़ाई करके 3–4 सेमी. गहराई तक मिटटी में भली प्रकार मिला दें।

बीज उपचार

बोने से पूर्व थीरम 2.0 ग्राम या कार्बेन्डाजिम (50 प्रतिशत) दो ग्राम प्रति किलो बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए अथवा थायोफिनेट मिथाइल 1.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से शोधित करना चाहिए। इस शोधन के 5–6 घन्टे बाद बोने से पहले बीज को मूंगफली के विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। एक पैकेट कल्चर 10 किलोग्राम बीज के लिए प्रर्याप्त होता है। कल्चर को बीज में मिलाने के लिए आधा लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़घोल लें। फिर इस घोल में 250 ग्राम राइजोबियम कल्चर का पूरा पैकेट मिलायें, इस मिश्रण को 10 किलोग्राम बीज के ऊपर छिड़क कर हल्के हाथ से मिलायें, जिसमें बीज के ऊपर एक हल्की पर्त बन जाय। इस बीज को छायें में 2–3 घन्टे सुखाकर बुवाई प्रातः 10 बजे तक या शाम को 4 बजे के बाद करें। तेज धूप में कल्चर के जीवाणु के मरने की आशंका बनी रहती है। ऐसे खेतों में जहाँ मूंगफली पहली बार या काफी समय बाद बोई जा रही हो, कल्चर को प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

प्रजाति	विशेषता	बीज दर	बुवाई की दूरी (सेंमी.)	
		किग्रा./हेक्टेयर	पंक्ति से पंक्ति	पौधे से पौधे
टा–28	फैलने वाली	50–55	45	20
अम्बर, चन्द्रा, एम–13	फैलने वाली	70–75	45	20
प्रकाश, टी–64, कौशल	गुच्छेदार	90–95	30	15
चित्रा	अर्धप्रसारित	65–70	40	15

सिंचाई

यदि वर्षा न हो और सिंचाई की सुविधा हो तो आवश्यकतानुसार 2–3 सिंचाई की जानी चाहिए। फूल आने, खून्ही (पेगिंग) बनने व फली के विकास के समय नमी कम हो तो सिंचाई अवश्य की जानी चाहिए। भारी तथा लगातार वर्षा के दिनों में पानी इकट्ठा नहीं होने देना चाहिए।

खरपतवार प्रबन्ध

बुवाई के 15 से 20 दिन के बाद पहली निराई–गुड़ाई एवं बुवाई के 30 से 35 दन के बाद दूसरी निराई गुड़ाई अवश्य कर दी जाय। खूंटियाँ (पेगिंग) बनते समय निराई–गुड़ाई न की जाय।

खरपतवार के रासायनिक नियंत्रण हेतु पेन्डीमेथालीन 30 ई.सी. की 3.3 ली. मात्रा 700–800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के बाद एवं जमाव के पहले अर्थात बुवाई के 3–4 दन बाद तक छिड़काव

कर देना चाहिए। इस छिड़काव से मौसमी घास एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का जमाव नहीं होता है।

मिट्टी चढ़ाना

मूंगफली चाहे गुच्छेवाली हो या फैलने वाली हो दोनो किस्मों में मिट्टी चढ़ाने का कार्य किया जाता है। अधपके या बन्द फूल जमीन में घुमते हैं और फली का निर्माण करते है। इस प्रकिया को पैगिंग डाउन कहते हैं। इस दशा में भूमि नम हो या पोली हो अन्यथा इस क्रिया में बाधा पड़ेगी और फली का विकास कम होकर पैदावार घट जायेगी। मिट्टी चढ़ाने का कार्य बुवाई के 50–60 दिन पर खुरपी से कर देना चाहिए।

मूंगफली की सफेद गिडार

पहचानः इसकी गिडारें पौधों की जड़ें खाकर पूरे पौधे को सुखा देती हैं। गिडारें पीलापन लिए हुए सफेद रंग की होती हैं, जिनका सिर भूरा कत्थई या लाल रंग का होता है, ये छूने पर गेन्डुल के समान मुड़कर गोल हो जाती हैं। इसका प्रौढ़ मूंगफली की फसल को हानि नहीं करता। यह प्रथम वर्षा के बाद आसपास के पेड़ों पर आकर मैथुन क्रिया करता है तथा पुनः 3–4 दिन बार खेतों में जाकर अण्डे देना है। यदि प्रौढ़ को पेड़ों पर ही मार दिया जाय तो इनकी संख्या की वृद्वि में काफी कमी हो जायेंगी।

उपचार

1. मानसून के प्रारम्भ पर 2–3 दिन के अंदर पोषक पेड़ों जैसे नीम, गूलर आदि पर प्रौढ़ कीट को नष्ट करने के लिए कार्बराइल 0.2 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफास 0.05 प्रतिशत या फेन्थोएट 0.03 प्रतिशत या क्लोरापाइरीफास 0.03 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
2. बुवाई के 3–4 घंटे पूर्व क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. या क्यूनालफास 25 ई.सी 25 मिली. प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीज को उपचारित करके बुवाई करें।
3. खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरपायरीफास या क्यूनालफास रसायन की 4 लीटर मात्रा प्रति हे. की दर से प्रयोग करें।

दीमक

पहचानः ये सूखे की स्थिति में जड़ों तथा फलियों को काटती हैं। जड़ कटने से पौधे सूख जाते हैं। फली के अन्दर गिरी के स्थान पर मिट्टी भर देती है।

उपचारः सफेद गिडार के लिए किये गये बीजोपचार से दीमक प्रकोप को भी रोका जा सकता हैं।

मूंगफली क्राउन राट

पहचानः अंकुरित हो रही मूंगफली इस रोग से प्रभावित होती है। प्रभावित हिस्से पर काली फुंदी उग जाती है जो स्पष्ट दिखायी देती है।

उपचारः इसके लिए बीज शोधन करना चाहिए।

डाईरूट राट या चारकोल राट

पहचानः नमी की कमी तथा तापक्रम अधिक होने पर यह बीमारी जड़ों में लगती है। जड़ें भूरी होने लगती हैं और पौधा सूख जाता है।

उपचारः बीज शोधन करें। खेत में नमी बनाये रखें। लम्बा फसल चक्र अपनायें।

बड नेक्रासिस

पहचानः शीर्ष कलियां सूख जाती हैं। बाढ़ रूक जाती है। बीमार पौधों में नई पत्तियां छोटी बनती है और गुच्छे में निकलती हैं। प्रायः अब तक पौधा हरा बना रहता है, फूल–फल नहीं बनते।

उपचारः जून के चौथे सप्ताह से पूर्व बुवाई न की जाय। थ्रिप्स कीट जो रोग का वाहक है का नियंत्रण निम्न कीटनाशक से करें।

डाईमेथेएट 30 ई.सी. एक लीटर प्रति हेक्टर की दर से।

मूंगफली का टिक्का रोग (पत्रादाग)

पहचानः पत्तियों पर हल्के भूरे रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं, जिनके जारों तरफ निचली सतह पर पीले घेरे होते हैं। उग्र प्रकोप से तने तथा पुष्पशाखाओं पर भी धब्बे बन जाते हैं।

उपचारः खड़ी फसल पर जिंक मैंगनीज कार्बामेंट 2 कि.ग्रा. या जिनेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.5 कि.ग्रा. अथवा जीरम 27 प्रतिशत तरल के 3 लीटर अथवा जीरम 80 प्रतिशत के 2 कि.ग्रा. के 2–3 छिड़काव 10 दिन के अन्तर पर करना चाहिए।

हेयरी कैटरपीलर

जब फसल लगभग 40–45 दिन की हो जाती है तो पत्तियों की निचली सतह पर प्रजनन करके असंख्य संख्यायें तैयार होकर पूरे खेत में फैल जाते हैं। पत्तियों को छेदकर छलनी कर देते हैं, फलस्वरूप पत्तियां भोजन बनाने में अक्षम हो जाती हैं।

रोकथाम

मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत 25 कि. ग्रा./हे. का छिड़काव करें अन्य कीटनाशक दवायें जो दी गयी हैं, उसमें किसी का भी प्रयोग कर इसकी रोकथाम कर सकते हैं।

खुदाई एवं भण्डारण

यह देखा गया है कि कृषक बाजार में अच्छी कीमत लेने के उद्देश्य से तथा गेहूँ की बुवाई शीघ्र करने के उद्देश्य से मूंगफली की खुदाई फसल के पूर्ण पकने से पूर्व कर लेते हैं। जिससे दाने का विकास अच्छा नहीं होता, दाना घटिया श्रेणी का होता है और उपज कम हो जाती हैं। अतः इसकी खुदाई तभी करें जब मूंगफली के छिलके के ऊपर नसें उभर आयें तथा भीतरी भाग कत्थई रंग का हो जाय और मूंगफली का दाना गुलाबी हो जाय।

खुदाई के बाद फलियों को खूब सूखाकर भण्डारण करें। यदि भीगी मूंगफली का भण्डारण किया जायेगा तो फलियां काले रंग की हो जायेंगी जो खाने एवं बीज हेतु सर्वथा अनुपयुक्त हो जाती हैं।

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

सफेद मक्काः भारतीय दृष्टिकोण पर एक नजर

गणपति मुक्रि, रमेश कुमार, धर्मपाल चौधरी, विनय महाजन एवं विशाल सिंह
भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, पंजाब कृषि विश्व विद्यालय परिसर, लुधियाना (पंजाब)

मक्का एक प्राचीनतम फसल है और आजकल बहुत सारी खाद्य पदार्थो में इस्तेमाल के कारण इसका आज के युग में महत्व बहुत बढ़ गया है। इसके नाम का अर्थ ही 'जीवन देने वाला' होता है। यह पूरे विश्व के मानव व पशु के लिए महत्वपूर्ण हैं। भारत में गेहूँ व चावल के बाद तीसरी महत्वपूर्ण फसल मक्का हैं। भारत में कुल उत्पादन का 23% हिस्सा मनुष्य के द्वारा उपयोग किया जाता है। मक्का को भारत के पूर्वी व पश्चिमी हिस्सों जैसे असम, बिहार, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश व हिमाचल प्रदेश में प्रमुख भोजन के रूप में खाया जाता हैं। मनुष्यों में खाने के लिए पीले मक्के से सफेद मक्के को ज्यादा प्रमुखता दी जाती है। एण्डोस्पर्म के कैरोटिनाईड को छोड़कर सफेद मक्का में पीले मक्के के समान ही सभी पोषक तत्व होते है। सफेद मक्के के β कैरोटिन जीन में अप्रभावी ऐलिल होते हैं। जिसके कारण एण्डोस्पर्म का रंग सफेद होता है।

सफेद मक्के का उत्पादन का रिकार्ड अलग–अलग जगहों पर होने के कारण सही उत्पादन कितना है यह ज्ञात नहीं है। लेकिन भारत में 90% से ज्यादा मक्के का उपयोग मनुष्यों के द्वारा होता है। सफेद मक्के की रोटी पीले मक्के की रोटी से ज्यादा अच्छी ब बिना आटे जैसे गेहूँ, चावल व चना के आटे में मिलाकर अलग–अलग प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं व इसके पोषक तत्व भी बढ़ जाते हैं।

सफेद मक्का का भुट्टा व दाने का सामान्य चित्र

भारत में सफेद मक्का के सुधारीकरण का इतिहासः भारत में मक्के की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए शोध कार्य पीले मक्के पर ज्यादा हैं। सफेद मक्के की किस्मों व संकर प्रजातियों पर मनुष्य की जरूरत के आधार पर बहुत कम शोध कार्य हुए है। भारत में सफेद मक्के की फसल सुधार कार्यक्रम द्वारा पहला सफेद संकर मक्का 1963 में अखिल भारतीय मक्का समन्यविक परियोजन, नई दिल्ली द्वारा निकाला गया है।

उत्तर प्रदेश, बिहार व राजस्थान में सफेद मक्का के मध्य परिपक्वता वाली संकर किस्मों को अधिक मात्रा में उगाया जा रहा है, जिनमें पत्तियों व जीवाणु रोग से प्रतिरोधक क्षमता है व इसका कुल उत्पादन 45–50 कि./हे. हैं। उसके बाद सफेद मक्का के बारे में निम्नलिखित विविध संस्थानों नें अनुसंधान करके सफेद कम्पोजिट एवं संकर मक्का को किसानों के लिए प्रस्तुत किया।

सफेद क्यू–पी–एमः क्वालिटी प्रोटीन मक्का की खोज 1960 के मध्य में ओपेक–2 की खोज से शुरू हुई है, जो कि मक्के के एण्डोस्पर्म में दो अमीनो एसिड लाइसिन व ट्रिपटोफेन का उत्पादन करता है। सामान्य मक्का से क्वालिटी मक्का प्रोटीन में 55% से ज्यादा ट्रिप्टोफेन, 30% से ज्यादा लायासिन व 38% से कम ल्युसिन होता हैं। क्वालिटी मक्का का एक अलग बायोलाजिकल महत्व भी है।

तालिकाः गंगा सफेद–2 के बाद अनुसंशित सफेद कम्पोजिट एवं संकर मक्का

क्र. स.	नाम	किस्म के प्रकार	निर्गत वर्ष	कहाँ से विकसित	प्रमुख गुण
1.	सोनारी (श्वेता)	कम्पोजिट	1980	पंत नगर	अगेती
2.	अफ्रिकन टाल	कम्पोजिट	1982	कोल्हापुर	चारे के लिए उपयुक्त
3.	चंदन सफेद मक्का–2	कम्पोजिट	1982	छिंदवाड़ा	मध्य अवधि
4.	गुजरात मक्की–1	कम्पोजिट	1988	गोधरा	अगेती परिपक्वता
5.	J 1006	कम्पोजिट	1992	पी.ए.यू. लुधियाना	चारे के लिए उपयोगी
6.	राजेंद्रा संकर मक्का–2	संकर मक्का	1996	ढ़ोली, बिहार	पछेती परिपक्वता
7.	देवकी	कम्पोजिट	1996	ढ़ोली, बिहार	सेमीडेंट बिमारियों के लिए प्रतिरोधक (TLB, fusarium wilt, Puccinia sorghi)
8.	माहीधवल	कम्पोजिट	1996	बाँसवारा	पछेती परिपक्वता, सेमीडेंट
9.	जे एम–8	कम्पोजिट	1997	छिंदवाडा	एम एल बी के लिए प्रतिरोधी

10.	जे एच–12	कम्पोजिट	1999	छिंदवाडा	सेमी फलिंट, टी एल बी और एम एल बी के लिए प्रतिरोधी
11.	गुजरात मक्की–3	कम्पोजिट	1999	गोधरा	अगेती
12.	अरावली मक्का–4	कम्पोजिट	2001	गोधरा	अगेती परिपक्वता, फलिंट
13.	गुजरात मक्की–4	कम्पोजिट	2001	गोधरा	फलिंट, एम एल बी, बी एस डी एम और सी एल एस के लिए प्रतिरोधी
14.	शक्तिमान–1	संकर मक्का	2001	ढ़ोली, बिहार	टी एल बी, बी एल एस बी के लिए प्रतिरोधी
15.	गुजरात मक्की–6	कम्पोजिट	2002	गोधरा	अगेती, एम एल बी, बी एस डी एम के लिए प्रतिरोधी
16.	नर्मदा मोती	कम्पोजिट	2002	गोधरा	अति अगेती, एम एल बी, टी एल बी के लिए प्रतिरोधी
17.	प्रताप संकर मक्का–1	संकर मक्का	2004	एमपीयूएटी, उदयपुर	अति अगेती सेमी फलिंट
18.	शक्तिमान–2	संकर मक्का	2004	ढ़ोली, बिहार	पछेती परिपक्वता, एम एल बी के लिए प्रति रोधी
19.	एच एम–5	संकर मक्का	2005	सीसीएसएचएयू, उचानी	डैंट मध्यम लम्बाई तथा पाले के लिए सहनशील
20.	प्रताप मक्का–3	कम्पोजिट	2005	एमपीयूएटी, उदयपुर	अगेती सेमी फलिंट और एम एल बी, टी एल बी, पी एफ एस आर, बी एल एस बी, बी एस डी एम, ई एस आर के लिए कुछ हद तक प्रतिरोधी
21.	प्रताप मक्का–4	कम्पोजिट	2006	एमपीयूएटी, उदयपुर	सेमी फलिंट
22.	प्रताप मक्का–5	कम्पोजिट	2006	एमपीयूएटी, उदयपुर	मध्यम परिपक्वता
23.	प्रताप मक्का चरी	कम्पोजिट	2009	एमपीयूएटी, उदयपुर	चारे के लिए उपयुक्त
24.	वाईएम–9905 (शतक)	कम्पोजिट	2011	पीडीकेवी, नागपुर	सेमी फलिंट, पछेती परिपक्वता
25.	जीएड्ब्लूएमएच–2	संकर मक्का	2012	गोधरा	फलिंट, अगेती
26.	जीएड्ब्लूएमएच–2	संकर मक्का	2013	गोधरा	फलिंट, अगेती
27.	एचएम–12	संकर मक्का	2013	सीसीएसएचएयू, उचानी	सेमी डैंट, मध्यम परिपक्वता

पीले मक्के में क्वालिटी प्रोटीन की बहुत सी उन्नत किसमें निकाली गयी है। लेकिन सफेद मक्के में क्वालिटी प्रोटीन की केवल दो किस्म शक्तिमान 1 व शक्तिमान 2 निकाली गयी हैं जो कि बिहार में उगायी जा रही हैं।

सफेद मक्के की चारा किसमें: बढ़ती हुई चारे की माँग को देखते हुए मक्का को चारे के रूप में काफी मात्रा में उपयोग किया जा रहा है। चारा के अनुसंधान में मक्का को ज्यादा महत्व दिया जा रहा है। क्योंकि मक्के में पोषक तत्व अधिक होते है। चारा कि खोज में सफेद मक्का की एक संयुक्त (कम्पोजिट) किस्म 1982 में कोल्हापुर केन्द्र ने निकाली थी व दूसरी तरफ संयुक्त किस्में जैसे J1006 व प्रताप मक्का चारी 6 को क्रम से PAU लुधियाना, MPUAT उदयपुर ने निकाली जो कि चारे के रूप में उपयोग करने के लिए सही हैं।

भविष्य में सम्भावनायें: β केरोटेनाईट तत्व को छोड़कर सफेद व पीले मक्के कि पोषक तत्व लगभग समान ही होते हैं। लेकिन उपभोक्ता सफेद मक्का को खाने में ज्यादा पसंद करते है। इसके लिए उत्तरदायी कारणों को हम ऊपर विचार विमर्ष कर चुके हैं। फिर भी उपभोक्ता की पसंद क्यों है इस पर विस्तार से अनुसंधान की जरूरत है। इस तरह के अनुसंधान भारत में सफेद मक्का की गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम को प्रोत्साहन देगा। भारत वर्ष में सफेद मक्का जनद्रव्य (germplasm) की कोई कमी नहीं है। भविष्य में बढ़ती सफेद मक्का की जरूरतों को पूरा करने के लिए, गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम को मजबूती प्रदान करने की जरूरत हैं। सफेद मक्का से बहुत सारे मूल्यवर्धक उत्पाद बन सकते हैं। सफेद क्यू पी एम बहुत सारे स्वास्थय वर्धक खाद्य पदार्थों की जगह लेने का मादा रखती है। इससे लड्डू, हल्वा, रोटी, सेवियाँ, मठी, केक, ईडली इत्यादी और सफलता पूर्वक दिनों–दिन बढ़ती हुई शहरी जनता की पोषक तत्वों की माँग को पूरा किया जा सकता है।

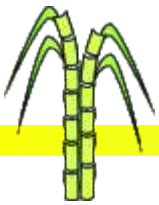

ज्ञान–विज्ञान प्रभाग

सोयाबीन की वैज्ञानिक खेती (रिज एण्ड फरो पद्धति सहित)

भूपेन्द्र सिंह, मोनिका जायसवाल, मेघा विभूते, अजीत सिंह, राहुल सतारकर
कृषि विज्ञान केंद्र, बुरहानपुर

मेंड़ नाली पद्धति से सोयाबीन की बुवाई करने से वर्षा की अनिश्चितता से होने वाली क्षति को बहुत कम किया जा सकता है। उन्नत बुवाई प्रबन्धन अपनाकर उत्पादकता में 25–50 प्रतिशत तक वृद्धि प्राप्त किया जा सकता है।

- मेंड़ नाली पद्धति से बुवाई मेड़ों पर की जाती है तथा दो मेड़ों के मध्य लभगभ 15 सेंमी. गहरी नाली बनाई जाती है मिट्टी को फसल की कतारो की तरफ कर दिया जाता है।
- इस विधि से फसल को अवर्षा के समय नमी की कमी महसूस नहीं होती है।
- बुवाई मेडों पर होने के कारण अति वर्षा अथवा तेज हवा के समय पौधों के गिरने की संभावना कम होती है।
- आलू प्लांटर, डी. डब्ल्यू. आर. प्लांटर, साधारण ड्रिल मे सुधार कर अथवा रिजर जैसे यंत्रों की सहायता से बुवाई मेडों पर करना संभव है। साथ ही साथ दो मेडों के बीच नाली निर्मित हो जाती है।
- बैल एवं ट्रेक्टर चलित सीड ड्रिल में टाइन के पीछे एक छोटी सी पट्टी/लोहे की पट्टी लगाकर इस पद्धति से बुवाई की जाती है।
- बुवाई के समय में ही मिट्टी की मेंड बनती जाती है तथा मेंड़ के मध्य में बीज की बुवाई एक साथ होती जाती है।
- साधारण सीड ड्रिल द्वारा समतल बुवाई करने के पश्चात् कतारों के बीच देशी हल चलाकर नाली का निर्माण किया जा सकता है।
- बुवाई के पश्चात् एवं अंकुरण के बाद नाली को अंत में मिट्टी के द्वारा बांध दिया जाता है, जिससे वर्षा के पानी का भूमि में अधिक से अधिक संरक्षण होगा।
- अति वर्षा के समय इन नालियों से अतिरिक्त वर्षा जल को खेत से बाहर निकाला जा सकता है। अच्छा होगा कि खेत के किनारे गढ्डा बनाकर अधिक वर्षा की स्थिति में नालियों द्वारा बहे वर्षा जल का संरक्षण किया जाये इस संग्रहित जल का उपयोग जीवनदायी सिंचाई के रूप में किया जा सकता है।

मेंड़ नाली पद्धति मे इस तरह बुवाई करें

मिट्टी परीक्षण एवं ग्रीष्मकालीन जुताई : मिट्टी परीक्षण करायें, खाली खेतों की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करें।

अंकुरण क्षमता : बुवाई के पूर्व बीज की अंकुरण क्षमता (70 प्रतिशत से अधिक होनी चाहिये)। 100 दाने लेकर गीली बोरी में रखकर अंकुरण क्षमता ज्ञात करें।

बीजोपचार : बीज को थायरम + कार्बेन्डाजिम (2:1) के तीन ग्राम मिश्रण अथवा ट्राइकोडर्मा/स्यूडोमोनास 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

जैव उर्वरक : बीज को रायजोबियम कल्चर (5 ग्राम) एवं पी.एस.बी. कल्चर (5 ग्राम) प्रति किलोग्राम बीज की दर से बोने कुछ घंटे पूर्व उपचारित करें। उपचारित बीज को छाया मे रखें।

जस्ता एवं गंधक की पूर्ति : अनुशंसित खाद एवं उर्वरक की मात्रा प्रतिवर्ष तथा जिंक सल्फेट 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर एकांतर वर्ष में उपयोग करें। गंधक युक्त उर्वरक (सिंगल सुपर फास्फेट) का उपयोग अधिक लाभकारी होगा।

संतुलित उर्वरक प्रबन्धन : रासायनिक उर्वरकों के संतुलित उपयोग के साथ वर्मीकम्पोस्ट, गोबर खाद या नाडेप खाद का अधिकतम उपयोग करे। 20 से 30 किलोग्राम नाईट्रोजन, 60 किलोग्राम फास्फोरस एव 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय दें।

बीज की मात्रा : दानों को आकार के अनुसार 80 से 100 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करे। आलू प्लांटर द्वारा निर्मित मेड़ो पर बुवाई हाथ से करने पर बीज की मात्रा 20 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पर्याप्त है।

फसल चक्र : निरंतर सोयाबीन – चना के स्थान पर सोयाबीन – गेंहू, सोयाबीन–अलसी फसल चक्र को अपनायें।

खर–पतवार प्रबन्धन : फसल को 30 – 45 दिन की अवस्था तक खर–पतवार रहित रखें।

फसल सुरक्षा : एकीकृत कीट नियंत्रण के उपाय अपनायें। जैसे नीम तेल व लाईट ट्रैप्स का उपयोग तथा प्रभावित एवं क्षतिग्रस्त पौधों को खेत से बाहर निकालकर मिट्टी से दबा दें। फसल की 30–35 दिन की अवस्था पर वैज्ञानिक सलाह अनुसार दवा का फसल पर छिड़काव करें। तम्बाकू की इल्ली एवं बिहार कैटरपिलर के अण्डगुच्छ एवं लार्वागुच्छ वाली पत्तियों को एकत्रित कर नष्ट करें।

सोयाबीन की अधिक उपज देने वाली किस्मे

1. **जे. एस.–2 :** यह किस्म 90–95 दिनों में पकती है और औसतन 18–20 क्विंटल प्रति हैक्टेयर उत्पादन देने

की क्षमता रखती है।

2. **जे. एस.–71–05** : यह 1991 में मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र के लिये जारी हुई थी। इस किस्म की औसत उत्पादन क्षमता 20–24 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है जो कि 90 से 95 दिनो मे पककर तैयार होती है। यह हल्की उथली जमीन के लिये उपयुक्त किस्म है।

3. **जे. एस. 80–21** : सन् 1991 में पूरे मध्य क्षेत्र मे खेती के लिये रिलीज की गयी। इस किस्म की औसत उत्पादकता 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह किस्म थोड़ी लम्बी अवधि की है जो 105–110 दिनों में पकती है।

4. **जे. एस. –335:** यह किस्म सन् 1994 में पूरे मध्य क्षेत्र के लिये अनुशंसित की गई। इस किस्म की औसत उत्पादन क्षमता 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है तथा पकने की अवधि 95–110 दिनों की है।

5. **जे. एस. 93–05** : यह किस्म पूरे मध्य क्षेत्र (महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और उत्तर प्रदेश का बुंदेलखण्ड) के लिये सन् 2002 मे अनुशंसित की गई। यह कम अवधि अर्थात 90–95 दिनों में पकने वाली किस्म है, जिसकी औसत उत्पादकता 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

6. **जे.एस. 95–60** : यह एक नवीन किस्म है जो सन् 2007 मे रिलीज हुई है। यह अब तक ज्ञात सभी किस्मों से कम समय (80–85) दिनो में पकने वाली किस्में है, जो कि सोयाबीन के बाद आलू उत्पादक किसानों के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। इस किस्म की औसत उत्पादन क्षमता 20–25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

7. **जे. एस. 97–52** : यह सोयाबीन की सबसे नई किस्म है। जो कि ''जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय'' द्वारा विकसित की गई है। जे. एस. 97–52 प्रदेश के विशेष तौर से उत्तर पूर्वी एवं मध्य क्षेत्र के लिये हितकारी है। यह जे. एस.335 की तुलना मे 10 प्रतिशत अधिक उत्पादन देती है। यह 98–102 दिनों (मध्यम अवधि) में पककर 25 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर औसत उत्पादन देती है। इसके पौधों की ऊंचाई 58 से 60 सेमी. व दाना मध्यम आकार का है।

8. **अहिल्या – 2 (एनआरसी–12)** : यह सन् 1997 में मध्यप्रदेश के लिये अनुशंसित की गई किस्म है। जो कि मध्यम अवधि 96–99 दिनों में पकती है। इसकी औसत उत्पादन क्षमता 25–30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। यह बैंगनी रंग की फूलो वाली, भूरे रूंए–दार, परिमित वृद्धि वाली किस्म है। बीजों का रंग गेंहुआ तथा नाभी का रंग भूरा होता है।

9. **अहिल्या – 3 (एनआरसी–7)** : यह भी मध्यम अवधि (90–99) दिनों में पकने वाली मध्य प्रदेश के लिये सन् 1997 मे अनुशंसित की गई किस्म है। इसकी औसत उत्पादन क्षमता 25–35 क्विंटल प्रति हैक्टेयर हैं।

10. **अहिल्या – 4 (एनआरसी–37)** : यह सन् 2001 में मध्यप्रदेश के लिये अनुशंसित की गई थी। यह मध्यम अवधि 96–102 दिवस में पकने वाली किस्म है। किस्म की औसत उत्पादन क्षमता 35–40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है। इसके बीजों में 20–25 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है।

सोयाबीन के प्रमुख हानिकारक कीट

1. **पत्ती भक्षक कीट** – ब्लूबीटल (नीला भृग), चने की इल्ली, तम्बाकू की इल्ली, कम्बल कीट, हरी अर्धकुण्डलक इल्ली आदि।

प्रबन्धन : उपरोक्त श्रेणी में कीटों के प्रबन्धन हेतु निम्न उपाय एक साथ करें।

1. प्रति दिन शाम को सूर्यास्त के बाद 2 घण्टे तक प्रकाश ट्रैप का प्रयोग करें।
2. पक्षियों के बैठने हेतु टी आकार की 50 खुटियां प्रति हेक्टेयर लगायें।
3. चने की इल्ली एवं तम्बाकू की इल्ली के लिये 8–10 फेरामोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर लगायें।
4. कीट ग्रस्त पौधे एवं पौधे के भाग को एकत्र कर खेत से बाहर करें।
5. बी.टी कल्चर 1 कि.ग्रा. या बिवेरिया बेसियाना 1 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का छिडकाव करें।
6. अंतिम विकल्प के रूप मे क्वीनालफास 25 ईसी 1.5 लीटर/हेक्टेयर या फेन्थोएट 50 ईसी 500 मिली/हेक्टेयर का प्रयोग करें।

2. **रसचूसक कीट** : इस समूह में हरा माहू, भूरा माहू, फूदका, थ्रिप्स या सफेद मक्खी प्रमुख है। घनी फसल असंतुलित उर्वरक इन कीटों को बढाते हैं।

प्रबन्धन के उपाय

1. अनुशंसित बीज दर एवं संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें।
2. एकीकृत प्रबन्धा उपाय उपरोक्तानुसार अपनायें एवं अंतिम विकल्प के रूप मे एसीटामाप्रिड 20 एसपी 200 ग्राम/हेक्टेयर इमिडाकोलोप्रिड 17.8 एसएल 150 मिली/हेक्टेयर का प्रयोग करें।

प्रमुख रोग एवं उनका प्रबन्धन

जड़ सड़न, तना सड़न – भूमि एवं बीज जनित फफूंद रोग सोयाबीन को भारी क्षति पहुंचाते हैं।

प्रबन्धन : फसल चक्र, गर्मी की जुताई के अलावा समुचित बीज एवं भूमि उपचार करे।

विषाणु रोग : विषाणुजन मोजेक (पीला) का प्रकोप भी सोयाबीन मे बढ रहा है।

प्रबन्धन : रोग ग्रस्त पौधे को नष्ट करें एवं रसचूसक कीटों का प्रभावी प्रबन्धन करें।

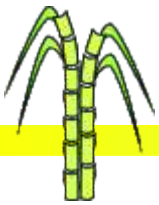

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

सब्जियों द्वारा स्वास्थ्य एवं खाद्य सुरक्षा

डी. के. उपाध्याय एवं सुरेश सिंह
कृषि विज्ञान केन्द्र, अम्बरपुर, सीतापुर

भारत एक प्रमुख सब्जी उत्पादक देश है। विश्व की सकल सब्जी उत्पादन का 14 प्रतिशत उत्पादन भारत में किया जाता है। वर्तमान में भारत 162.18 मिलियन टन उत्पादन के साथ विश्व में द्वितीय स्थान पर है भारत में सब्ज़ियों को 17.63 टन प्रति हेक्टेयर उत्पादकता के साथ 9.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में उत्पादित किया जाता है। हमारे यहां की जलवायु व मौसम विविधता प्रकृति प्रदत्त ऐसा अनमोल उपहार है जो कि अनेकों प्रकार की सब्जियों की खेती करने के लिए बहुत ही अनुकूल बनाता है। भारत में पर्वतीय क्षेत्रों से लेकर समुद्र के तटवर्ती भागों तक लगभग 100 से अधिक प्रकार की सब्जियों की खेती की जा रही है एवं 60 से अधिक प्रकार की सब्जियां व्यवसायिक स्तर पर उगाई जाती है। वर्तमान में देश की आर्थिक विकास की गति संतोषजनक है इसके बावजूद देश की आबादी के कुछ हिस्सों को पोषक तत्वों से भरपूर भोजन नहीं मिल पा रहा है। वर्तमान में सब्जी की उपलब्धता प्रति व्यक्ति 230 ग्राम/व्यक्ति/दिन है, जबकि आवश्यकता 300 ग्राम की है। देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए सब्जी का उत्पादन और बढ़ाने की आवश्यकता है।

दुनिया में अल्प विकसित व विकासशील देशों में गम्भीर समस्या कुपोषण है। पोषण सुरक्षा के बारे में बढ़ती जागरुकता के कारण सब्जी की खपत हमारे देश में निरन्तर बढ़ रही है। भारत की लगभग 36 प्रतिशत आबादी शाकाहारी है तथा पोषक युक्त भोजन के लिए सब्जी एवं दालों पर निर्भर है। सब्जियां विटामिन और खनिज लवण की मुख्य एवं सस्ती स्रोत है। मानव पोषण, स्वास्थ्य संवर्धन और रोग की रोकथाम के लिए सब्जियों में पाये जाने वाले पोषक तत्व एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विश्व के 40 प्रतिशत कुपोषित बच्चे व 35 प्रतिशत कम वजन के बच्चे भारत में है तथा 60 प्रतिशत भारतीय महिलायें खून की कमी से जूझ रही है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी, उसके घातक प्रभाव व प्रतिरक्षा प्रणाली पर ध्यान देकर इन सब बीमारियों को कम किया जा सकता है। अधिकांश भारतीय युवा, गर्भवती महिलाएं व बच्चों में सूक्ष्म पोषक तत्व की कमी से गंभीर बीमारियों की समस्या हैं क्योंकि भारत में ज्यादातर लोग स्टार्च प्रधान आहार जैसे रोटी, चावल, आदि पर निर्भर रहते हैं। सब्जियों में उपस्थित खनिज यौगिक व जैव सक्रिय यौगिकों द्वारा विभिन्न बिमारियों से निजात पाया जा सकता या कम किया जा सकता है।

मुख्य पोषक तत्व एवं उनका हमारे स्वास्थ्य में महत्व

पौष्टिक आहार में वे सभी पौष्टिक तत्व होते हैं, जो मानव शरीर में विभिन्न प्रकार की जैव–रासायनिक क्रियाओं हेतु आवश्यक है। इसकी कमी से मानसिक विकार, कुपोषण तथा कई प्रकार के रोगों की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए दैनिक आहार में अनिवार्य रूप से सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे निम्न आवश्यक तत्वों एवं यौगिकों की प्राप्ति होती है।

सब्जियों में प्रमुख पोषक तत्व एवं उनकी कमी से होने वाले रोग

हमारे पोषण और स्वास्थ्य के लिए विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व जैसे कार्बोहाइड्रेट, खाद्य रेशा, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज व लवण और अन्य जैविक सक्रिय यौगिक आदि की आवश्यकता होती है। सब्जियों में उपर्युक्त तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इन तत्वों की कमी से मनुष्य में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती है। सब्जियों में पाये जाने वाले प्रमुख तत्व, स्रोत एवं इसकी कमी से होने वाले रोगों को तालिका–1 में दर्शायी गई है–

सब्जियों में पाये जाने वाले जैव सक्रिय पोषक यौगिक

सब्जियों का उपयोग कई शारीरिक बीमारियों को कम करने या उबरने के लिए किया जाता है। सब्जियों में विभिन्न जैव सक्रिय पोषक यौगिक पाये जाते है जो कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपक्षयी रोगों और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए अच्छी तरह से किया जाता है। सब्जियों में ग्लूकोसाइनोलेट, फीनोलिक्स, कैरोटिनाएड, आहार रेशा, प्री बायोटिक्ट प्रमुख जैव सक्रिय पोषक यौगिक आदि पाये जाते हैं।

ग्लूकोसिनोलेट

सरसों वर्गीय फसल जैसे– फूलगोभी, पत्तागोभी, ब्रोकली, गांठगोभी, अंकुरित ब्रुसेल्स, केला, मूली, शलजम आदि में प्रचुर मात्रा में ग्लूकोसिनोलेट पाया जाता है। सरसों वर्गीय सब्जी युक्त भोजन करने से विभिन्न प्रकार के कैंसर को कम करता है जैसे फेफड़ा एवं कोलन कैंसर।

कैरोटिनॉएड

मानव स्वास्थ्य रक्षा में लाइकोपिन एवं ल्यूटीन कैरोटिनोएड का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। टमाटर, तरबूजा, गाजर एवं खेक्सा में लाइकोपीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। प्रसंस्कृत टमाटर उत्पाद में 2–40 गुना अधिक लाइकोपीन पाया जाता है।

तालिका–1: सब्जियों में पाये जाने वाले प्रमुख तत्व, स्रोत एवं इसकी कमी से होने वाले रोग

पोषक तत्व	प्रमुख स्रोत	पोषक तत्व की कमी से होने वाले रोग
कार्बोहाइड्रेट	गाजर, करी पत्ता, राजमा, शकरकन्द, जिमिकन्द, चुकन्दर, आलू, करेला, प्याज, सेम, ब्रुसेल्स स्प्राउट, सूखा लहसुन, घुइयां, रतालू और मटर	• प्रौढ़ व्यक्ति में ऊर्जा की कमी। • वजन में कमी आना। • कार्य करने की क्षमता में कमी। • रोगों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता में कमी। • शरीर में रेशा की मात्रा कम होना। • रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा का घट–बढ़ जाना।
खाद्य रेशा	सिलेरी पत्ती, सहिजन, चौलाई, बकला, खेक्सा, करी पत्ता, परवल, घियापत्ती, लोबिया, राजमा एवं करेला।	• कब्ज की सम्भावना बढ़ जाना। • ऑत का कैंसर की सम्भावना का बढ़ना। • भूख न लगना। • शरीर में जल का अवशोषण कम होना। • पाचन व अवशोषण की क्रियाओं के उत्सर्जन की गति में कमी आना।
वसा व लिपिड	गॉठगोभी, फूलगोभी के पत्ते, टमाटर एवं सेम के बीज।	• शरीर में ऊर्जा की कमी रोगों का प्रकोप बढ़ जाना। • आहार का अरुचिकर होना। • आहारीय मूल्य का घटना। • शरीर का दुर्बल होना।
प्रोटीन	कटहल के बीज, अरबी के पत्ते, सिलेरी पत्ती, शलजम के पत्ते, फूलगोभी के पत्ते, धनिया, पालक, सेम, बाकला, लोबिया, बथुआ, सहिजन पत्ती, करी पत्ता, चौलाई एवं मटर।	• एंजाइम एवं हार्मोन्स का निर्माण कम होना। • शरीर का कमजोर हो जाना। • तंतुओं का निर्माण कम होना। • ऊतक तथा कोशिका का निर्माण प्रभावित होना। • शरीर की वृद्धि प्रभावित होना।
विटामिन–ए	मेथी पत्ती, हरी मिर्च, टमाटर (पका), कटहल, चौलाई, पोई, मूली पत्ती, गाजर, पालक, घुइयां, करी पत्ता, सहिजन पत्ती एवं शकरकन्द।	• आँख की रतौंधी। • दन्त क्षय। • त्वचा का सूखापन। • प्रतिरोधक क्षमता की कमी। • बच्चों में डायरिया। • शरीर की वृद्धि का प्रभावित होना। • मूत्र नलियों में पथरी बनने की सम्भावना बढ़ जाना। • प्रजनन ग्रंथियों एवं प्रोटीन निर्माण का प्रभावित होना।
विटामिन–बी	सिलेरी पत्ती, करी पत्ता, मेंथी पत्ती, मूली पत्ती, घुइयां, पालक, बथुआ एवं चौलाई।	• बेरी–बेरी रोग। • पैरों में जलन। • शर्करा तथा स्टार्च की उपयोगिता में कमी। • पाचन तंत्र खराब होना। • हाथ–पैर में लकवा लगना। • पैर में सूजन। • सांस सम्बन्धित बीमारी का उत्पन्न होना। • हृदय की मांसपेशियों का कमजोर पड़ना।
विटामिन–$बी_2$	टमाटर, गाजर, सरसों का साग, लोबिया, धनिया, भिण्डी, शलजम, अरबी	• गले में खरास। • मुँह का किनारा फटना।

पोषक तत्व	प्रमुख स्रोत	पोषक तत्व की कमी से होने वाले रोग
	के पत्ते, बैंगन एवं फूलगोभी।	• आँखों में नसें उभरना एवं लाल होना। • विभिन्न प्रकार के चर्म रोगों के लक्षण प्रकट होना। • सामान्य रोगों के संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाना।
विटामिन–बी$_6$	ऐस्परागस, फूलगोभी, हरी मटर, पालक एवं अन्य पत्ती वाली सब्जियॉं।	• एनीमिया रोग का होना। • होठों का किनारा फटना। • आँख, कान, नाक, मुँह आदि से सम्बन्धित रोग होना। • डरमेटाइटिस नामक रोग होना। • अग्नाशय में इन्सुलिन की कमी होना।
विटामिन–बी$_{12}$	चुकन्दर, फूलगोभी, पालक, चौलाई, सलाद एवं अन्य पत्ती वाली सब्जियॉं।	• मेगालोब्लास्टिक एनीमिया नामक रोग का कम होना।
विटामिन–सी	टमाटर, शलजम, गाँठगोभी, मेथी पत्ती, सहिजन फलियॉं, फूलगोभी, करेला, मिर्च, धनिया पत्ती, केला, ब्रुसेल्स स्प्राउट, पत्तागोभी एवं चौलाई।	• स्कर्वी रोग होना। • मसूड़ों में खून आना। • हड्डियों का समुचित विकास न हो पाना। • घाव के ठीक होने में देरी होना। • रक्त कणिकाओं के निर्माण में बाधा। • गठिया रोग का होना। • प्रतिरोधक क्षमता में कमी आना। • शारीरिक क्रियाशीलता का घट जाना। • शरीर में कमजोरी आना।
विटामिन–डी	शिमला मिर्च, लीक, सेम, आलू, मूली के पत्ते, टमाटर(पका), हरी मटर, चुकन्दर, शलजम के पत्ते, पालक, सरसों का साग एवं घुइया पत्ती।	• हड्डियों का टेढ़ापन। • सूखा रोग(रिकेट्स) का होना। • दाँतों में कमजोरी एवं बनावट का प्रभावित होना। • पायरिया रोग का होना।
विटामिन–ई	टमाटर, गाजर, मटर, पत्तागोभी, प्याज, सलाद, शलजम के पत्ते, पत्तेदार व अन्य हरी सब्जियां।	• बाँझपन एवं गर्भपात की सम्भावना बढ़ जाना। • एन्जाइम तथा हेमी प्रोटीन के संश्लेषण को प्रभावित करना। • कोशिकाओं की झिल्लियों को कमजोर करना। • विटामिन ए एवं सी के आक्सीकरण को बढ़ा देना।
बायोटिन	हरी मटर, गाजर, पत्तागोभी, चुकन्दर, पालक आले, हरा चना, लोबिया एवं फूलगोभी।	• त्वचा का खुरदरी होना। • बालों का झड़ना। • इंसोमेनिया, कार्बोहाइड्रेट के पाचन में समस्या। • शरीर का सख्त होना।
निकोटिनिक अम्ल	मटर, आलू, अगेथी, गाजर के पत्ते, चुकन्दर के पत्ते, करी पत्ता, पुदीना, फूलगोभी, लोबिया, हरी मिर्च, बैंगन, चौलाई, शकरकन्द के पत्ते, सिलेरी के पत्ते, मूली व मूली के पत्ते एवं जंगली जिमीकन्द।	• पैलाग्रा रोग का होना। • जीभ पर खरास का हो जाना। • मुँह व त्वचा पर छाले पड़ना। • डायरिया की शिकायत होना।
पैन्टाथिनिक अम्ल	ऐस्परगस, फूलगोभी, मटर, शकरकन्द एवं लोबिया	• शारीरिक वृद्धि रुक जाना। • बालों का भूरा हो जाना। • तन्तुओं में टूट–फूट होना।

पोषक तत्व	प्रमुख स्रोत	पोषक तत्व की कमी से होने वाले रोग
		• मांसपेशियों में कमजोरी होना। • शरीर की रोग रोधी क्षमता में कमी आना।
फोलिक अम्ल	टमाटर, बैंगन, लोबिया, खीरा, लौकी, आलू, प्याज, पुदीना, पालक, करी पत्ता, पत्तागोभी, चौलाई, गाँठगोभी, राजमा, कद्दू, कुन्दरु एवं चिचिन्डा	• बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं में एनिमिया तथा रक्ताल्पता का होना। • खून में लाल रक्त कणिकायें बनने में कमी होना।
फास्फोरस	लहसुन,मटर, कद्दू, सरसों की पत्ती, सहिजन की पत्ती, सेम के बीज, राजमा, घूइयां एवं गाजर।	• दाँतों एवं हड्डियों का निर्माण रुक जाना। • शर्करा का आक्सीकरण न हो पाना। • ऊतकों की कोशिकाओं का गुणन होना। • ऊतकों में उचित द्रव्य अंश का अनुरक्षण न होना।
पोटैशियम	परवल, बैंगन, धनिया, हरी मिर्च, मूली, चौलाई, पालक, करेला, सरसों का साग, फूलगोभी, टमाटर, आलू, शकरकन्द, घूइयां एवं ब्रूसेल्स स्प्राउट।	• अन्तः कोशिका रस का निर्माण कम होना। • अम्ल व क्षार के अनुरक्षण में समस्या आना। • स्नायु उत्तेजना के संवाहन का धीमा होना। • मांसपेशियों के संकुचन का कम होना। • हृदय की गति का अनियमित होना। • रसाकर्षण दाब प्रभावित होना।
कैल्शियम	सेम, भिण्डी, मेथी, पुदीना, प्याज, चौलाई, घुइयां पत्ती, करी पत्ता, सहिजन पत्ती, मूली के पत्ते एवं सरसों के पत्ते।	• आस्टोमेलेशिया रोग होना। • हड्डियों एवं दॉतों का कमजोर होना। • शरीर में लौह उपयोगिता को घटा देना। • हृदय तथा मांसपेशियों के संकुचन में व्यवधान उत्पन्न होना। • रक्त में थक्का न बनना।
मैग्निशियम	आलू, राजमा, करेला, हरी मिर्च, सलाद, करी पत्ता, लोबिया, धनिया, भिण्डी, चौलाई एवं पालक।	• हृदय सम्बन्धित बीमारियों का होना। • रक्त के थक्के के रुप में न जमना। • अम्ल व क्षार की मात्रा का असमान होना। • पेट सम्बन्धी विकार होना। • कोशों की व्याप्तता को कम करना। • खून के दबाव का निरन्तर न होना।
गन्धक	कटहल, सेम, मटर, बैंगन, करी पत्ता, धनिया, पुदीना, गॉठगोभी, चौलाई, लोबिया, पालक, मेथी एवं ब्रूसेल्स स्प्राउट।	• प्रोटीन का पाचन, शोषण और उपापचय क्रियाओं का कम हो जाना या रुक जाना। • बालों व नाखूनों का विकास न होना। • एन्जाइम की क्रियाशीलता प्रभावित होना।
लौह	मेथी, पुदीना, धनिया, सोया पत्ती, पोई, बथुआ, चौलाई, घुइयां पत्ती, फूलगोभी की पत्ती, करी पत्ता, सहिजन पत्ती, मूली के पत्ते एवं सरसों के पत्ते।	• रक्त की लाल रुधिर कणिकाओं में हीमोग्लोबिन का निर्माण रुक जाना। • रक्ताल्पता रोग उत्पन्न होना। • विभिन्न आक्सीकरण एवं अपचयन की क्रियाओं को प्रभावित करना।
ताँबा	करेला, लोबिया, धनिया, बैंगन, टमाटर, चुकन्दर, हरा मिर्च, एवं सिलेरी पत्ती।	• शरीर के मुख्य स्नायु तन्त्र में विकृति आ जाना। • रक्त में हीमोग्लोबिन की निर्माण प्रभावित होना। • लाल रक्त में उचित संगठन का होना। • वसा तथा अम्लों का आक्सीकरण प्रभावित होना।

पोषक तत्व	प्रमुख स्रोत	पोषक तत्व की कमी से होने वाले रोग
		● लौह के अवशोषण तथा उपापचय का प्रभावित होना।
जस्ता	आलू , पालक, सलाद, गाजर, मटर, चुकन्दर एवं पत्तागोभी।	● वृद्धि रुक जाना। ● प्रजनन अंगों के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ना। ● एन्जाइम का निर्माण प्रभावित होना।
मैंगनीज	अदरक, पालक, हरी मिर्च, पुदीना, सहिजन पत्ती, धनिया, सेम, चौलाई, चुकन्दर एवं सरसों का साग।	● हड्डियों की संरचना प्रभावित होना। ● लिपिड, प्रोटीन और श्वेतसार के उपापचयन में हिस्सा लेले वाले एन्जाइम की क्रिया को कम कर देना।
सोडियम	गजर, मूली, सेम, चुकन्दर, पालक, मेथी, धनिया, हरा चना, लोबिया, चौलाई, सलाद, फूलगोभी, हरा मटर, गॉठगोभी, सिलेरी पत्ती, करी पत्ता, बाकला एवं पुदीना	● रसाकर्षण दाब का प्रभावित होना। ● अम्ल व क्षार का सन्तुलन न हो पाना। ● मल–मूत्र और पसीना का जल के रूप में कम निष्कासन होना। ● चर्म रोग होने की सम्भावना का बढ़ जाना।
आयोडिन	पत्तेदार एवं कन्दमूल वाली सब्जियॉ।	● घेंघा नामक रोग का होना। ● बच्चों का मानसिक विकास का रूक जाना। ● दैहिक विकास व उपापचय गतिविधियॉ प्रभावित होना। ● अमीनो अम्ल व आक्सीकरण को कम कर देना।

टमाटर और टमाटर उत्पाद युक्त लाइकोपीन से कैंसर एवं हृदय रोग का जोखिम कम हो जाता है। ल्यूटीन मोतियाबिन्द और उम्र से सम्बन्धित मांसपेशियां अध:पतन से बचाता है। केल, पालक, ब्रोकली और अन्य पत्तेदार सब्जियों में ल्यूटीन पाया जाता है (तालिका–2)।

फिनोलिक यौगिक

सब्जियों में फिनोलिक यौगिक एक प्रमुख एन्टिआक्सीडेन्ट है। फिनोलिक यौगिक युक्त खाद्य लेने से हृदय पेशी, मस्तिष्क पेशी और परिधीय संवहनी रोगों के खतरों को कम करता है। न्यूरोडीजनरेटिव रोगों जैसे अलजाइमर व पर्किसंस को अक्सिडेटिव तनाव द्वारा उपचार में फिनोलिक यौगिक प्रमुख भूमिका निभाता है। फिनोलिक यौगिक को चार प्रमुख समूह में विभक्त करते हैं यथा: एन्थोसायनिन, फ्लेवोनाएड, फ्लेवोन्स और आइसोफ्लेवोन। सब्जियों में फ्लेवोनाएड सबसे बड़ा समूह होता है (तालिका–3)।

थायोसल्फाड्स

थायोसल्फाइड्स एक आरगैनो–सल्फर यौगिक है यह यौगिक मुख्य रूप से प्याज, लहसुन, चीव, लीक आदि में पाया जाता हैं। एलियम प्रजातियों के बरकार उत्तकों से एलीन और मेथिन प्रमुख थायोफल्फाइड्स प्राप्त होता हैं। यह यौगिक पेट के कैंसर और हृदय सम्बन्धित रोगों को कम करता है।

सैपोनीन

सब्जियों में मुख्य रूप से आइसोरान्टीन सैपोनीन पाया जाता है जो कि हाइपर लाइसेमिक या मधुमेह को कम करता है। करैला किरैटीन का बेहतरीन स्रोत है। अन्य हाइपरग्लाइसेमिक यौगिक करेला में पाये जाते हैं जो कि इन्सुलीन की तरह कार्य करता है। ये यौगिक आंत से ग्लूकोज अवशोषण को रोकना, इंसुलीन का उत्पादन कोशिका का पुनर्जन्म और इन्सुलीन के प्रभाव को शक्ति प्रदान करता है, और इस प्रकार से ये सब मधुमेह को रोकने में सहायक होता है।

फाइटोस्टेराल व स्टेनाल

फाइटोस्टेराल व स्टेनाल एक साइक्लोपेन्टानोपरहाइड्रोफीनानसीन का अल्कोहलिक व्युन्तपन्न है और कोशिका भित्ती का मुख्य घटक है। सब्जियों में मुख्य रूप से बी–सीटोस्टेराल, कम्पोस्टेराल व स्टीमास्टेराल पाया जाता है। सोयाबीन, सहजन व मीठी मक्का में फाइटोस्टेराल व स्टेनाल का अच्छा स्रोत है। ये रक्त कोलेस्ट्राल कम करता है जिससे कि हृदय सम्बन्धित रोगों को रोकने में सहायक है।

सब्जियों में पाये जाने वाले हानिकारक अवयव

पोषण में विषाक्त उपापचयों एवं विरोधी पोषक यौगिकों (Toxic metaboliots and anti-nutritional compound) के कारण सब्जियों को प्रतिबंधित किया गया है। इन विरोधी पोषक यौगिकों से मस्तिष्क सम्बन्धित विकार, गुर्दे की पथरी, उच्च रक्तचाप, पेट सम्बन्धी विकार और यहाँ तक कि मृत्यु तक हो सकती है। सब्जियों में मुख्य रुप से अल्काइल वेन्जीन, सल्फर अल्केनील सीस्टीन सल्फोक्साइड, वायोजेनिक अमीन, सिनैमिक अम्ल, साइनोजेनिक ग्लाइकोसाइड्स, कुकुरविटेसिन, फ्लेवोन्वाएड, ग्लाइकोएल्कोन्वाएड, ग्लूकोसिनोलेट,

तालिका–2: सब्जियों में गुणात्मक और मात्रात्मक कैरोटीनॉयड वितरण

सब्जियां	कुल कैरोटीनॉयड (मि.ग्रा./ग्रा. ताजा वजन)	बी– कैरोटीनॉयड (मि.ग्रा./ग्रा. ताजा वजन)	मुख्य कैरोटीनॉयड
शतावरी	8.5	4.3–7.0	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, व्योलाजैन्थीन, नियोजैन्थीन
करैला	5.3	2.3	अल्फा–कैरोटीन, बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, जीनाजैन्थीन
फरासबीन	17.1	2–4	अल्फा–कैरोटीन, बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, नियोजैन्थीन, व्योलाजैन्थीन, 6–इपोक्साइड
ब्रोकली	42.4	4.8	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, आइसोल्यूटीन, ल्यूटीयोजैन्थीन, व्योलाजैन्थीन, नियोजैन्थीन, क्राईजैन्थीनमैक्सान्थिन
पत्तागोभी	8.9	0.8	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, नियोजैन्थीन, 6–इपोक्साइड, व्योलाजैन्थीन, क्राईजैन्थीनमैक्सान्थिन
गाजर	54–124	76.0	अल्फा–कैरोटीन, बीटा–कैराटीन, जे–कैराटीन, बीटा–जीयाकैरोटीन, गामा–कैराटीन, न्यूरोस्पोरीन
फूलगोभी	0.44	0.11	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, व्योलाजैन्थीन, नियोजैन्थीन,
खीरा	17.2	2.20	अल्फा–कैरोटीन, बीटा–कैराटीन, क्रीप्टोजैन्थीन
हरा मिर्च	10.0	6.8	कैप्सान्थीन, कैप्सोरूबीन, क्रीप्टोकैप्सीन, बीटा–कैराटीन
लाल मिर्च	127–284	1.27–2.84	बीटा–क्रीप्टोजैन्थीन, व्योलाजैन्थीन, नियोजैन्थीन
सलाद	68.0	10.8–24.5	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, व्योलाजैन्थीन, नियोजैन्थीन
पालक	69.0	40.0	बीटा–कैराटीन, ल्यूटीन, इपोक्साइड, व्योलाजैन्थीन, एन्थ्राजैन्थीन, नियोजैन्थीन
टमाटर	70–190	7.8	लाइकोपीन, गामा–कैरोटीन, फाइटोइन

फिनोलिक समूह	मुख्य स्रोत
एन्थोसायनिन	लाल बंदगोभी, ब्रोकली, बैंगन, मूली, काला गाजर, प्याज
फ्लेवोनाएड	प्याज, सलाद, हार्स मूली, टमाटर, सेम
फ्लेवोन्स	अजवाइन, टमाटर, बैंगन, लहसुन, प्याज
आइसोफ्लेवोन	मटर, ब्रोकली, सतावरी, अल्फाल्फा, भिण्डी, सोयाबीन

लेक्टीन, हाइड्राजीन, आइसोफ्लेवोन्स, लेथाइरोजन, लिगनेन, रैफिनोज परिवार के ग्लाकोसेकराइड, आक्जलेट, पाइरोलीजीडिन अल्कोलाएड, फ्यूरानोक्यूमरीन, क्वीनोलीजिडिन एल्कोलाएड, सेसक्वीटरपीन, लैक्टोन, सैपोनीन, ट्रीपसिन इनहीविटर, जैन्थीन अल्कोलाएड, मिनिरल विष, रेजिन्वाएड, टेनिन, फीनाल, नान–अमीनों कार्बनिक अम्ल, अल्कोहल एवं टरपिनाएड आदि विषाक्त उपापचय एवं विरोधी पोषक यौगिक पाये जाते हैं। टेनिन ज्यादातर फलियों के छिलके और कुछ सब्जियों एवं फलों में पाये जाते हैं जो कि लोहे के अवशोषण में अवरोध उत्पन्न करते हैं। पालक, चौलाई एवं कुछ फलीदार सब्जियाँ आक्जेलेट का प्रमुख स्रोत हैं इसकी वजह से शरीर की कमी हो जाती है। नाइट्रेट के प्रभाव से मिथमोग्लोविनिमिया बीमारी होती है। कार्बनिक पत्तेदार सब्जियों में प्रचुर मात्रा में नाइट्रेट होता हैं। कुछ सब्जियों में पाये जाने वाले विषाक्त उपापचय एवं विरोधी पोषक यौगिकों का विवरण तालिका–4 में दर्शाया गया है–

निष्कर्ष

भारत वर्ष जनसंख्या के हिसाब से विश्व में दूसरा राष्ट्र है। जबकि हमारे देश में सब्जी की उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों कम है। देश की बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए सब्जी का उत्पादन और बढ़ाने की आवश्यकता है। दुनिया में अल्प विकसित व विकासशील देशों में कुपोषण एक गम्भीर समस्या है। सब्जियों से हमें प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व के साथ ही प्रमुख एन्टिआक्सीडेन्ट तथा अन्य उपयोगी जैव रसायनों की प्राप्ति हो जाती है जो हमें विभिन्न प्रकार के रोगों से लड़ने की क्षमता प्रदान करते हैं।

सारिणी–4: सब्जियों में विषाक्त उपापचय एवं विरोधी पोषक यौगिक

सब्जियां	विषाक्त यौगिक	प्रतिकूल प्रभाव
गाजर	कैरोटा विष (पालीएसिटेलेनिक अल्कोहल)	तंत्रिका विष लक्षण
सलाद	नाइट्रेस, अल्कोलाएड	मेथिमोग्लोविनेमिया
सरसों कुल की सब्जियां	ग्लूकोसिनोलेट, कोलिन–इस्टेरेज अवरोधक, एस.–मेथिल सिस्टीन सल्फोक्साइड	घेघा, पाचन सम्बन्धित विकार
शलजम, पालक	अक्सलेट, नाइट्रेट, फाइटेट, टेनिन, सैपोनीन, नाइट्रोसामाइन	मेथिमोग्लोविनेमिया जैसे कैल्शियम, लोहा, जस्ता और कुछ खनिज यौगिकों की जैव उपलब्धता कम कर देता है, कैंसर कारक
तरबूजा	सेरोटोनिन	रक्त चाप को बढ़ाता है
शकरकन्द	आइपोमियामेरोन	एन्जाइम अवरोधक
सेम कुल की सब्जियां	लेक्टिन, साइनोजेनिक ग्लूकोसाइड, हिमाग्लूटिनिन, ट्रिपसीन, एमाइलेकज, ग्लूकोज–6–पी–डीहाइड्रोजिनेज अवरोधक, विटामिन विरोधी गुण वाला यौगिक (विटामिन ए, ई.व डी)	एलर्जी कारक
कसावा	सैपोनीन, कोलिन–एस्टर अवरोधक	तंत्रिका विष
आलू कुल की सब्जियाँ	एल्कोलाएड	जन्मजात दोष, प्रोटिएज अवरोधक
टमाटर	टोमैटीन	पेट में बेचैनी
तीखी मिर्च	कैप्सीनिन	त्वचा में जलन व पेट सम्बन्धित विकार
अजवाइन	सोरालीन, टरपीन्वाएड, अल्कोल्वाएड, कोलीन एस्टेरेज अवरोधक	त्वचा सम्बन्धित रोग

शतावरी

फरासबीन

ब्रोकली

गाजर

लाल मिर्च

सलाद

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

पर्यावरण हितैसी – एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन (आई. पी. एम.)

राज कुमार सिंह[1], चंचिला कुमारी[2], मनीष कुमार[2], रुपेश रंजन[2] एवं विनय कुमार सिंह[3]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, हजारीबाग

[2]कृषि विज्ञान केन्द्र, कोडरमा

[3]भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का अभिप्राय प्राकृतिक पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए खेत तथा इसके आसपास के वातावरण में उपस्थित नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए केवल कीटनाशकों या अन्य विषैले रसायनों पर ही निर्भर न रहा जाए, बल्कि ऐसी मिली–जुली सुरक्षा विधि अपनायी जाए जो वातावरण की दृष्टि से सुरक्षित, संरक्षित हो तथा इसमें प्रकृति में पाये जाने वाले लाभकारी परजीवी, परभक्षी एवं फंफूदी तथा वीषाणुओं को बढ़ावा दिया जाए और आवश्यकता पड़ने पर इनको भी प्रयोगशाला में पैदा कर खेतों में छोड़ा जाए।

हम सभी को एकजूट होकर उन सभी उपायों को व्यवहार में लाना होगा जिससे कीटनाशकों का प्रयोग केवल अत्यन्त जरूरत होने पर ही किया जाए और केवल उन्हीं कीटनाशकों का प्रयोग किया जाय जो कम जहरीले तथा वातावरण को प्रदूषित न कर सकें। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन में आर्थिक दृष्टि से लाभकारी एवं वातावरण सुरक्षित कीट/व्याधि प्रबंधन की विधियों का सामंजस्य है जिसे अपनाकर विष–मुक्त तथा पर्यावरण एवं जनमानस के भविष्य को सुरक्षित रखा जा सकता है ।

विश्व खाद्य संगठन के अनुसार एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वातावरण एवं नाशीजीवों की जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए मिला जुलाकर इस प्रकार से नाशीजीवों का प्रबंधन किया जाए कि वे अपनी जनसंख्या को आर्थिक नुकसान स्तर तक न बढ़ा पाए । इसके प्रमुख सिद्धांत निम्न है :–

1. फसलों को बोने से लेकर काटने तक साप्ताहिक निगरानी कर मित्र व शत्रु कीट के बारे में जानकारी रखना।
2. कीटों को नष्ट करने के लिए उन्हीं तरीकों को अपनाएँ जिनसे वातावरण प्रदूशित न हो ।
3. समयानुसार आई. पी. एम. के तरीकों को अपनाकर नाषीजीवों को उनके आर्थिक क्षतिस्तर के नीचे रखना ।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की विधियाँ

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के लिए यह जरूरी है कि किसानों के सोच में सामाजिक परिवर्तन लाया जाये और यह बताया जाय कि एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना ना होकर बल्कि आस–पास के वातावरण को सुरक्षित रखना है, तथा मनुष्य के स्वास्थ्य को अच्छा रखना है। एक बार जब किसानों के समझ में यह बात आ जाएगी तो वह स्वयं अपने खेतों में पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए निम्न विधियों को प्रयोग में लाएगा जो कि उसके लिए एवं मानव जाति के लिए लाभदायक होगा ।

शस्य क्रियाएँ (कर्षण क्रियाएँ)

1. गर्मी की जुताई करके उसमें मौजूद कीटों की अवस्थाओं को नष्ट करना।
2. स्वस्थ्य एवं रोग रोधी किस्मों/बीजों का प्रयोग करना।
3. समय से बुवाई करें तथा फसल चक्र अपनाएँ।
4. बीज शोधन करके बुवाई करें।
5. नर्सरी समय से ऊँचाई पर लगाएँ।
6. पौधों से पौधों एवं पंक्ति से पंक्ति की वांछित दूरी ही रखें।
7. आवश्यकता होने पर पौधों की जड़ों को शोधित करके लगाएँ।
8. संतुलित खाद का प्रयोग करें।
9. सिंचाई का समुचित प्रबंधन करें।
10. कटाई जमीन स्तर से करें तथा कटाई के बाद फसल अवशेष को नष्ट कर दें।

यांत्रिक विधियाँ

1. खेतों से अण्डों एवं सूड़ियों को एकत्र करके नष्ट करें।
2. कीट एवं रोग ग्रसित पौधों को नष्ट करना।
3. हिस्पा ग्रसित पौधों से पत्तियाँ का ऊपरी हिस्सा काट देना।
4. केशवर्म की सूड़ियों का रस्सी द्वारा पानी में गिरा कर नष्ट करना।
5. लाइट ट्रेप खेतों में लगाकर कीटों को नष्ट करना।
6. खरपतवारों को निराई, गुड़ाई करके नष्ट करना।

जैविक विधियाँ

1. परजीवी एवं परभक्षी को आवश्यकता पड़ने पर बाहर से लाकर खेत में छोड़ना।
2. मित्र जीवों को सरंक्षण करना।
3. हानिकारक व मित्र कीटों का अनुपात बनाए रखना।
4. जैविक एवं पौधे जनित रसायनों का आवश्यकता पड़ने पर उपयोग।

रसायनिक नियंत्रण

1. कीटनाशक, फफूँदीनाशक, खरपतवारनाशक एवं अन्य रसायनों का प्रयोग अंतिम उपाय के रूप में करना।
2. सुरक्षित रसायनों का उचित समय पर निर्धारित मात्रा में प्रयोग करें।
3. रसायनों का प्रयोग करते समय सावधानियाँ बरतें।
4. रसायनों का प्रयोग बताए गए निर्देशों के अनुसार करें।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन से लाभ

1. इस विधि में परिस्थिति तंत्र और पर्यावरण की सुरक्षा होती है।
2. कीटनाशकों एवं अन्य विषैले रसायनों से जल, वायु तथा भूमि की रक्षा होती है एवं मनुष्य में होने वाले दुष्प्रभाव को कम करती हैं।
3. कीड़ों एवं बिमारियों में प्रतिरोध एवं प्रजनन क्षमता को कम करती है, लाभदायक कीटों तथा मित्र जीवों की सुरक्षा करती हैं।
4. उत्पादन लागत को कम करके तथा विष रहित खाद्य पदार्थ का उत्पादन करके निर्यात में बढ़ावा।
5. किसानों द्वारा ग्रामीण परिस्थिति में असानी से अपनाई जा सकती है।
6. कीटनाशकों एवं रसायनों से बढ़ती दुर्घटनाओं एवं स्वास्थ्य समस्याओं को रोकती हैं।
7. कृषकों में मित्र कीटों के प्रति जागरूकता बढ़ाती है।
8. वन्य जीवों की सुरक्षा होती है।

दीमक का प्रबंधन

1. खेत में अच्छी तरीके से सड़ी गोबर या कम्पोस्ट खाद डालना चाहिए जिससे की दीमक का प्रकोप न होने पाए।
2. खेत में पानी भरने से तथा समय–समय पर सिंचाई करने से दीमक कम लगता है।
3. दो से तीन लीटर प्रति हेक्टेयर इस्तेमाल किया हुआ इंजन ऑयल या क्लोरपाइरीफास (20 ई. सी.) चार लीटर प्रति हेक्टेयर सिंचाई के समय पानी में मिलाने पर दीमक कम हो जाती है।
4. जहाँ पर दीमक की अधिकता हो वहाँ पर फसल बोने से पहले क्लोरपायरीफास (20 ई. सी.) चार लीटर/हे. की दर से दस किलोग्राम धूल में मिलाकर भुरकाव करने से दीमक कम हो जाती है।

खेतों में चूहे का प्रबंधन

1. चूहों का नियंत्रण एक मौसमी प्रक्रिया है जो किसी मौसम विशेष में, मौसम शुरू होते हीं, जल्दी हीं शुरू कर देनी चाहिए। चूहों को नियंत्रण से संबंधित कार्यक्रम को कार्यान्वयन के बारे में लिए गये निर्णय, पिछले मौसम में चूहों से बहुत ज्यादा नुकसान पर आधारित होते हैं, या चूहों से हुए नुकसान की निगरानी की साप्ताहिक रिपोर्ट पर आधारित होते हैं।
2. चूहों के बच्चें अपेक्षाकृत बड़े होते हैं और जब ये ज्यादा तादाद में होते हैं तब ये एक जगह से दूसरी जगह चले जाते हैं इसलिए उनकी रोकथाम के सिलसिले में उन्हें लुभाने वाली खाने की किसी चीज के साथ मिलाकर जहरीली दवा लगातार देना बहुत महत्वपूर्ण है।
3. प्रचंड विष मिले चारे को चूहे खाना बंद कर देते हैं अतः उनके रोकथाम के लिए उन्हें लुभाने वाली खाने की किसी चीज में प्रचंड विष देने की अपेक्षा मंद विष देना ज्यादा असरदार होता है।
4. मंद विष चूहों के उनके विलों के अन्दर ही मार देता है।
5. चूहों की रोकथाम में सामुदायिक सहयोग बहुत आवश्यक है। इस सिलसिले में कई तरह की हिस्सेदारी संबंधी कार्यकलापों और माध्यमों के जरिये समुचित प्रेरणा प्रदान करते हुए आवश्यक जानकारी चाहिए। किसानों को सामुदायिक कार्यवाही हेतु अपना एक नेता चुन लेना चाहिए जो कि चूहा नियंत्रण कार्यक्रम को सफल बनाए।

प्रबंधन

1. चूहों के प्राकृतिक शत्रुओं जैसे उल्लू एवं बिल्लियों को संरक्षण देना चाहिए।
2. फसल के शुरूआत से ही चूहों के नियंत्रण के बारे में सोचना चाहिए। अगर पिछली फसल के मौसम में चूहों से ज्यादा नुकसान नहीं हुआ है तो भी खेत की निगरानी बराबर करना चाहिए क्योंकि चूहों से हुए नुकसान का जब पता चलता है तब तक फसल को भारी नुकसान हो जाता है।

बुआई से पहले : खेतों की मेड़ों और सिंचाई के लिए बनाये गये नालियों के आस–पास बिलों को ढूंढ़कर नष्ट कर दें तथा खरपतवारों को काट दें।

रोपाई के बाद : चूहों के नियंत्रण के बारे में निम्नलिखित ढंग से सभी किसानों के सहयोग से मिलकर पाँच दिवसीय कार्यक्रम बनाना चाहिए।

प्रथम दिवस : खेत में उपस्थित बिलों की निगरानी कर सभी बिलों को गीली मिट्टी से बन्द करना।

दूसरा दिवस : प्रलोभन चारा रखना।

तीसरा दिवस : प्रचंड विषैली रासायनिक दवाएँ जैसे कि जिंक फास्फाईड को चूहों को लुभाने वाली खाने की किसी चीज में मिलाकर रखना।

चौथा दिवस : बिलों का एल्यूमिनियम फास्फाईड से प्रधूमन।

पाँचवा दिवस : आंकलन करना।

चूहों को चारा के साथ–साथ ब्रामोडिल जैसे रक्त जमा करने वाले विषैले चारा का प्रयोग बीस–पचीस दिन के बाद करने पर चूहों की समस्या काफी हद तक कम हो जाती है।

सूत्रकृमि (जड़ो में गांठें बनाने वाली)

1. गर्मी की जुताई विशेष कर मई–जून में 15 दिन के अन्तराल से दो तीन बार करने पर सूत्रकृमि कम हो जाते हैं।
2. नीम की खली एक टन/हे. की दर से खेत में मिलाने पर भी सूत्रकृमि कम हो जाते हैं।
3. नर्सरी पौधशाला की भूमि को कार्बोफ्यूरान 3 ग्राम ऐ. आई./घन मीटर के रासायनिक उपचार से पौध अच्छी जमती है। हरी खाद जैसे कि ढैंचा लगाने पर सूत्रकृमि कम हो जाते हैं।
4. नर्सरी पौधशाला में उपचार के बाद रोपाई के समय जड़ों को 0.5 प्रतिशत मोनोक्रेटोफास से दस घंटे उपचारित करने के पश्चात् खेत में लगाने से सूत्रकृमि का प्रकोप कम हो जाता है।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

गुरदासपुर एवं प्लासी बेधक कहीं चट न जाये गन्ने की मिठास को

अरूण बैठा, राम जी लाल एवं बुद्धि लाल मौर्य
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ने की फसल को कीड़ों–मकोड़ों से बहुत हानि होती है। बोने से काटने तक की लम्बी अवधि में कई प्रकार के हानिकारक कीड़ों से इसे मोर्चा लेना पड़ता हैं। इनसे न केवल गन्ने की उपज को क्षति पहुँचती है, वरन् उसकी चीनी का परता भी कम हो जाती है। अतः अच्छी उपज लेने के लिए इनकी रोकथाम करना आवश्यक है। ऐसा अनुमान है कि प्रत्येक वर्ष लगभग 10–15 प्रतिशत गन्ने की फसल को कीटों द्वारा क्षति होती है। गन्ने के बेधकों में कुछ प्रजातियाँ ग्रीष्म ऋतु में अधिक सक्रिय रहती है, तथा कई वर्षा तथा उसके उपरान्त कुछ अधिक क्षति पहुँचाती हैं। वर्षाकालीन बेधकों में मुख्य रूप से पोरी बेधक, तराई बेधक, गुरदासपुर बेधक एवं प्लासी बेधक गन्ने को क्षति पहुँचाते हैं।

गुरूदासपुर बेधकः सबसे पहले यह कीट पंजाब के गुरूदासपुर जिले में पाया गया था, अतः इसे गुरूदासपुर बेधक नाम दिया गया। उत्तर प्रदेश में यह कीट देहरादून, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बिजनौर, मुरादाबाद, नैनीताल, बुलन्दशहर, रामपुर एवं बरेली जिलों में गन्ने की फसल को ग्रसित करते पाया गया हैं। भारतवर्ष में यह असम, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश में पाया जाता हैं। भारत के अलावा पाकिस्तान एवं वियतनाम में भी गन्ने की फसल को ग्रसित करते पाया गया हैं।

इस बेधक की सूंड़ी पर बैंगनी रंग की चार धारियाँ पायी जाती हैं। वयस्क पतंग के अगले पंख पीले भूरे रंग के होते हैं जिनके किनारे पर छोटे–छोटे धब्बे पाये जाते हैं। अण्डे झुण्डों में हरी पत्तियों की ऊपरी सतह के मध्य धारी पर या उसके पास लीफ शीथ में देते हैं। अण्डे झुण्ड में 3–4 पंक्तियों में एक दूसरे के ऊपर मछली के छिलकों के समान होते हैं। प्रति झुण्ड में लगभग 3–60 अण्डे होते हैं। ताजे अण्डे आकार में अण्डाकार, चपते, पारदर्शक होते हैं जो बाद में मक्खनी सफेद रंग के हो जाते हैं। एक मादा 400 अण्डे 3–6 दिनों में देती हैं। नवजात सूंडी सबसे पहले नीचे वाली पोरी पर एकत्रित होते हैं। जब सूंडी समूह में होते हैं तो गन्ने में छेद बारी–बारी से करते हैं। सूंडी हमेशा आँख से घुसता है। सूंडी (पाँच या छः) एक पंक्ति में एक–दूसरे के पीछे व्यवस्थित रहते हैं, सबसे ज्यादा आगे वाली पंक्ति में सूंडी रहती है। सूंडी अपने शरीर को तीन रंगों में परिवर्तित करते हैं। हल्का बैंगनी, बैंगनी और हल्का बैंगनी। एक क्षतिग्रस्त पौधों में सूंडी एक ही रंग के होते हैं। गुरदासपुर बेधक के वयस्क सबसे ज्यादा सूर्योदय के तुरन्त बाद गन्ने से निकलते हैं।

इस बेधक की सूंडियों की दो अवस्थायें होती हैं, सामूहिक (ग्रीगेरियस) एवं एकल (सोलीटरी)। नवजात सूँडी झुण्डों (सामूहिक अवस्था) में चलकर एक ही पोरी के आँख में छेद करके घुस जाती हैं। यह सूँड़ी अधिकतर ऊपर की दूसरी या तीसरी पोरी में घुसती हैं। एक पोरी में 40–50 सूँडियाँ तक रहती है। इनके लगातार खाने से पोरी इतना खोखला हो जाता है कि वह जरा से झटके से टूटकर गिर जाता है। झुण्ड के रूप में ये सूँडी लगभग 7 दिन तक पोरी के अन्दर उसे क्षति पहुँचाती रहती हैं। इसके बाद गन्ने के पोरी से निकलकर अलग–अलग दूसरे गन्नों पर पहुँचकर ऊपर की दूसरी से छठी पोरी में घुस जाती है। सामूहिक अवस्था (ग्रीगेरियस) प्रथम दो पीढ़ियों में जून से अगस्त तक रहती है। शंकु (pupa) बनने से पहले सूंडी बाहर निकलने के लिए छिद्र बना लेती हैं जो कटे हुए सूखे कोषों से बन्द रहते हैं।

इस बेधक की एक वर्ष में तीन पीढ़ियाँ होती हैं। प्रथम पीढ़ी अधिकतर पेड़ी के खेत में जिनमें गन्ने की कुछ पोरियाँ बन गयी हों अथवा शरदकालीन बोये हुए गन्ने में पायी जाती है। कभी–कभी ग्रीष्मकालीन में बोये गये गन्ने में भी पायी जाती हैं। परन्तु इसकी तितली उन्हीं खेतों में अण्डे देती है जिसमें कुछ पोरियाँ बन गयी हों। प्रथम दो पीढ़ियों में जीवन चक्र 35–37 दिनो में पूर्ण हो जाता है जबकि तृतीय पीढ़ी लगभग 284 दिनों में पूर्ण होती हैं।

यह कीट वर्षा आरम्भ होने पर ही जून–जुलाई में निकलकर अक्टूबर तक सक्रिय रहता है। अक्टूबर में तीसरी पीढ़ी के सूंडी गन्ने से बाहर आकर भूमि की सतह के पास से गन्ने में छिद्र बनाकर घुस जाती है और जड़ की ओर भूमि के अन्दर के पौधे के हिस्से में जाकर इसी अवस्था में अगले जून तक पड़ी रहती है।

यह बेधक अधिक आर्द्रता और तापमान पर ज्यादा क्षति पहुँचाते हैं। मानसून समय से पहले, ज्यादा वर्षा और खेतों में पानी जमा होने से इस बेधक का आक्रमण ज्यादा होता है। सर्दी में ज्यादा वर्षा और गर्मी में कम वर्षा हो तो गन्ने को क्षति कम पहुँचाते हैं।

ग्रसित गन्ने की पहचानः इस बेधक का जब आक्रमण होता है तो तीसरे चौथे दिन के पश्चात् ही ऊपर की पत्तियाँ पीली होकर मुरझाना शुरू कर देती है। सूंडी गन्ने में घुस कर गोलाई में चक्रनुमा नाली बनाते हुए ऊपर चलते जाते हैं जो बाहर से गन्ने की सतह पर गोलाई में सुराख दिखाई देते हैं। इस कीड़े के द्वारा ग्रसित गन्ना ऊपर से सूख जाता है तथा आसानी से टूट भी जाता है। इस कीट द्वारा ग्रसित गन्नों में लक्षण आरम्भ में दिखाई नहीं देते। प्रकोप के कुछ दिन पश्चात् अगौला पीला पड़ने लगता है और बाद में ऊपर से खुली हुई दूसरी या तीसरी पत्ती पूर्ण रूप से सूख जाती हैं। अन्त में पूरा अगौला ही सूख जाता है। ग्रसित गन्ना उसी जगह से सूखता है जिस पोरी से सूंडी घुसता है। जब सूंडी सामूहिक अवस्था का होगा तो एक स्थान पर एक ही गन्ना सूखा–सूखा मिलेगा परन्तु ''एकल अवस्था'' के समय एक ही स्थान पर कई सूखे गन्ने दिखलाई देंगे जो कि दूर से ही आसानी से पहचाने जा सकते हैं।

नियंत्रण

1. यांत्रिक व कृषिगत नियंत्रणः

- प्रथम पीढ़ी के ग्रसित गन्ने जुलाई माह के दूसरे सप्ताह से अगस्त के दूसरे सप्ताह तक काट कर निकाल देना चाहिए। दूसरी पीढ़ी के ग्रसित गन्ने सितम्बर के तीसरे सप्ताह से अक्टूबर के प्रथम सप्ताह तक काटकर निकाल देना आवश्यक है।
- ग्रसित गन्ने काटने का अभियान दो तीन बार एक–एक सप्ताह के अन्तराल पर करना चाहिए। यदि सामूहिक अवस्था के ग्रसित गन्ने काट दिये जायें तो एक साथ 15 से 30 सूंडियाँ खत्म की जा सकती है। इस अवस्था के पश्चात् प्रत्येक सूंडी निकलकर पास वाले गन्ने पर एक–एक सूंडी अलग–अलग गन्ने में घुस जाती है। जिसमें एक ही जगह पर 10 से 18 गन्ने ग्रसित हो जाते हैं। कटाई अभियान तितली के बाहर निकलने के पूर्व ही समाप्त हो जाना चाहिए।
- जिस खेत में आक्रमण ज्यादा हो उसकी पेड़ी नहीं रखनी चाहिए।
- सूंडी गन्ने के खूड़ में नवम्बर से मध्य जून तक सुसुप्तावस्था में रहता है, इसे कटे हुए खेत को जुताई करके एवं खूड़ और अवशेष को नष्ट कर देना चाहिए।

जैविक नियंत्रण

- अण्ड परजीवी *ट्राइकोग्रामा किलोनिस* @ 50,000 वयस्क/हे. जुलाई से अक्टूबर तक 10 दिनों के अन्तराल पर छोड़ना चाहिए।
- सूंड़ परजीवी *कोटेसिया फ्लेविपस* @ 500 वयस्क मादा/हे. जुलाई से नवम्बर तक 7 दिनों के अन्तराल पर छोड़ना चाहिए।

गुरदासपुर बेधक से ग्रसित गन्ने

सामूहिक अवस्था में गुरदासपुर बेधक की सूंडियाँ

प्लासी बेधकः यह बेधक का प्रकोप असम, बिहार, पश्चिमी बंगाल व पूर्वी उत्तर प्रदेश में गन्ने की फसल को ग्रसित करते पाया गया है। 1956 एवं 1957 में पहली बार पश्चिमी बंगाल के प्लासी क्षेत्र में ज्यादा प्रकोप के कारण गन्ने की उपज एवं शर्करा में ज्यादा कमी पायी गयी, इसलिए इसे प्लासी बेधक नाम से जानते हैं। बिहार में 1939–42 एवं 1953–56 में पूर्णिया एवं दरभंगा जिलों में गन्ने को अधिक नुकसान करते देखा गया।

इस बेधक की प्रथम पीढ़ी मार्च के प्रथम सप्ताह में गन्ने पर आक्रमण करते हैं लेकिन अधिक नुकसान नहीं होता हैं। गन्ने में अधिक क्षति दूसरी पीढ़ी से आरम्भ होती है (जुलाई–सितम्बर), जब गन्ने में पोरी बन गई हो और इसका आक्रमण कटाई तक रहती है। इसकी सूंड़ी सफेद रंग की होती है तथा इसकी पीठ पर चार गुलाबी भूरी धारियाँ होती हैं। इसके मादा पतंगा 150–200 अंडे पत्तियों के ऊपरी सतह पर 3–4 पंक्तियों में एक–दूसरे के ऊपर देती हैं, जिससे 6–10 दिन में सूँड़ी निकल आते हैं। नवजात सूंड़ी सामूहिक अवस्था में 20–30 की झुण्डों में पत्तियों को खाते हुए लीफशीथ से होकर मुख्य तना में घुस जाते हैं। सामूहिक रूप से खाने के कारण एक पोरी में 6–10 छिद्र दूर से ही दिखाई देते हैं। बाद में ये सभी सूँड़ियाँ बाहर निकलकर पुनः अलग–अलग गन्ने में एक सूँड़ी घुसकर बहुत से गन्ने को हानि पहुँचाती है। इस बेधक का प्रकोप गन्ने के खेतों में आसानी से पहचाना जा सकता है। ग्रसित कल्लों में सूखी पत्तियाँ दूर से दिखाई देती हैं। यह बेधक बरसात व उसके बाद अधिक सक्रिय रहता है और अधिक वर्षा होने पर इसका प्रकोप ज्यादा होता है। इन बेधक का प्रकोप दो तरह से होता है।

प्रारम्भिक प्रकोपः अण्डों से निकली नवजात सूँड़ियाँ सामूहिक रूप से (एक पोरी में 50 से अधिक सूँड़ियाँ) ऊपर की 3 से 5 पोरी में एकत्रित होकर खाते हैं। खाने के बाद क्षतिग्रस्त पोरी के घुसने के छिद्र से लाल रंग का अवशेष (मल) पदार्थ निकलता रहता है। यह अवशेष तना और पत्तियों (लीफशीथ) के बीच में जमा रहता है। ऊपर की पत्तियाँ सूख जाती हैं।

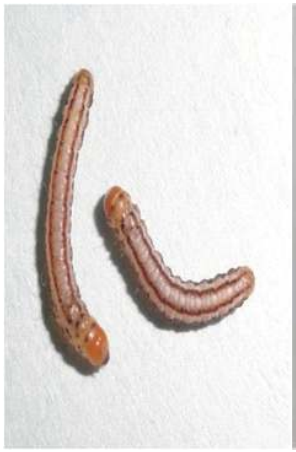

गुरदासपुर बेधक की सूंडियाँ

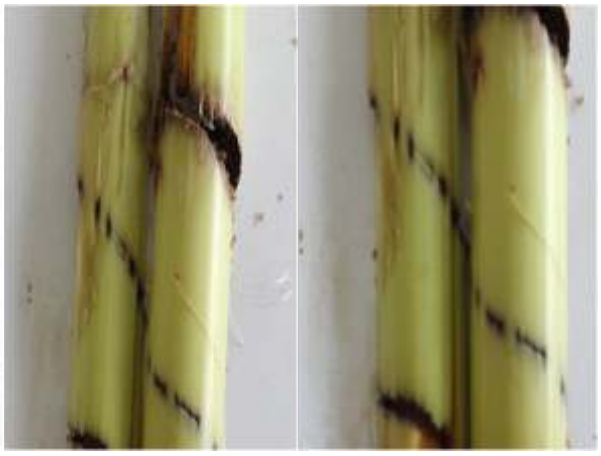

ग्रसित गन्ने में छिद्र

क्षतिग्रस्त पोरी उसी जगह से आसानी से टूट जाती है जहाँ से घुसती है। क्षतिग्रस्त पोरी से बहुत–सी जड़ें निकलकर तने को ढक लेती हैं और बगल की आँखें भी अंकुरित हो जाती हैं।

द्वितीय प्रकोपः सामूहिक अवस्था में खाने के बाद सूँड़ियाँ बाहर निकलकर पुनः अलग–अलग गन्ने में या उसी गन्ने के नीचे वाली पोरी में घुसकर हानि पहुँचाते हैं। इसके आक्रमण से ऊपर की पत्तियाँ नहीं सूखती हैं, कभी–कभी एक सूँड़ी 5 पोरी तक नुकसान पहुँचाती है। इस बेधक की वर्ष में पाँच से छः पीढ़ियाँ होती हैं। पूर्ण विकसित सूंडी दिसम्बर से जनवरी तक सुसुप्तावस्था में रहते हैं।

प्लासी बेधक से ग्रसित गन्ने

ग्रसित गन्ने में छिद्र

सामूहिक अवस्था में प्लासी बेधक की सूंडियाँ

नियंत्रण

यांत्रिक नियंत्रण

- प्रकाश प्रपंच से बेधक के पतंगों को एकत्रित करके नष्ट करना।
- प्रारम्भिक प्रकोप से ग्रसित पौधों को जुलाई–सितम्बर तक 7 दिनों के अन्तराल पर निकालकर नष्ट करना।
- गन्ने की सूखी पत्तियों को गन्ने से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए, जिससे सूंडियाँ ग्रसित गन्ने से स्वस्थ गन्ने में न जायें।
- ग्रसित गन्ने के थानों को आपस में नहीं बाँधना चाहिए।
- अप्रैल से जून तक अनुशंसित सिंचाई आवश्यकतानुसार करें।
- सबसे पहले ग्रसित गन्ने को काटकर चीनी मिलों में पेराई के लिए भेजना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण

जुलाई से अक्टूबर के बीच पौधों के आधार के पास 25 किलोग्राम/हे0 क्विनलफॉस 5 जी डालकर उसे मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें।

जैविक नियंत्रण

- अण्ड परजीवी, *ट्राइकोग्रामा किलोनीस* के 50,000 वयस्क प्रति हेक्टेयर 10 दिनों के अन्तराल पर जून से अगस्त तक खेतों में छोड़ें।

सूंड़ परजीवी *कोटेसिया फ्लेविपस* / 500 वयस्क मादा/हे. जुलाई से नवम्बर तक 7 दिनों के अन्तराल पर छोड़ना चाहिए।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

देशी परम्परागत विधियों द्वारा चूहा नियंत्रण

यीतेश कुमार[1], एम. आर. सिंह[2], वाय. के. यदु[1], अनुप्रिया चंद्राकार[3] एम. पी. शर्मा[2] एवं सन्तोष कुमार पांडेय[2]
[1]इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर
[2]भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ
[3]जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली

चूहा एक ऐसा हानिकारक जीव है, जो मनुष्य को अनेक प्रकार से आर्थिक नुकसान पहुंचाता है, जैसे–भंडारित अनाजों को खाकर व प्रदूषित कर नष्ट करना, खड़ी फसल जैसे – धान, गन्ना, गेहूँ, टमाटर इत्यादि को काटकार गिरा देते हैं। चूहे के उपर पलने वाला पिस्सू प्लेग जैसी खतरनाक बीमारी को फैलाता हैं। इस प्रकार चूहे का नियंत्रण बहुत ही आवश्यक है। चूहा एक चतुर प्राणी है, जो खतरे को भाँप कर सतर्क हो जाता है, व रात्रि या इंसानी हलचल न होने वाले स्थान पर सक्रिय रहते हैं। ये रस्सी तथा बिजली के तारों और खंभो पर आसानी से चढ़कर तेजी से भागने मे काफी कुशल होते हैं इसलिए इनको नियंत्रण करने मे बहुत सी कठिनाई आती हैं। परंतु कुछ देशी तरीके है, जो कि पुराने समय से ग्रामवासियों द्वारा इनके प्रभावी प्रबंधन के लिए प्रयोग किए जाते रहे हैं उनमे से कुछ मुख्य इस प्रकार हैं–

- एक मिट्टी के पके हुए घड़े में लगभग 250 ग्राम बदरा धान (दाना रहित बीज) लेकर घट की आधी गहराई में पानी भर कर चूहा प्रकोपित स्थान मे रख देते हैं। इस घड़े से एक प्रकार की गंध निकलती है जो चुहों को आकर्षित करती है। जब चुहे इस घड़े पर चढ़कर इसमे कूद जाते हैं, तो घड़े की आंतरिक ढलाऊ सतह के कारण चूहा वापस उपर नहीं चढ़ पाते तथा वे अंदर ही फँस कर रह जाते हैं।
- धान के खेत मे चूहा प्रबंधन हेतु 10 किलोग्राम कुचला (स्ट्राइकनोस नक्श वोमिका) के बीज को कूट कर उसे जूट के छोटे छोटे थैलों मे भरकर खेत कि सिंचाई कि नालियों मे रख देते हैं, जब ये पानी मे घुलता है, तो इसका रस सिंचाई के पानी के साथ मिलकर पूरे खेत मे फैल जाता है जिससे विशेष प्रकार कि गंध निकलती है जिसे सूंघ कर चूहे खेत से दूर भागने पर विवश हो जाते हैं।
- इंजन आइल को सिंचाई के पानी के साथ मिला दिया जाये तो भी चूहे उसकी गंध से खेत को छोड़कर भाग जाते है।
- 10 किलोग्राम गोबर मे 1.5 लीटर मिट्टी का तेल मिलाकर छोटे छोटे गोले बनाकर छाँव मे इतना सुखाते है कि इसमे केवल तीन–चौथाई नमी बनी रहे। अब इन गोलों को बिलो के अंदर व उसके पास रखने से चुहे वहाँ से भाग जाते हैं।
- अधपके पपीते के छोटे छोटे टुकडों को चूहा प्रकोपित स्थान में रख देते हैं यदि कोई चूहा पपीते के टुकड़ों को खाता है तो उसके मसढ़ों पर पपीते का दूध जम जाता है जिसे छुड़ाने के लिए वह अपने मसूढ़ों को घास आदि से घिसता है और उसके मसूढ़ों में घाव हो जाते हैं इस कारण चूहा कुछ नहीं खा पाता और भूख से मर जाता है।
- भुनी मूँगफली/गेंहू का आटा (1 किलो) + गुड़ (50 ग्राम) + सीमेंट (100 ग्राम) का मिश्रण अपनी गंध से चूहों को आकर्षित करता हैं। मिश्रण के भक्षण से सीमेंट चूहे के आमाशय मे कठोरता धारण कर लेता है जिससे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है और अंत मे चुहे की मृत्यु हो जाती हैं।
- धान की फसल की किल्ला अवस्था व गभोट (कोथ) अवस्था में मूँगफली की फली के छिलके, अरंडी के बीज खोल या भूसी/बाजरा/रागी/धान को 10 थैले प्रति एकड़ के हिसाब से खेत मे फैला देते हैं। जिससे चूहे फसल को छोड़कर इस बिखरी सामग्री को ही खाते रहते हैं और इसी मे ही बने रहते है।
- भुने हुए मूँगफली के आटे में 05 प्रतिशत गुड़ का घोल व फ्यूज बल्ब को बारीक पीस कर मिलाने से द्रवीय मिश्रण प्राप्त होता है और इस मिश्रण को खेत मे जगह जगह रख देते है जिसकी गंध से चूहे आकर्षित होकर इसको खाते हैं और मर जाते हैं।
- कपास की छोटी–छोटी बत्तियाँ बनाकर उनको चूहा प्रकोपित स्थान मे रख देते हैं। चूहे इनका भक्षण करते है

तथा खाते समय कपास कि रेशे उनकी श्वांश नली मे फँस जाते हैं जिससे इनकी मृत्यु हो जाती हैं।

- आधा किलो रतनजोत (जेट्रोफा) के बीज के चूर्ण को 2 – 3 लीटर जल मे उबाल कर छान लेते हैं और इस काढ़े में एक किलो ज्वार के बीज को पकाते है। पके ज्वार के बीज को चूहा प्रकोपित स्थानो में बिखेर देते हैं जिन्हे खाकर चूहा मर जाता है।
- खेत की मेडों के बीच मे 3 फीट के अंतराल का खाली स्थान छोड़ते हैं और इन स्थानो में एक खाली बोतल को रखते हैं, जिससे इसकी मुंह वाला हिस्सा हवा के विपरीत दिशा मे होता है, जिससे हवा इसमें प्रवेश करती है और आवाज उत्पन्न करती है। यह आवाज चुहों को पसंद नही आती जिससे वे उस स्थान से दूर भाग जाते हैं।
- फसल वाले खेतो में जगह जगह 09 फीट पतली लकड़ी गाड़ देते है, जो पक्षी बैठन खूंटा (बर्ड परचेस) का काम करती है। जो रात्रि मे मांशाहारी पक्षियों के बैठने का काम करती है, अर्थात इस खूँटे में रात्रि में उल्लू आकर बैठते हैं और चूहों का शिकार करते हैं। चूहा नियंत्रण के लिए यह सबसे प्रभावी और सस्ता तरीका है ।
- उर्वरक की बोरियों मे लगे झिल्लियों को बांस की छड़ी से बांधकर खेतों में एक निश्चित अंतराल पर गाड़ देते हैं जब हवा चलती है, तो यह झिल्ली हवा में लहराती है और एक प्रकार की आवाज उत्पन्न करती है जैसे की कोई साँप फुफकार रहा हो, यह आवाज चुंहों को बुरी तरह से डरा देती है, जिससे वे वहाँ से पलायन कर जाते हैं।
- घास के पुआल से कौवे का पुतला बनाकर इसे सफेद कपड़े का खोल पहना देते हैं जिससे चूहे डर कर भाग जाते हैं।
- साँप की केंचुली को जगह जगह चूहा प्रभावित स्थानों में रख देते हैं जिससे चूहा साँप की उपस्थिति जानकार उस स्थान से कहीं दूर भाग जाते हैं।
- सफेद चुंहों को घर में पालने से दूसरे हानिकारक चुहे घरों से दूर रहते हैं, क्योकि ये काले चुहे इनको देखकर यह महसूस करते हैं की इन सफेद चुहों को कोई बीमारी हो गयी है और यदि हम भी इनके पास गए तो यह बीमारी हमें भी हो जाएगी, अतः हानिकारक चुहे उस स्थान से हमेशा दुरी बनाए रखते हैं।
- 2 – 3 चुंहों को पकड़ कर उनको सफेद पेन्ट से रंग कर पुनः उनके समुदाय में छोड़ने पर समुदाय के अन्य चूहे इन्हे बीमारीग्रस्त समझकर इनसे दूर भागते हैं।
- इन सब उपयोगी जानकारियों में सबसे महत्वपूर्ण जानकारी यह है की सब लोग सर्प का संरक्षण करे, क्योकि साँप चुंहों का शिकार करते हैं, जिससे चुहे की जनसंख्या नियंत्रित रहती है। अतः लोगों को अनावश्यक ही साँप को नहीं मारना चाहिए और खेतों में दिखाई देने वाले साँपो को तो बिलकुल ही नहीं मारना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा इनका संरक्षण करना चाहिए। ऐसे कई उदाहरण है, जहाँ लोगो ने भोजन हेतु साँप को मारा है, वहाँ चूहों का आतंक सबसे ज्यादा अनियंत्रित रूप से वृहद स्तर पर बढ़ा है, जैसे – चीन, थाइलैंड इत्यादि। इसलिए चूहा नियंत्रण मे समझदारी से काम लें।

ऊपर लिखित नियंत्रण विधियों को अपनाकर चूहा का प्रभावी व वातावरणीय प्रदूषण रहित नियंत्रण किया जा सकता है।

गन्ने का गुण क्या बताऊँ,
गन्ना है गुण की खान।
गुड़ बनता, शक्कर बनता,
बनता रंग बिरंग का मिष्ठान।
गन्ने का रस पीने से होता,
पीलिया रोग का भी निदान।

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

जैव नियंत्रक *ट्राइकोडर्मा* से समृद्ध जैविक खाद का फसलों के रोग नियंत्रण में महत्व

राम जी लाल, दीक्षा जोशी एवं शशिविन्द कुमार अवस्थी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

किसी भी देश का कृषि विकास, तीन आधार भूत प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, जल व अनुवांशिक आधार पर निर्धारित होता है। अतः उपरोक्त संसाधनों के क्षरण का बचाव करना अति आवश्यक है। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य माँग की पूर्ति करने हेतु काफी समय से जैव विविधता से छेड़छाड़ की गयी है। अधिक उत्पादन वाली प्रजातियों के उपयोग तथा सिंचाई, खाद व व्याधिनाशकों के अत्याधिक व असमय उपयोग के कारण खाद्य–पदार्थों में विषाक्तता उत्पन्न हो रही हैं जिससे मृदा में प्रभावी जैव नियंत्रक भी नष्ट हो रहे हैं और इसके फलस्वरूप मानव में कैंसर व अन्य घातक रोग उत्पन्न हो रहे हैं। अतः आधुनिक खेती से उत्पन्न समस्याओं का सामना करने हेतु जैविक खेती जैसी प्रणालियों को अपनाना अत्यंत आवश्यक हैं।

अतः पर्यावरण के अनुकूल रसायनों का कम उपयोग करने वालों तथा मृदा व जल को कम हानि पहुँचाने वाली पद्धतियों के द्वारा ही स्थायी कृषि की विश्वस्तरीय आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। उपरोक्त उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु मृदा में फसल अवशेषों को समाहित कर, उन्नत अनुवंशिकी युक्त सूक्ष्मजीवों के उपयोग द्वारा फसलों को व्याधियों से नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही साथ फसल उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। जैविक खेती के अर्न्तगत, मृदा व जल का प्रबंधन, दलहन आधारित फसलचक्र, अन्तः फसली खेती, अवशेषों का चक्रीकरण, जैविक खाद का उपयोग, हरी खाद/कम्पोस्ट आदि पद्धतियों को अपनाकर तथा जैवनियंत्रकों के उपयोग द्वारा रोग व कीटों का प्रबंधन किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक रसायन आधारित खेती के कुप्रभावों को कम किया जा सकता है।

प्राकृतिक रूप से मृदा मे उपस्थित लाभदायक कवक व जीवाणु–जैव पदार्थों को अपघटित कर नाइट्रोजन को स्थरीकृत करते है तथा मृदा उर्वरता को बढ़ाते है जिससे धरण (हयूमस) निर्मित होता है जो पादप वृद्धि को बढ़ाने में सहायता करता हैं। जैव नियंत्रण हेतु, लाभदायक सूक्ष्मजीवों (*ट्राइकोडर्मा, स्यूडोमोनास, एसीटोबैक्टर, बैसिलस*) आदि के उपयोग द्वारा रसायनों के उपयोग में कमी लायी जा सकती हैं और साथ ही साथ जैव नियंत्रक को प्रभावी समेकित रोग प्रबंधन मे आसानी से प्रयोग करके स्थायी खेती की जा सकती है।

मृदा जनित पादप रोगों के प्रबंधन, पादप वृद्धि व फसल उत्पादन में वृद्धि हेतु, मृदा में बुआई से पहले अथवा बुआई के समय जैव नियंत्रक सूक्ष्मजीवी *ट्राइकोडर्मा* का उपयोग किया जा सकता है। ट्राइकोडर्मा चिलेसन अथवा रेडाक्स प्रक्रिया द्वारा मृदा मे उपस्थित फास्फेट, लोहा जस्ता एवम् जिंक आदि तत्वों को आसानी से पौधो को उपलब्ध कर इनके अवशोषण करने मे सहायता प्रदान करता है।

सामान्यतया किसान कृषि अवशेषों जैसे– धान व गेहूँ की भूसी, गन्ने की सूखी पत्तियों आदि को नष्ट कर देते हैं अथवा कभी–कभी इसे जानवरों को खिलाने में प्रयोग करते हैं जबकि इनसे कम्पोस्ट बनाकर इसमें *ट्राइकोडर्मा* (जैव नियंत्रक) उत्पादित किया जा सकता है जो इन अवशेषों का शीघ्र अपघटन करके मृदा की उर्वरता में भी वृद्धि करते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्रयोगशालाओं में ही नहीं, अपितु किसानो के खेतों में भी गोबर, केंचुए की खाद इत्यादि पर *ट्राईकोडर्मा* बहुत अच्छी तरह वृद्धि करता है। *ट्राईकोडर्मा हारजियानम* की सी.एफ.यू. की संख्या गढ्ढों में 10^8 से अधिक तथा सूखे कम्पोस्ट पर 10^{12} से अधिक पायी गयी है। इनकी यह संख्या मृदा व बीज उपचार अथवा पर्णीय छिडकाव हेतु सर्वथा उपयुक्त पायी गयी है।

ट्राईकोडर्मा की गढ्ढों में वृद्धि तापमान पर आधारित होती है। जाड़ों में (15^0 से. ग्रे. से कम) व गर्मियों में (35^0 से.ग्रे. से अधिक) तापक्रम पर इनकी वृद्धि कम होती है। प्रतिकूल तापक्रम पर ये काफी समय तक निष्क्रिय अवस्था में पड़े रहते हैं और उपयुक्त तापक्रम पाते ही यह पुनः वृद्धि करने लगते है। मैदानी क्षेत्रो में नवम्बर से फरवरी माह को छोड़कर वर्ष भर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में अप्रैल से अगस्त माह तक इनकी वृद्धि कराकर उपयोग किया जा सकता है। *ट्राइकोडर्मा* युक्त कम्पोस्ट की गुणवत्ता, सामान्य कम्पोस्ट की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि *ट्राइकोडर्मा* युक्त होने पर इसका पोषण

स्तर बढ़ जाता है।

नाडैप अपघटन प्रणाली भारत में, विशेषकर महाराष्ट्र में बहुत प्रचलित है। इसमें जैव अवशेषों के पूर्ण अपघटन में 100–120 दिन लगते हैं जोकि इस बात पर निर्भर करता है कि हमने कौन सा अपघटन कारक प्रयुक्त किया है। *ट्राइकोडर्मा* के प्रयोग से 50–65 दिनों में, उच्चगुणवत्ता युक्त पूर्ण, अपघटित कम्पोस्ट प्राप्त हो जाती हैं। प्रयोगों द्वारा यह भी देखा जा चुका है कि यदि गोबर गैस संयत्र में, *ट्राईकोडर्मा* प्रयुक्त किया जाये तो 20–25 दिनों में ही उच्च गुणवक्ता युक्त अपघटित कम्पोस्ट प्राप्त की जा सकती है। जाड़ों में *ट्राईकोडर्मा* द्वारा अपघटन प्रक्रिया को त्वरित किये जाने के कारण, बायोमास का ताप अनुकूल बना रहता है फलस्वरूप गोबर गैस के उत्पादन में भी वृद्धि हो जाती है।

टमाटर, आलू, फ्रेंच बीन, सोयाबीन, मिर्च, बैगन, गन्ना, तम्बाकू आदि में– *ट्राईकोडर्मा* युक्त कम्पोस्ट के मृदा में उपयोग द्वारा प्रभावी रूप से बीज विगलन जड़ गलन, विल्ट आदि रोगों का संक्रमण काफी कम हो जाता है साथ ही पादप विकास व उत्पादन में भी काफी वृद्धि होती हैं।

अतः जैविक खेती में, जैव नियंत्रक *ट्राइकोर्डमा* से समृद्व जैविक खाद का फसलों में उपयोग द्वारा रोगों को नियंत्रित करके स्थायी कृषि के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

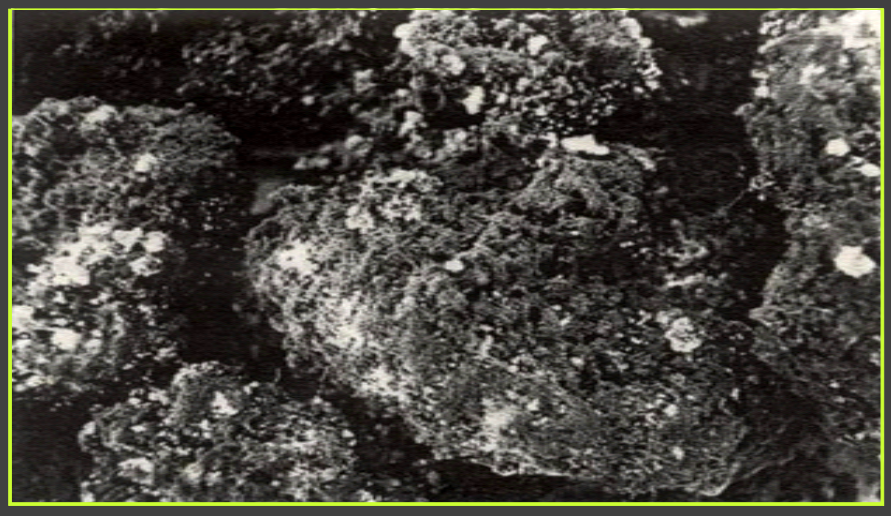

गोबर की खाद / प्रेसमड पर सम्बर्धित *ट्राइकोडर्मा*

- "मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो, यह मैं सहन नहीं कर सकता"
- भाषा के क्षेत्र में घृणा का नहीं, प्रेम और सौहार्द का स्थान होना चाहिए।
- देवनागरी भारत के लिए वरदान है।

– आचार्य विनोवा भावे

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

गन्ने का पोक्का बोन्ग रोग एवं उसका नियंत्रण

राम जी लाल, दीक्षा जोशी एवं शशिविन्द कुमार अवस्थी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ना हमारे देश की मुख्य नकदी फसल है। भारतवर्ष में गन्ना लगभग 5.03 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्रफल में उत्पादित किया जाता है। गन्ने की फसल में, बुआई से लेकर कटाई तक कई प्रकार के रोगों का संक्रमण होता हैं, उनमें पोक्का बोन्ग रोग प्रमुख है। यह रोग सर्वप्रथम जावा में 1886 में देखा गया था। भारतवर्ष में इस रोग का प्रकोप, गन्ना उत्पादन करने वाले प्रायः सभी प्रदेशों में, जैसे कि उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं असम में उत्पादित किये जाने वाली प्रजातियों में पाया जाता है। इस रोग का प्रकोप विगत एक दशक में विभिन्न प्रजातियों जैसे को. 7219, को. 7527, को. 7805, को. 8014, को. 0238, को. 86032, को. 890031, को. 94012, को. शा. 767, को. शा. 8432, को. शा. 8436, को. शा. 07240, को. शा. 88230, को. शा. 91269, को. शा. 94270, को. से. 98231, को. से. 95422, को. से. 01434, को. लख. 8102, को. ज. 64, को. ज. 85, को. सी. 671, को. एम. 0265, को. एम., 08090 आदि में देखा गया है। इन प्रजातियों में इस रोग का प्रकोप 5–25% तक पाया गया है।

इस रोग का प्रकोप गर्म और शुष्क मौसम (मई–जून) के उपरांत आर्द्र वातावरण में परिलक्षित होता है। इस रोग के लिये 3–7 महीने की फसल, अधिक अवधि के फसल की अपेक्षा, अत्याधिक संवेदनशील होती है।

यह रोग *फ्यूजेरियम मोनीलीफारमी* नामक फफूंदी द्वारा होता है जो कि लगभग एक वर्ष तक पौध मलबे में जीवित रहती है। ठण्डा एवं शुष्क मौसम इस फफूंदी के जीवित रहने में सहायक होता है। यह फफूंदी अम्लीय वातावरण (pH 6.5-7.5) में अधिक सक्रिय रहती है। इस रोग के लक्षण खेत में जून–जुलाई में दिखाई पड़ते हैं। इस रोग का प्रकोप वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में, अधिक पाया जाता है। मौसम में 70–85 प्रतिशत आर्दता, बदली एवं फुहार वाली वर्षा होने पर यह रोग शीघ्रता से फैलता है। यह रोग वायु जनित है। इसका प्राथमिक संवहन वायु द्वारा तथा द्वितीय संवहन संक्रमित गन्ने के टुकडों व सिचाई के जल द्वारा होता है।

इस रोग की तीन प्रमुख अवस्थायें हैं (1) हरिमाहीनता (2) शीर्ष भाग का सड़ना तथा (3) चाकू से कटे जैसा अनुप्रस्थ निशान हैं।

1. **हरिमाहीनताः** इस अवस्था में, गन्ने के शीर्ष भाग की पत्तियों के आधार पर तथा कभी–कभी पत्तियों के अन्य भाग पर भी हरिमाहीनता के लक्षण दिखायी देते हैं। इस रोग से ग्रसित गन्ने की नयी पत्तियों में झुर्रियाँ पड़ जाती हैं तथा वह छोटी व घुमावदार हो जाती हैं। रोगग्राही पत्तियों का आधार सामान्य पत्तियों से कम चौड़ा हो जाता है। रोग ग्रसित गन्नों की परिपक्व पत्तियों के हरिमाहीन भाग पर अव्यवस्थित (टेड़े–मेड़े) लाल रंग के धब्बे व धारियाँ भी दिखायी पड़ती है। यह लाल रंग का रोग ग्रसित क्षेत्र कभी–कभी समचर्तुभुज (रोमबोईड) का आकार ले लेता है। इनकी कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं होती है। यह ग्रसित संरचना कभी–कभी सीढ़ीनुमा धब्बे का आकार भी ले लेती है। इनके सिरे, गाढ़े रंग के अनुदैर्घ्य कतार की तरह हो जाते हैं, जो बाद में गाढ़े लाल या भूरे रंग में परिवर्तित होकर जले हुए जैसे प्रतीत होते हैं। पर्ण भित्ति में भी हरिमाहीनता परिलक्षित होती है। इस रोग की बाद की अवस्था में लाल रंग के धब्बे पर्णभित्ति व मध्य शिराओं पर भी दिखाई पड़ते हैं (चित्र सं० 1–2)। कभी–कभी वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होते ही ऐसे रोगग्रसित गन्नों की पत्तियाँ सामान्य स्थिति में आ जाती हैं।

(चित्र सं० 1)

2. **शीर्षभाग का सड़ना :** इस रोग की

(चित्र सं० 2)

यह सबसे गंभीर अवस्था है। इसमें गन्ने की नयी–नयी पत्तियाँ मर जाती हैं। रोग ग्रसित गन्ने का शीर्ष भाग सड़ जाता है तथा कभी–कभी गाँठों पर उपस्थित कलिकाओं का अंकुरण भी हो जाता है। रोगग्रसित गन्नों का शीर्ष भाग सड़कर मर जाता है तथा ऐसे गन्नों की वृद्धि रूक जाती है (चित्र सं0 3)।

3. चाकू के जैसे कटे अनुप्रस्थ निशानः इस रोग की अन्तिम अवस्था में, गन्नों की सतह पर एक, दो या उससे अधिक एक जैसे अनुप्रस्थ निशान दिखायी देते हैं, जिन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी तेज धार वाले चाकू से काटा गया हो। रोग की इस अवस्था को चाकू जैसे कटे अनुप्रस्थ निशान वाली अवस्था के नाम से जाना जाता है। शीर्ष की पत्तियों को हटाने पर गन्नों पर काफी बड़े कटे हुए निशान दिखाई पड़ते हैं। सामान्तया गन्नों के शीर्ष पर एक समान संक्रमण पाया जाता है जिनके द्वारा ही यह रोग फैलता है। (चित्र सं. 4)

(चित्र सं0 3)

(चित्र सं0 4)

नियंत्रण

1. रोग प्रतिरोधी प्रजातियाँ ही उगायें।
2. पौध सुरक्षा सम्बन्धित कर्षण क्रियाओं की सुविधा हेतु गन्नों को अधिक दूरी पर स्थित नालियों वाली तकनीकी से बुआई करनी चाहिए।
3. शीर्ष सड़न अथवा चाकू जैसे कटे निशान वाले पौधों को उखाड़ देना चाहिए।
4. संक्रमित गन्नों पर, 15 दिनों के अंतराल पर दो या तीन बार बाविस्टन 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम/ली0 पानी) या ब्लाईटाक्स–50, 0.2 प्रतिशत (2 ग्राम/ली0 पानी) अथवा कापर आक्सीक्लोराइड अथवा डायथेन एम–45, 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम/ली0 पानी) नामक फफूँदीनाशकों का छिड़काव करने से इस रोग में कमी तथा गन्ने के उत्पादन व गुणवत्ता में इसके संक्रमण से सम्भावित हानियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

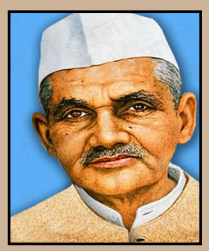

- देश को एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा हिन्दी ही हो सकती है।

श्री लाल बहादुर शास्त्री

- भाषा के जरिए हम एक आदर्श समाज की कल्पना कर सकते हैं।

डॉ. मनमोहन सिंह

आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग

अपने लिए चुनें सही आटा

मिथिलेश तिवारी

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत में रोटी पकाने के लिए गेहूँ के आटे का प्रयोग करने की परंपरा रही है। लेकिन पिछले कुछ सालों में पोषण के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण गेहूँ के अलावा अन्य आटों का उपयोग भी होने लगा है। यह जानना जरूरी है कि कौन सा आटा सेहत और पौष्टिकता के लिहाज से उत्तम है।

वैकल्पिक आटों की लोकप्रियता के लिए मुख्य कारण सेलिएक रोग (गेहूँ के आटे में मौजूद ग्लुटेन के कारण) से ग्रस्त लोगों की संख्या में वृद्धि होना है। भारत में रोटी प्रमुख भोजन के तौर पर खाई जाती है। इसलिए यह जरूरी है कि जो आटा रोटी बनाने में इस्तेमाल हो, वह स्वास्थ्यवर्धक और पौष्टिक हो– गेहूँ के अलावा अन्य आटों–रागी, बेसन, मक्की, बाजरा, जौ आदि में पौष्टिक तत्व और एंटी आक्सीडेंट गेहूँ की अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं।

ज्वार : यह आटा गेहूँ के आटे से कई गुना बेहतर होता है। ज्वार के आटे में एंटीआक्सीडेंट्स होते हैं। यह ग्लूटेन रहित और नान एलर्जिक होता है। यह फाइबर, फास्फोरस और आयरन का भंडार है। इसमें अल्कालाइन नहीं होता, जिससे यह आसानी से पच जाता है। ज्वार विटामिन बी काम्प्लेक्स का अच्छा स्रोत है। शाकाहारी लोगों के लिए ज्वार का आटा प्रोटीन का एक अच्छा स्त्रोत है। शोध बताते हैं कि यह कुछ खास प्रकार के कैंसर के खतरों को भी कम करता है। साथ ही यह हृदय और मधुमेह रोगियों के लिए आटे का अच्छा विकल्प है।

बाजरा : बाजरें में शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले फाइटोकमिकल्स होते हैं। यह कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में मदद करता है। इसमें फाइबर, आयरन, मैग्नीशियम, कॉपर, जिंक और विटामिन ई पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इसमें ग्लुटेन नहीं होता है। इस कारण यह आसानी से हजम हो जाता है। आयरन का यह अच्छा स्रोत है। बाजरे की रोटी का स्वाद बढ़ाने के लिए इसमें प्याज और मसाले भी मिलांए जा सकते हैं। लेकिन इसके अधिक प्रयोग से यह शरीर में हाई यूरिक एसिड बनाने लगता है। इसलिए किडनी और रूमेटिक के रोगियों को इसका सेवन डाक्टर की सलाह पर ही करना चाहिए।

रागी : इसमें प्रोटीन उच्च और वसा कम होती है। इसमें मौजूद पौष्टिक गुणों के कारण दक्षिण भारत में इसे पीस कर दूध/छाछ/पानी में पकाकर बच्चों को पहले भोजन के रूप में दिया जाता है। रागी कैल्शियम, आयरन, फाइवर, प्रोटीन और मिनरल का अच्छा स्रोत है। इसका इस्तेमाल सीरियल्स के तौर पर करना फायदेमंद होता है। इसमें प्रचुर मात्रा में फाइबर होता है, जिससे वजन नियंत्रित रहता है। रागी डायबिटीज, एनीमिया और हृदय रोगियों के लिए बहुत अच्छा होता है। यह हड्डियों को मजबूत भी बनाता है।

कुट्टू : यह आटा व्रत के आटे के रूप में बेहद लोकप्रिय है। इसके एक आटे में 17 ग्राम से 23 ग्राम डाइटरी फाइवर होते हैं। इस आटे के प्रभावशाली फाइवर रक्त में खराब कोलेस्ट्राल के स्तर और हृदय रोग को जोखिम को कम करने में मदद करते हैं। अमेरिका के स्वास्थ्य और मानव सेवा विभाग 2010 के सलाह के अनुसार रोजाना प्रत्येक व्यक्ति को 1000 कैलोरी की खपत के लिए कम से कम 14 ग्राम डाइटरी फाइबर लेना चाहिए। इस लिहाज से कुट्टी एक अच्छा आप्शन है।

जौ (बालें) : इस आटे मे कैल्शियम, जिंक, मैंग्नीशियम और पोटैशियम सहित कई खनिज तत्व होतें हैं। अपने इन गुणों की वजह से यह उच्च रक्तचाप के ग्रस्त लोगों के लिए एक उपयुक्त विकल्प है। इसमें गेहूँ की तुलना में प्रोटीन की उच्च मात्रा होती है। इसके अलाव इसमें स्टार्च होने के कारण यह मधुमेह के रोगियों के लिए उपयुक्त होता है।

रामदाना (एक किस्म के फूल) : यह काफी पौष्टिक होता है। इसे चिड़वे या दलिये और पॉपकार्न के रूप में पका सकते हैं। फाइवर में उच्च होने के कारण यह कब्ज और कोलेस्ट्राल को कम करने में सहायक होता है। इसमें प्रोटीन बहुत अधिक होता है।

मक्की (कॉर्न) : यह विटामिन बी और फाइवर का एक अच्छा स्रोत है। इसके आटे की रोटी स्वाद में हल्की मीठी लगती है और तीखी पत्तेदार सब्जियों के साथ खाने पर इसका स्वाद दोगुना हो जाता है। इसमें पर्याप्त मात्रा में डाइटरी फाइबर और एंटीआक्सीडंट होते है। इसके अलावा यह ब्लड शुगर के स्तर को भी नियंत्रित रखने में सहायक होता हैं यह फोलिक एसिड का अच्छा स्रोत है, इसलिए गर्भवती स्त्रियों के लिए काफी उपयोगी है। हाल ही में हुए एक शोध के मुताबिक मक्की के आटे में एंटी एचआइवी तत्व भी होते हैं।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

अन्नदाता

प्रसून वर्मा
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

इतनी हरियाली के बावजूद किसान को ये नहीं मालूम कि उसके गाल की हड्डी क्यों उभर आई है ? उसके बाल सफेद क्यों हो गए हैं ? लोहे की छोटी दुकान पर बैठा आदमी सोना और इतने बड़े खेत में खड़ा आदमी मिट्टी क्यों हो गया है।

धूमिल की ये पंक्तियाँ किसी भी सहृदयव्यक्ति को उद्वेलित करने में सक्षम हैं जिधर देखो बाजार सजा पड़ा है। भांति–भांति के गैजेट्स आ गए हैं आदमी उन्हीं को पाने की होड़ में सबसे अहम चीज भूल गया है। रोटी और रोटी की कीमत।

लोगों को बाजार में आई नयी कार का दाम पता हैं, लैपटॉप का लेटेस्ट वर्जन कौन सा आया है, कौन सा मोबाईल ले के चलने में शान बढ़ती है, फ्रांस– अमेरिका में कौन सा फैशन चल रहा है, कौन सी मॉडल मिस यूनिवर्स की दौड़ में आगे चल रही है, टी.वी. पर किस सीरियल की क्या टी.आर.पी. है, आई.पी.एल. में पोलार्ड कितने में बिका, कन्याकुमारी और गोवा तो अब मिडिल क्लास लोग भी एल.टी.सी. पर जा रहे हैं, मलेशिया और सिंगापुर का चार दिन–तीन रात का होलीडे पॅकेज कितने का पड़ेगा, आल वेदर ए.सी. के क्या फायदे हैं, आकाश टैब से अच्छे कितने टैबलेट उपलब्ध हैं, रे–बैन का चश्मा लगाने वाला सभ्य और सुसंस्कृत ही माना जाता है, कार की कीमत आदमी की औकात तय करती है। हर तरफ आदमी पर बाजार हावी है।

और खासियत ये है कि हर कोई उस चीज के लिए दुखी है जिसका वास्तविक जीवन से कोई लेना–देना नहीं है। जीवन वस्तुतः है क्या? बहुत ही साधारण सी अवधारणा है, पैदा होने से मरने के बीच कुछ करना, और निरंतर करते रहना। कर्म से अर्जन और अर्जन से कर्म कर सकने योग्य शरीर के लिए भोजन। शायद ऐसी जिंदगी आदमी ने जानवरों के लिए छोड़ रक्खी है। उसे तो अर्जन को बस भोग में व्यय करना ही अच्छा लगता है। तभी तो वो सारी उम्र एक सुख से दूसरे सुख की चाह में भटकता रहता है। और भौतिक सुखों की आयु कितनी होती है। तभी तक जब तक वो वस्तु आपके पास नहीं है।

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है,
मिल जाए तो मिटटी है, खो जाए तो सोना है।

इस बहिर्मुखी सम्पन्नता के दौर में आदमी ने आदमी की ही कीमत लगा दी है। संपन्न वो है जो दूसरों का समय और श्रम खरीद सकता है। शहर का आदमी अपनी शाब्दिक और मानसिक योग्यता के बल पर नयी नयी ऊँचाईयां छू रहा है। एक करोड़ का पे–पैकेज मिल जाना अब अजूबा नहीं लगता। पता नहीं ये आदमी की पे–बैक वैल्यू भी है या नहीं। वो देश को इसका कम से कम कितना हिस्सा लौटा पायेगा, इसमें संशय जरूर है। जहाँ सौ करोड़ लोग सिर्फ जीने के लिए जद्दोजहद कर रहे हों वहां कुछ को दस लाख की आय और कुछ को गुजारा भत्ता भी नहीं, बड़ी बेइंसाफी है। एक आदमी को दस लाख तो दिया जा सकता है पर दस आदमी को एक लाख नहीं। और गरीबी की रेखा तो गरीबों का मजाक बन कर रह गयी है। एक आदमी को अपने पुराने ए.सी. और कार पर इन्फेरीयारीटी काम्प्लेक्स हो रहा है जब कि एक दो जून की रोटी के लिए संघर्ष कर रहा है।

भवानी प्रसाद मिश्र जी की ये पंक्तियाँ जेहन में कौंध रहीं हैं –

ऐसी सुविधा मत करो
कि कोई सिर्फ दस्तखत करते रह कर
महल–अटारी–मोटर–तांगे–वायुयान में
चढ़ कर डोले
न ऐसी सुविधा रहे कि केवल
पढ़–लिख कर
कोई किसान, कर्मकर, बुनकर से बढ़
कर बोले।

दुर्योग से जिस भौतिकवादी संस्कृति का उदय हो चुका है, उसमें आदमी को अपने सिवा कुछ दिखाई देना लगभग बंद हो गया है। महानगर में आधे करोड़ के पैकेज प्राप्त एक मैनेजर महोदय के सामने मैंने बढ़ती मंहगाई का जिक्र कर दिया। उन्होंने सारा दोष मेरी अकर्मण्यता पर धर दिया। व्यर्थ की बातें सोचने में जितना समय बर्बाद करते हो उतना किसी प्रोडक्टिव काम में लगाते तो पैसों का रोना नहीं रोते। तुम जानते हो एम.बी.ए. की पढाई कोई हंसी खेल तो है नहीं। कितना रगड़ा है खुद को तराशने के लिये। पर अब मंहगाई चाहे कितनी भी

बढ़ जाए मेरी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। दाल चाहे सौ रुपये किलो हो या दो सौ रुपये, मै खरीद सकता हूँ। इसे मैं उनकी गर्वोक्ति नहीं मानता। वो वाकई पढाई में बहुत योग्य था और मेहनती भी। पर कभी–कभी लगता है कि क्या लक्ष्मी सिर्फ बुद्धि, बलशाली और योग्य लोगों के लिये ही हैं। बाकि को ठीक से जीने का भी अधिकार नहीं है। और पैसे का इतना नग्न प्रदर्शन विचलित करने वाला है।

दुर्योग से जिस भौतिकवादी संस्कृति का उदय हो चुका है, उसमें आदमी को अपने सिवा कुछ दिखाई देना लगभग बंद हो गया है। महानगर में आधे करोड़ के पॅकेज प्राप्त एक मैनेजर महोदय के सामने मैंने बढ़ती मंहगाई का जिक्र कर दिया। उन्होंने सारा दोष मेरी अकर्मण्यता पर धर दिया। व्यर्थ की बातें करने में जितना समय बर्बाद करते हो उतना किसी प्रोडक्टिव काम में लगाते तो पैसों का रोना नहीं रोते। तुम जानते हो एम.बी.ए. की पढाई कोई हंसी खेल तो है नहीं। कितना रगड़ा है खुद को तराशने के लिये। पर अब मंहगाई चाहे कितनी भी बढ़ जाए मेरी सेहत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। दाल चाहे सौ रुपये किलो हो या दो सौ रुपये मै खरीद सकता हूँ। इसे मै उनकी गर्वोक्ति नहीं मानता। वो वाकई पढ़ाई में बहुत योग्य था और मेहनती भी। पर कभी–कभी लगता है कि क्या लक्ष्मी सिर्फ बुद्धि, बलशाली और योग्य लोगों के लिये ही हैं। बाकि को ठीक से जीने का भी अधिकार नहीं है। और पैसे का इतना नग्न प्रदर्शन विचलित करने वाला है।

अमूमन किसी भी व्यवसाय में व्यापारी उत्पादन के पूरे मूल्य पर मुनाफा जोड़ कर उसका दाम नियत करता है। पर किसान की खेती का मूल्य सरकार तय करती है। इसमें कृषि भूमि का व्यावसायिक मूल्य नहीं होता, न ही किसान और उसके परिवार के श्रम का ही मूल्य होता है। इसके बाद आढ़तियों के दुश्चक्र में किसान को समर्थन मूल्य भी नहीं मिल पाता। भण्डारण की सुविधा न होने के कारण वो अपनी उपज को औने–पौने दाम पर बेचने को विवश हो जाता है। और वहीं व्यापारी और मुनाफाखोर किसान के श्रमका अधिकतम लाभ ले जाते हैं। पढ़–लिख कर मिले रोजगार, जिन्हें सफेद कॉलर जॉब कहा जाता है, को लोग समाज में बहुत सम्मान से देखते हैं पर क्या कभी हम अपने किसानों का, जिन्हें अन्नदाता भी कहते हैं, उचित सम्मान कर पाएंगे। पढ़े–लिखे लोगों का शारीरिक श्रम के प्रति अनादर एक भयावह सच बन चुका है। स्कूलों में हर छात्र को श्रम कर के एक रोटी बनाना अवश्य सिखाया जाना चाहिये ताकि वो मानव श्रम का महत्त्व समझ सके। एक अज्ञात भोजपुरी कवि की कविता साझा कर रहा हूँ :

पिचक जइहैं पेटवा, चुचुक जई हैं गाल
जिस दिन करिहैं भैया किसान हड़ताल।

जो गरीब तों हित करें, धनी "रहीम" ते लोग
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग

अर्थात् : जो गरीबों का हित करते हैं वही धन्य हैं। वरना गरीब सुदामा क्या श्री कृष्ण की मित्रता के योग्य था।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

फोटोग्राफी की कहानी – कैमरे की जुबानी

योगेश मोहन सिंह, ब्रह्म प्रकाश एवं अश्विनी कुमार शर्मा

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

एक अच्छा फोटोग्राफ एक हजार शब्दों से भी अधिक की अभिव्यक्ति रखता है। वर्षो पुराना यह कथन आज के युग में भी अकाट्य सत्य है। कैमरे की खोज से लोगों के पास एक ऐसा साधन उपलब्ध हो गया जो वर्तमान के परिदृश्य को फोटो के रूप में कैद कर आने वाली पीढ़ियों को भी भूतकाल से रूबरू होने का अवसर प्रदान करता है। आज कैमरा सौ वर्षो से अधिक की अपनी जीवन यात्रा पूरी कर चुका है। इस दौरान विभिन्न प्रकार के कैमरों की खोज एवं विकास ने फोटोग्राफी को नई दिशा दी। इस काल यात्रा में श्वेत–श्याम से रंगीन फोटों खींचने वाले एनॉलाग कैमरे से डिजिटल कैमरे तक के प्रदर्शनों से लोग परिचित हुए। संचार क्रांति के दौरान भारत जैसे देश में मोबाइल क्रांति आ चुकी है। आज गरीब से अमीर तक, गाँव से मैट्रो शहर तक बच्चे से बूढ़े तक के हाथ में मोबाइल फोन है। आज अधिकांश मोबाइल में कैमरे की सुविधा उपलब्ध है। मोबाइल फोन फोटोग्राफी के माध्यम से लोगों को अभिव्यक्ति का एक और सशक्त माध्यम मिल गया है। अच्छे कैमरों की तरह अधिक मैगा पिक्सल वाले कैमरों के मोबाइल फोन के चलते छोटे–छोटे बच्चों द्वारा भी अच्छे फोटो खीचे जा रहे हैं। मोबाइल फोन ने आज हर व्यक्ति को फोटोग्रॉफर बना दिया है।

फोटोग्राफी शब्द दो ग्रीक शब्दों *'फोटो'* (अर्थात प्रकाश) एवं *'ग्राफीन'* (अर्थात खैंचना) से बना है। इस शब्द का पहली बार प्रयोग वर्ष 1839 में वैज्ञानिक सर जोन एफ.डब्लू. हर्शेल द्वारा किया गया था। यह संवेदनशील सामग्री पर प्रकाश की अभिक्रिया या सम्बन्धित विकिरण से प्रतिबिम्ब की रिकॉर्डिग की विधि है। मध्य युग में लगभग वर्ष 1000 में अल्हाजेन जो प्रकाश विज्ञान के ज्ञाता थे, प्रथम पिनहोल कैमरा, जिसे कैमरा औब्स्क्योरा भी कहते हैं, का अविष्कार किया था। यद्यपि प्रकाश विज्ञान के नियम का पहला अनौपचारिक सन्दर्भ अरस्तू ने ईसा के 330 वर्ष पूर्व दिया था जिससे पिनहोल कैमरे का अविष्कार संभव हुआ जिन्होंने सूर्य के वर्गाकार छेद के भीतर चमकने पर भी गोलाकार आकृति बनने पर प्रश्न उठाया था।

वर्ष 1827 की गर्मियों के दिनों में जोसेफ नाइसफोर नीप्स ने कैमरा ऑब्सक्योरा की सहायता से पहली फोटोग्राफिक आकृति खींची। इससे पूर्व कैमरा ऑब्सक्योरा का प्रयोग फोटो खींचने के लिए नहीं, अपितु देखने तथा रेखाकंन करने के उददेश्य हेतु प्रयुक्त किया जाता है। नीप्स ने धातु की एक प्लेट बिटुमॅन की पर्त चढ़ी धातु की एक प्लेट पर की हुई एनग्रेविंग को प्रकाश के सम्मुख रखा था। एनग्रेविंग के छायादार स्थान ने प्रकाश का मार्ग अवरूद्ध किया परन्तु सफेद क्षेत्र ने प्रकाश को प्लेट पर लगे रसायन से अभिक्रिया करने का अवसर दिया। नीप्स ने जब इस धातु की प्लेट को विलयन में डाला तो धीरे–धीरे एक आकृति, जो अभी तक अदृश्य थी, उभरने लगी। यद्यपि नीप्स के फोटोग्राफ खींचने हेतु 8 घंटों का प्रकाश देना पड़ता था तथा यह फोटो भी बहुत शीघ्र ही अदृश्य हो जाती है।

लुईस डागुएरे भी इसी दिशा में प्रयत्नशील थे परन्तु उनको सफलता मिलने में 12 वर्षों का समय लग गया। डागुएरे 30 मिनट तक प्रकाश देने में फोटो खींचने में सफल रहे तथा उनकी फोटो अदृश्य भी नहीं होती थी। लुईस डागुएरे फोटोग्राफी के प्रथम प्रायोगिक प्रक्रिया के अविष्कारक थे। उन्होंने 1829 में नीप्स द्वारा विकसित प्रक्रिया को सुधारने हेतु जोसेफ नाइसफोर नीप्स ने साझीदारी की। कई वर्षों के प्रयोग तथा नीप्स की मृत्यु के पश्चात् 1839 में फोटोग्राफी की एक अधिक सुविधाजनक तथा प्रभावी विधि विकसित की जिसे उन्होंने 'डागुएरेटाइप' नाम दिया। डागुएरे की प्रक्रिया में आकृति को चांदी की पर्त चढ़ी तांबे की शीट पर उभारा गया था। उन्होंने चांदी को चमकाकर आयोडीन की पर्त चढ़ाकर ऐसी सतह बनाई जो प्रकाश के प्रति संवेदनशील थी। उन्होंने इस प्लेट को कैमरे में रखकर कुछ मिनट तक प्रकाश आने दिया। प्रकाश द्वारा आकृति उभरने के पश्चात डागुएरे ने प्लेट को सिल्वर क्लोराइड विलयन से धोया इससे बनी आकृति प्रकाश में भी अदृश्य नहीं होती थी। 1839 में डागुएरे तथा नीप्स के बेटे ने डागुएरेटाइप के अधिकार फ्रांस की सरकार को बेच दिए तथा इस प्रक्रिया को विस्तार से बताते हुए एक बुकलेट प्रकाशित की। डागुएरेटाइप इतना लोकप्रिय हुआ कि 1850 तक अकेले न्यूयार्क शहर में 70 से अधिक डागुएरेटाइप स्टूडियो थे।

एक निगेटिव से कई पौजिटिव प्रिन्ट बनाने के अविश्कारक इंग्लैंड के वनस्पतिक शास्त्री व गणितज्ञ, हेनरी फॉक्स टालबर थे। टालबर ने चांदी लवण के विलयन से कागज को प्रकाश के प्रति संवेदनशील बनाया फिर उन्होंने इस कागज को प्रकाश के सामने रखा जिससे पृष्ठभूमि काली हो गयी तथा खींची गई आकृति सिलेटी रंग की हो गयी। यह कागज निगेटिव से प्राप्त निगेटिव आकृति थी जिससे टॉलबर ने विस्तृत फोटो प्राप्त की। 1841 में इस कागज निगेटिव प्रक्रिया को सुधारकर उन्होंने कैलोटाइप नाम दिया। वर्ष 1841 में इस कागज निगेटिव प्रक्रिया को सुधारकर उन्होंने कैलोटाइप नाम दिया। वर्ष 1856 में हैमिल्टन स्मिथ ने टिनटाइरस का पेटेन्ट करवाया जो अन्य माध्यम थे व जिसने फोटोग्राफी को जन्म दिया। उन्होंने पौजिटिव आकृति प्राप्त करने हेतु प्रकाश के प्रति संवेदनशील सामग्री बनाने हेतु

लोहे की पतली शीट का प्रयोग किया। 1851 में फ्रैडरिक स्कॉफ आर्चर ने गीली प्लेट निगेटिव का अविश्कार किया। इसमें उन्होंने काँच पर प्रकाश संवेदनशील चाँदी के लवणों की पर्त चढ़ाई। कागज न होने तथा कांच होने के कारण यह निगेटिव अधिक अच्छा व स्थाई था। परन्तु इन गीली प्लेटों के एमल्शन को सूखने से पहले इन गीली प्लेटों की डेवलपिंग अनिवार्य होने के कारण पोर्टेबिल डार्करूम साथ रखना होता था। वर्ष 1879 में सूखे जिलेटिन एमल्शन द्वारा कांच की निगेटिव प्लेट का अविश्कार किया गया। इन सूखी प्लेटों को कुछ समय तक संरक्षित किया जा सकता था। फोटोग्राफरों को पोर्टेबिल डार्क रूम रखने की भी आवश्यकता नहीं होती थी तथा वे फोटोग्राफ को प्रिंट करने हेतु तकनीकविदों की सेवाएं किराए पर ले सकते थे। यह सूखी प्रक्रिया प्रकाश को इतना शीघ्र अवशोषित करती थी जिससे हाथ में पकड़ने वाले कैमरे का विकास सम्भव हो सका। 1889 में जार्ज ईस्टमैन ने एक आधार के साथ लचकशील, न टूटने वाली तथा लपेटी जा सकने वाली फिल्म का अविष्कार किया। सेल्युलोज नाइट्रेट फिल्म पर एमल्शन की पर्त चढ़ाने से कैमरा अस्तित्व में आया। 1940 के दशक में आरम्भ में व्यापारिक रूप से रंगीन फिल्में (1935 में कोडाक्रोम के अस्तित्व में आने के बाद) बाजार में उपलब्ध होने लगी। इन फिल्मों से रंगीन आकृति प्राप्त करने हेतु तीन रंगों की पर्तों को मिलाने वाली एक रासायनिक प्रक्रिया प्रयोग की जाती है।

प्रथम आधुनिक फोटो फ्लैश बल्ब का अविष्कार आस्ट्रिया निवासी पॉल वीरकोटर ने किया। वीरकोटर ने एक निर्वात कॉच के ग्लोब में मैग्नीशियम की पर्त चढ़े तार को प्रयोग किया। बाद में मैग्नीशियम की पर्त लगे तार को ऑक्सीजन में एल्युमिनियम फॉइल से बदल दिया गया। 23 सितम्बर 1930 को जॉनीज औस्टरमियर द्वारा पेटेन्ट लिया गया। इन फ्लैश बल्ब को वैक्यूब्लिटज का नाम दिया गया। जनरल इलैक्ट्रिक क. ने एक फ्लैश बल्ब बनाया जिसे साशालाइट नाम दिया गया।

कैमरा प्रकाश को रोकने वाली एक वस्तु है जिसमें लगा लैन्स अन्दर आ रहे प्रकाश को रोक्कर तथा प्रकाश को फिल्म की ओर परावर्तित कर (ऑप्टिकल कैमरा) तथा इमेजिंग डिवाइस की ओर परावर्तित कर (डिजिटल कैमरा) देता है। कैमरे की सभी प्रौद्योगिकी सर्वप्रथम अरस्तू द्वारा अविश्कृत प्रकाश विज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित है। 15वीं शताब्दी के मध्य में कलाकारों के लिए रेखांकन करने वाला कैमरा ऑबस्कयोरा अत्यन्त लोकप्रिय था। कैमरा ऑब्सक्योरा एक तरफ पिनहोल के साथ प्रकाश को रोकने वाला बक्सा था जिसमें दूसरी तरफ अर्द्धपारगम्य स्क्रीन लगी होती थी। पिनहोल से रूपान्तरित आकृति को कलाकारों द्वारा ट्रेस करने हेतु स्क्रीन का प्रयोग किया जाता था। 1600 के लगभग डेलापोर्टा ने पिनहोल कैमरे पर पुर्नः शोध करके पिनहोल कैमरे पर सूचना प्रकाशित करने वाले प्रथम यूरोपियन बनकर गलती से इसके आविश्कारक के रूप में जाने गए।

जौनीज कैप्लर ने 1604 में प्रथम बार 'कैमरा ऑब्सक्सोरा' नाम का प्रयोग किया था तथा उन्होंने 1609 में कैमरा ऑब्सक्योरा द्वारा ली गई आकृति में सुधार लाने हेतु लैन्स के प्रयोग का सुझाव दिया।

1905 में ऑस्कर बर्नाक ने फिल्म निगेटिव के फॉर्मेट को कम करके बाद में फिल्म को एक्सपोज करके बड़े फोटोग्राफ बनाने का विचार किया और उन्होंने अपने सिद्धान्त को प्रैक्टिस में बदलकर दिखा दिया। उनके पास सिनेमा फिल्मों के लिए फिल्मों को एक्सपोज करने हेतु एक उपकरण था जो बाद में विश्व का प्रथम 35 एम एम कैमरा बना। पोलराइड फोटोग्राफी का अविष्कार अमेरिका निवासी एडविन हरबर्टलैंड द्वारा किया गया। जिससे एक बार की प्रक्रिया से फोटो डेवलप व प्रिन्ट हो जाती थी इस अविष्कार से इन्सटैन्ट फोटोग्राफी आरम्भ हुई। जनता को प्रथम पोलराइड कैमरा नवम्बर में बेचा गया। वर्ष 1984 में कैनन ने प्रथम डिजिटल कैमरा प्रदर्शित किया।

आज आवश्यकता है कि सकारात्मक दृष्टिकोण से अच्छी चीजों को समाज के सामने प्रस्तुतीकरण किया जाय। अतः अच्छी फोटो लेने के लिए फोटोग्राफर को अपना दृष्टिकोण सकारात्मक रखना चाहिए। कैमरे के साथ दृष्टि बदल जाती है। संवेदनशील, सकारात्मक सोच व साफ दिल का फोटोग्रॉफर किसी भी घटना की अच्छी फोटो खींचकर समाज के अच्छे पक्ष को बेहतर ढंग से प्रस्तुत कर सकता है। फोटो ऐसी होनी चाहिए जो कोई अच्छा संदेश देते हुए उम्मीद की किरण दर्शाए। फोटोग्राफी करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि फोटो से किसी की भावना को ठेस न पहुँचे।

फोटोग्राफी की दृष्टि से भारत बहुत सम्पन्न देश है। जहॉ फोटोग्राफी की अंनत संभावनाएं हैं। भारत विभिन्न संस्कृतियों का देश है। यहाँ पर ऐतिहासिक व धार्मिक स्थलों सहित तमाम ऐसे स्थान हैं। जहाँ बेहतरीन फोटोग्राफी संभव है। पहले एक पासपोर्ट फोटो के लिए हमे स्टुडियो तक जाना पड़ता था तथा हम अपने परिवार की छोटी–छोटी खुशी के पलों को संचित नहीं कर पाते थे। परन्तु डिजिटल कैमरे व मोबाइल फोन कैमरे से हम यह सभी कार्य आसानी से कर सकते हैं व यादगार लम्हों को कैदकर भविष्य के लिए संजोकर रख सकते हैं। सोशल मीडिया, फेसबुक, वाट्सएप जैसे मीडिया से हम फोटो मैसेज करके अपने मित्रों व संबंधियों को तुरन्त भेज सकते हैं।

एक अच्छा फोटोग्राफ खींचने के लिए हमे कुछ मुख्य चीजों को ध्यान रखना पड़ता है। जैसे कि जिस व्यक्ति या वस्तु का फोटो खीचना है उस पर प्रकाश सामने से पड़ना चाहिए और प्रकाश की दिशा की तरफ ही कैमरे का लेन्स होना चाहिए। फोटो खीचने से पहले हमे अतिरिक्त वस्तुएं जिनकी जरूरत नही हैं, हटा लेनी चाहिए। इसके पश्चात् हमें ध्यान रखना चाहिए कि फोटो का संयोजन, हाथ की स्थिति, चेहरे का कोण, आँखों की दिषा इत्यादि सही है या नहीं। अगर हम इस सब बातों का ध्यान रखेंगे तो हमारे द्वारा खींची गई फोटो हमेशा अच्छी आएगी।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

भाकृअनुप –भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान की स्थापना एवं इतिहास का पुनरावलोकन

अशोक कुमार श्रीवास्तव, गोपी कृष्ण गुप्ता, सोमेन्द्र प्रसाद शुक्ल, वरूचा मिश्रा तथा राम सँवारे चौरसिया
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सन् 1920 में गठित प्रथम इंडियन शुगर कमेटी ने गन्ने की तथा शर्करा प्रौद्योगिकी से संबंधित समस्याओं के निराकरण हेतु, इम्पीरियल शुगर रिसर्च संस्थान की स्थापना की संस्तुति की जहाँ कृषि प्रौद्योगिकी शर्करा रासायनिक एवं अभियंत्रण संबंधी अनुसंधान समन्वित रूप से किये जा सकें।

शर्करा प्रौद्योगिकी तथा गन्ना उत्पादन से सम्बन्धित अनुसंधान और प्रशिक्षण से जुड़ी समस्याओं के निदान एवं समन्वयन हेतु केन्द्रीय भारतीय गन्ना समिति द्वारा लखनऊ में शर्करा प्रौद्योगिकी तथा गन्ना अनुसंधान से सम्बन्धित एक संस्थान स्थापित करने हेतु रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने लखनऊ छावनी के भदरूख स्थित सैन्य घास फार्म को स्थानांतरित किया। भूमि अभिलेखों के अनुसार शर्करा प्रौद्योगिकी एवं कृषि अनुसंधान केन्द्र (शुगर टेक्नोलॉजिकल–कम–एग्रीकल्चरल रिसर्च स्टेशन) स्थापित करने हेतु रक्षा मंत्रालय भारत सरकार के पत्र संख्या 35/16/एल/सी एण्ड एल/47/4065–एल दिनांक 08 मई, 1948 के अनुसार वर्ष 1948 में भदरूख में 555.378 एकड़ क्षेत्रफल का क्षेत्र कृषि मंत्रालय को स्थानान्तरित किया गया। यह भी प्रस्तावित किया गया था कि उक्त स्थान पर कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों को अनुसंधान एवं अध्यापन की सुविधा प्रदान करने हेतु एक छोटी चीनी मिल भी लगायी जाये।

लखनऊ में स्थापित किए जाने वाले भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान हेतु योजना तथा अनुमानित व्यय एवं भावी रूपरेखा तथा कार्यक्रम पर विचार–विमर्श करने के लिए तदर्थ भदरूख परामर्शी उपसमिति की एक बैठक दिनाँक 26 अगस्त, 1948 को लखनऊ में हुई। इस उपसमिति ने निदेशक, भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा प्रस्तुत अनुमानित भवनों की डिज़ाइन तथा समिति के सचिव द्वारा प्रस्तुत अनुमानित व्यय का गहन अध्ययन एवं आँकलन किया। साथ ही इस प्रस्तावित संस्थान से जुड़ी योजना तथा अनुमानित व्यय को अन्तिम रूप देने हेतु दो विशेषज्ञों; डा. टी. एस. वेंकटरमणन एवं श्री एस.सी. राय को आवश्यक आँकड़े एवं जानकारी एकत्र करने हेतु विश्व के प्रमुख गन्ना उत्पादक देशों में भेजा जाए। यह भी सुझाव दिया गया कि इस दौरान विद्युत एवं जल की उपलब्धता तथा क्षेत्र के सीवेज के निस्तारण हेतु निदेशक, भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा सभी विकल्पों का अध्ययन एवं उन पर विचार किया जाए। इस संस्थान हेतु प्रस्तावित जमीन पर उस समय में हिन्द फ्लाइंग क्लब का कब्जा था जो अमौसी में स्थानान्तरित होने वाला था। ऐसा प्रतीत होता है कि भदरूख से स्थानान्तरित हुआ हिन्द फ्लाइंग क्लब ही कालान्तर में अमौसी एयरपोर्ट के रूप में विकसित हुआ जो आज चौधरी चरण सिंह अन्तर्राष्ट्रीय एयरपोर्ट के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान है।

समिति ने यह भी प्रस्तावित किया कि उक्त संस्थान की स्थापना के पूर्व प्रारम्भिक आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण आकड़ें का संग्रह करने हेतु एक प्रतिनिधिमंडल विश्व के प्रमुख गन्ना उत्पादक देशों में भेजा जाये। इस केन्द्र ने निदेशक, भारतीय शर्करा प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के प्रशासनिक नियंत्रण में ''केन्द्रीय गन्ना केन्द्र'' (सेन्ट्रल शुगरकेन स्टेशन) के रूप में कार्य किया। भारतीय शर्करा प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान को स्थापित करने के उद्देश्य से रक्षा मंत्रालय द्वारा प्रदान की गयी भूमि का अधिग्रहण भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति द्वारा किया गया।

भारत सरकार द्वारा इस महत्वपूर्ण संस्थान को स्थापित करने में हो रहे विलम्ब की अवधि में भदरूख फार्म की देखभाल एक सामान्य फार्म की तरह हुई तथा यहां गन्ना तथा अन्य चारा फसलों की खेती होती थी, किन्तु 10 सितम्बर, 1951 को तत्कालीन खाद्य एवं कृषि मंत्री, भारत सरकार ने निर्णय लिया कि सस्य विज्ञान, कृषि अभियन्त्रण, कीट विज्ञान एवं कवक विज्ञान जैसे चार महत्वपूर्ण अनुभागों के साथ प्रस्तावित भारतीय शर्करा प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान को स्थापित करने की दिशा में एक शुरूआत की जाये।

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ का शिलान्यास केन्द्रीय खाद्य एवं कृषि मंत्री माननीय के. एम. मुन्शी द्वारा दिनांक 16 फरवरी, सन् 1952 को किया गया। शिलान्यास पट्टिका संस्थान के मुख्य भवन के प्रवेश द्वार के निकट आज भी विद्यमान है।

वर्ष 1952–53 में सस्य विज्ञान, कृषि अभियन्त्रण, कीट विज्ञान एवं कवक विज्ञान जैसे चार महत्वपूर्ण अनुभागों वाले मुख्य भवन का निर्माण हुआ। इस भवन में

प्रस्तावित भारतीय शर्करा प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान के ''गन्ना अनुभाग प्रभाग'' का प्रखण्ड बनाया गया। यह भी निर्णय लिया गया कि भारत सरकार की स्वीकृति प्राप्त होने के उपरान्त भारतीय शर्करा प्रौद्योगिकी संस्थान को भी कानपुर से लखनऊ स्थानान्तिरित कर दिया जाये। इस अवधि में लखनऊ में शर्करा प्रौद्योगिकी संस्थान के लिये आवश्क प्रयोगशाला, कार्यालय, आवासीय भवन आदि का निर्माण कर लिया जाये।

श्री बी. डी. गुप्ता को दिल्ली में दिनांक 04 जनवरी, 1952 से कीट वैज्ञानिक के पद पर नियुक्त किया गया तथा दिनांक 04 फरवरी, 1952 को उनका स्थानान्तरण केन्द्रीय गन्ना अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ कर दिया गया। इसी प्रकार योजना (स्कीम) के अर्न्तगत कृषियन्त्रों से सम्बन्धित अनुसंधान हेतु दिनांक 21 अगस्त, 1951 को श्री सी. पी. राजू नियुक्ति कर उनका भी स्थानान्तरण 24 जुलाई, 1952 को लखनऊ कर दिया गया।

श्री ए. आर. खान तथा श्री ए. आर. रफे की नियुक्ति क्रमशः सस्य विज्ञान विशेषज्ञ तथा कवक विज्ञान विशेषज्ञ के पद पर की गयी। दिनांक 23 नवम्बर, 1954 को डा. बी. के. मुखर्जी, ने श्री जे. एम. साहा ने निदेशक, भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ का कार्यभार ग्रहण किया तथा वे संस्थान के प्रथम पूर्णकालिक निदेशक बने।

भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति के 1947–48 के निर्णय के अनुसार 1955 में एक प्रतिनिधिमंडल आस्ट्रेलिया तथा इन्डोनेशिया भेजा गया। इस प्रतिनिधिमंडल की रिपोर्ट वर्ष 1955 में प्रकाशित हुयी। इन देशों में गन्ना अनुसंधान से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को इंगित करते हुये प्रतिनिधिमंडल ने भारत में प्रति इकाई क्षेत्रफल में गन्ना उपज व शर्करा उत्पादन बढ़ाने से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझाव दिये :–

- अधिक शर्करा युक्त ऐसी प्रजातियों का विकास किया जाये जो गन्ने में लगने वाले सामान्य रोगों के प्रति प्रतिरोधी हों, साथ ही आस्ट्रेलिया, जावा तथा अन्य गन्ना उत्पादक देशों से उच्च शर्करा युक्त प्रजतियों को भारत में परीक्षण हेतु लाया जाये।
- प्रजातियों को किसानों के उपयोग करने हेतु जारी करने के पूर्व उनके खेतों में ही मृदा एवं मौसम की भिन्न–भिन्न दशाओं में परीक्षण किया जाये।
- उपर्युक्त उर्वरक कार्यक्रम तैयार करने हेतु व्यापक रूप से गन्ने की कृषि उत्पादन हेतु मृदा विश्लेषण का कार्य किया जाये।
- गन्ना प्रसार सेवाओं को सुदृढ़ किया जाये तथा गन्ने पर अखिल भारतीय स्तर पर अनुसंधान पत्रिकाएं प्रकाशित किए जायें।
- जनपद स्तर पर जहां एक या एक से अधिक चीनी मिल हैं वहाँ गन्ने के नाशिकीट एवं रोग नियन्त्रण बोर्ड का गठन किया जाये।
- चीनी मिल क्षेत्र में खेती हेतु उपयुक्त गन्ना प्रजातियों का चयन तथा परिपक्वता के अनुसार सुनियोजित कटाई प्रणाली विकसित की जाये।

समिति ने यह भी सुझाव दिया कि एक चीनी अनुसंधान परिषद् स्थापित की जाये जिसमें गन्ना उत्पादक समुदाय तथा चीनी उद्योग के प्रतिनिधि शमिल हों जिससे उनकी समस्याओं से जुड़े अनुसंधान कार्यों को गति प्रदान करने हेतु उपाय किये जायें जिससे गन्ना उत्पादक व चीनी मिलें दोनों ही लाभान्वित हो सकें।

केन्द्रीय गन्ना अनुसंधान केन्द्र, जेल रोड, लखनऊ के वर्ष 1951–52 की वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन में निदेशक, भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के निदेशक श्री जे. एम. साहा ने इंगित किया है कि भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान की आधारशिला दिनांक 16 फरवरी, 1952 को भदरूख फार्म पर माननीय श्री के. एम. मुंशी, खाद्य एवं कृषि मंत्री, भारत सरकार द्वारा रखी गयी। इस सम्बन्ध में संस्थान के गन्ना अनुसंधान प्रभाग के भवन के निर्माण हेतु 4 लाख रू.की धनराशि भी भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति द्वारा स्थानीय सार्वजनिक निर्माण विभाग (पी. डब्ल्यू. डी.) को प्रदान की गयी थी। समिति ने कृषि अभियन्त्रण की कार्यशाला स्थापित करने हेतु 2 लाख रू.तथा ट्रैक्टर व कृषि यन्त्रों की खरीद हेतु 1.15 लाख रू. की स्वीकृति भी प्रदान की गई थी।

लखनऊ में भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान की स्थापना हो जाने से ऐसी आशा की गयी कि खेत में गन्ने की बुवाई से लेकर इसके अन्तिम उत्पाद चीनी आदि बनने तक, गन्ने से जुड़ी सभी जटिल समस्याओं के समाधान हेतु एक सुनियोजित और समेकित अनुसंधान कार्यक्रम संभव हो सकेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान के भारतीय गन्ना अनुसंधान, लखनऊ की परिकल्पना प्रस्तावित भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान, लखनऊ के ''गन्ना अनुसंधान प्रभाग'' के रूप में की गयी थी किन्तु ''चीनी प्रौद्योगिकी विभाग'' की स्थापना मूर्त रूप न ले सकी। उपरोक्त विवरण के अनुसार भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान की आधारशिला तत्कालीन खाद्य एवं कृषि मंत्री माननीय श्री के. एम. मुंशी द्वारा दिनांक 16 फरवरी, 1952 को रखी गयी थी किन्तु भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान के मुख्य

भवन के प्रवेश द्वार के निकट लगी शिलान्यास पट्टिका में अंकित है :–

''भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ की आधारशिला माननीय श्री के. एम. मुंशी, खाद्य एवं कृषि मंत्री, भारत सरकार द्वारा दिनांक 16 फरवरी, 1952 को रखी गयी।''

इस बात की कहीं भी कोई जानकारी/सूचना उपलब्ध नहीं है कि कब और कैसे प्रस्तावित भारतीय चीनी प्रौद्योगिकी एवं गन्ना अनुसंधान संस्थान का नाम परिवर्तित कर भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान कर दिया गया। यह विलुप्त कड़ी अपने आप में एक अन्वेषण का विषय है।

प्रारम्भ में भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ को 554 एकड़ जमीन तथा ''ए'' श्रेणी की एक मौसम विज्ञान वेधशाला प्रदान की गयी। संस्थान ने चार अनुभागों सस्य विज्ञान, कीट विज्ञान, कवक विज्ञान तथा कृषि अभियन्त्रण के साथ शुरूआत की। संस्थान को भारत सरकार ने दिनांक 01 जनवरी, 1954 को अपने नियन्त्रण में ले लिया बाद में संस्थान की गतिविधियों और कार्यकलापों को सुदृढ़ कर इसमें सन् 1956 में पादप कार्यिकी तथा कृषि रसायन एवं मृदा विज्ञान; सन् 1966 में सांख्यिकी और सन् 1969 में वनस्पति विज्ञान तथा प्रजनन अनुभाग स्थापित किये गये। 31 मार्च, 1969 तक संस्थान खाद्य कृषि, सामुदायिक विकास एवं सहयोग मंत्रालय, भारत सरकार (कृषि विभाग) के अधीनस्थ कार्यालय के रूप में रहा। इसके उपरान्त इसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (आई. सी. ए. आर.) द्वारा अधिग्रहित कर लिया गया, बाद में गन्ने से सम्बन्धित राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं से जुड़े अनुसंधान कार्य में समन्वय तथा कृषि जलवायु की विभिन्न स्थितियों में गन्ने की अधिक उपज देने वाली प्रौद्योगिकी के विकास हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा दिनांक 16 जुलाई, 1970 को गन्ने पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना (ए. आई. सी. आर. पी.) स्थापित की गयी जिसका मुख्यालय संस्थान में रखा गया।

संस्थान में बहुस्थलीय परीक्षण द्वारा गन्ने की उन्नत प्रजातियों के विकास, गन्ने की उपज में सुधार तथा फसल सुरक्षा से जुड़ी प्रौद्योगिकी पर केन्द्रित अनुसंधान कार्य निरन्तर जारी है। संस्थान इसी प्रकार प्रगति करते हुए आज अपनी वर्तमान स्थिति गन्ने की खेती से सम्बद्ध बहुमुखी अनुसंधान की ओर सतत् अग्रसर है।

प्रारंभिक स्वरूप

वर्तमान स्वरूप

आमोद–प्रमोद प्रभाग

हज यात्रा 2015

महमूदुल हसन अंसारी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

इस्लाम की बुन्याद मुख्य पाँच स्तम्भों पर है। यह हैं ''ईमान, नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज''। जिन्दगी में एक बार हज करना प्रत्येक उस मुसलमान पर आवश्यक है जिसे अल्लाह ने मक्का तक जाने की ताकत एंव पैसा दिया हो। हज एक विस्वस्तरीय ऐसी धार्मिक सभा है जिस्से विश्व स्तरीय भाई चारे का सन्देश प्रत्येक वर्ष पूरे संसार को जाता है। हमारे नबी मुहम्मद साहब (सलाम हो उन पर) के अनुसार

''जिस व्यक्ति ने केवल अल्लाह को राज़ी करने के लिए हज किया और हज के दिनों में गुनाहों से बचता रहा तो वह हज के बाद ऐसा है जैसा की एक बच्चा संसार में जन्म लेने पर बे गुनाह होता है।''

यहां यह बात जानने योग्य है कि हज का पूर्ण कार्यक्रम मात्र 5 दिनों का होता है। और यह समय ईदुल अज़हा (बकरीद, 10 जिल्लहिज्ज़) के समय से दो दिन पहले और दो दिन बाद तक है। ''उमरह'' साल में किसी भी समय (हज के इन पाँच दिनों को छोड़ कर) किया जा सकता है।

मक्का में काबा शरीफ, दुनिया में सबसे पहला अल्लाह का घर, मस्जिद है, और इसी दिशा पर दुनिया के सारे मुसलमान नमाज़ पढ़ते हैं। इसी कारण संसार की सभी मस्जिदों की दिशा भी काबा शरीफ की ओर ही होती है। आखिरी नबी मुहम्मद साहब (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) मक्का में पैदा हुए। अल्लाह के हुक्म से 40 वर्ष की आयु में नबी बनाये गये और 53 वर्ष की आयु में मदीना हिजरत (प्रस्थान) कर गये, इसी समय से इस्लामी कैलेण्डर हिजरी सन् की शुरुआत होती है। मदीना मक्के से उत्तर की ओर लगभग 450 कि0मी0 की दूरी पर है। दूर दराज से मक्का आने वाले प्रत्येक हाजी को यह शोभा नहीं देता कि वह अल्लाह के घर मक्के में तो आये और मदीने में मुहम्मद साहब (सलाम हो उन पर) को सलाम पेश किये बगैर वापस चला जाए, इसलिए हाजी लोग सलाम पेश करने मदीने भी जाते हैं। यह कार्य हज का हिस्सा नहीं है मुहम्मद साहब (सलाम हो उन पर) ने 52 वर्ष 3 माह की उम्र में अल्लाह के हुक्म के अनुसार मदीने से मक्का आ कर हज किया था। उस समय आपके साथ आस पास से आये हुए लगभग सवा लाख लोगों ने भी आपके साथ हज किया था।

इस नाचीज़ (लेखक) को अल्लाह ने मौक़ा दिया और हज कमेटी ऑफ इण्डिया द्वारा अप्रैल 2015 में हज 2015 की यात्रा हेतु चयनित किया गया। हज कमेटी, भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा संचालित होने वाली समिति है जिसकी पहली बैठक 1927 में हुई थी। और आज भारत से हज पर जाने वाले लगभग सवा लाख लोगों में से एक लाख की व्यवस्था इसी समिति द्वारा की जाती है। समिति के बारे में विस्तृत जानकारी हेतु www.hajcommittee.gov.in पर लागिन किया जा सकता है। सऊदी अरब की हुकूमत, अपनी व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ष हज के लिए विश्व के सभी देशों से आने वाले हज यात्रियों का कोटा निश्चित कर वीजा जारी करती है।

हज 2015 हेतु हज कमेटी ऑफ इण्डिया द्वारा ग्रीन श्रेणी हेतु तय खर्च का ब्योरा

क्र.	मद	खर्च में
1	मक्का में रहने का खर्च	46,100
2	मदीने में रहने एवं खाने का खर्च	11,400
3	ज्हाज़ का किराया (छूट के बाद)	42,000
4	02 अदद सूटकेस	5,100
5	हवाई अड्डे का चार्ज (लखनऊ के लिए)	4,100
6	कुर्बानी एवं अन्य खर्च	71,550
7	अन्य खर्चे	1,000
	कुल योग	**1,81,250**

एक अल्लाह के नेक बन्दे के अनसार ''हज के रास्ते में सबसे ज्यादा ज़रूरी और पहली आवश्यकता यह है कि आपके साथ यात्रा में अल्लाह का कोई नेक बन्दा आपके साथ हो, हज की बारीकियों को जानता हो और नेक भी हो'' अल्लाह का शुक्र है कि मेरी यह आवश्यकता मेरी पत्नी से पूरी हुई। पूरे सफर में वह मेरे साथ रहीं और मैं उनके साथ। कहते हैं किसी कार्य में कामयाबी अल्लाह की मर्जी एवं बन्दों के प्यार और आशीर्वाद का नतीजा होता है।

मैं भी हज में चयनित होने पर इस बात का गवाह बन गया। आप सभी के प्यार एवं आशीर्वाद से अल्लाह ने मुझे यह अवसर प्रदान किया। चयन के पश्चात हज यात्रा पर जाने हेतु छुट्टी एवं फण्ड से पैसे की स्वीकृति हेतु निदेशक डॉ. ओ.के. सिन्हा एवं वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी श्री रत्नेश कुमार जी के साथ–साथ सभी स्टाफ धन्यवाद के पात्र हैं।

देखते–देखते यात्रा का समय करीब आ गया 14 अगस्त को अनुभाग द्वारा भावभीनी विदाई प्राप्त कर तथा 15 अगस्त को भारत का झण्डा फहरा कर मैंने संस्थान से प्रस्थान किया। 16 अगस्त को सायं मेरे पड़ोसियों द्वारा शिव शक्ति अपार्टमेंट, 16–चर्च रोड में जो विदाई समारोह किया गया उस पर अल्लाह का शुक्र अदा किया। 17 को परिवार के सदस्यों एवं दोस्तों से पूरा घर भरा था। बच्चों (पुत्री निकहत 21 वर्ष, पुत्र मंजूर 18 वर्ष) एवं बहन तसनीम की ज़िम्मेदारी चाचा एवं भाईयों पर छोड़ एवं सबको अल्लाह के हवाले कर, दोपहर दो बजे पत्नी के साथ अल्लाह के घर के लिए प्रस्थान किया।

हज हाउस लखनऊ पर रिमोट चेक इन की व्यवस्था सऊदी एयरलाइंस द्वारा थी। सामान ले लिया गया जो अब मदीने में कमरे पर मिलेगा। व्यवस्था को धन्यवाद दिया। हज कमेटी उ.प्र. द्वारा व्यवस्था की जिम्मेदारी बखूबी निभाई जा रही थी। हज के कार्यक्रमों से सम्बन्धित व्यख्यान चल रहे थे। अल्लाह के घर पहुंचने के लिए उचित माहौल बन रहा था। हज कमेटी ऑफ इण्डिया एवं भारतीय उच्चायोग जद्दा (Counselate General of India, Jeddah, CGOIJ) की मिली जुली व्यवस्था के अनुसार हमारी उड़ान को सऊदी अरब के मदीना शहर जाना था। कैसी कैसी तमन्नायें दिल व दिमाग़ पर ज़ोर मार रही थीं।

''तमन्ना है दरख्तों पर तेरे रौज़े के जा बैठे''

रात के लगभग दो बजे ''किंग अब्दुल अज़ीज इण्टरनेशनल एयरपोर्ट, मदीना'' पर जहाज़ उतरा। इमीग्रेशन के पश्चात आगे की जिम्मेदारी ''मुअल्लिम'' के कार्यकर्ताओं ने ले ली। हमारे पासपोर्ट ले कर रिहाइशी कार्ड दिये गये।

हज की व्यवस्था (मकतब) कम्पनी के माध्यम से की जाती है जिसका मुखिया मुअल्लिम कहलाता है। एक मुअल्लिम के पास हजारों हाजियों की व्यवस्था की जिम्मेदारी होती है। मुअल्लिम की व्यवस्थाओं पर नज़र रखने के लिए भरतीय उच्चायोग जद्दा की ओर से सरकारी अम्ला तैनात रहता है।

भारतीय हाजियों की मदद के लिए प्रत्येक हाजी को मोबाइल सिम की व्यवस्था भारत ही से की गयी थी। भारतीय उच्चायोग जद्दा (Counselate General of India, Jeddah, CGOIJ) ने एक मोबाइल ऐप्स के ज़रिये सभी को एक सूत्र में बाँध दिया था। ऐप्स पर प्रत्येक भारतीय की जानकारी (नाम, पासपोर्ट नं0, रुकने का स्थान, कमरा नं0 के साथ, आने जाने की जानकरी सामान खोने की जानकारी, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी इत्यादि मौजूद थी) टोल फ्री नम्बर पर हर तरह की सहायता हेतु 7x24 के आधार पर सुविधा प्राप्त थी। आगे की सभी व्यवस्था CGOIJ के जिम्मे होती है। प्रत्येक हाजी के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी हेतु भारतीय उच्चायोग की ओर से व्यवस्था रहती है। भारतीय उच्चायोग द्वारा कराई जा रही व्यवस्था विश्वस्तरीय मानकों के अनुरूप, विशिष्ट गुणवत्ता वाली पायी गयी। जो अत्यन्त सराहनीय एवं प्रत्येक भारतीय हाजी के लिए गर्व की बात है।

मुअल्लिम के कार्यकर्ताओं ने पहले से बुक होटलों में ले जा कर ठहराया। यहां (मदीना शहर में) 8 दिन ठहरना है। होटल साफ सुथरा, सुसज्जित। साथी के रूप में हाजी शमीम भाई का परिवार साथ। सभी होटलों की स्थिति मुहम्मद साहब की आराम गाह के करीब। कमरे पर पहुंचा, खिड़की का पर्दा हटाते ही सामने मस्जिदे नबबी (नबी की मस्जिद) का दीदार हुआ, अल्लाह का शुक्र बजा लाया।

बुलन्दी पे मेरा नसीब आ रहा है।

मुहम्मद (सल्ल.) का रौज़ा करीब आ रहा है।।

कमरे पर सभी व्यवस्थाएं, खाने, पीने नाश्ते का इन्तिज़ाम, पर दिल नहीं लगता। धुन थी की रौज़े पर जल्द पहुंच जाएं। दिल दीवाने को क्या कहिये, एक धुन है, एक रट है एक शौक और इन्तेज़ार है–

किस हसरत से बेदार हुए किस उजलत से तैयार हुये।

फिर नूर की जाली देखेंगे ऐ शौक़े नज़र तेरा रुत्बा।।

दयारे पाक़ नज़रों के सामने हे जहां आज से चौदह सौ बरस पहले खुद मुहम्मद साहब (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) चला फिरा करते थे। यह पाक सरज़मी जहां फरिश्ते भी आने पर गर्व करते हैं। यह वह सरज़मी है जहां से इस्लाम निकला और सारे जहान में फैल गया। बचपन में लाखों बार इस की बड़ाई सुनी, हज़ारों बार तमन्नाओं ने ज़ोर किया, आरज़ूऐं हजार बार मचलीं। आज वह घड़ी नसीब हो रही है तो क़िस्मत पर नाज़ हो रहा है।

मदीने प्रत्येक समय की नमाज़ नबी की मस्जिद में पढ़ना, मौका मिलने पर

रौज़े पर हाज़िरी ही दिन चार्या रही। औरतों के लिए मस्जिद में पर्दे के साथ अलग व्यवस्था है और रौज़े पर हाज़िरी का समय भी अलग से निश्चित रहता है।

मस्जिदे नब्वी एक नज़र में

- इस्लामी इतिहास में यह दूसरी मस्जिद एवं विश्व की सबसे बड़ी मस्जिद है।
- मस्जिद वातानुकूलीत एवं प्लांट मस्जिद से 7 कि.मी. दूर स्थित है।
- बाहरी स्थान में भी खुलने बन्द होने वाली छतरियों के साथ एयर कूल्ड की व्यवस्था।
- साफ पर्यावरण के वास्ते मस्जिद में 27 खुलने वाले गुम्बद।

मदीना शहर में सड़कों पर यातायात व्यवस्था, पार्किंग, बिजली, पानी की व्यवस्था एवं सफाई का प्रबन्ध, चुस्त दुरुस्त दिखा। खजूर यहां की मुख्य खेती होने के कारण लगभग सभी हाजियों ने खजूरों की खरीदारी यहीं से की। मदीने में आठ दिन

रह कर, चालीस नमाज़े पढ़ कर अब मक्का की तरफ कूच करने का समय आ गया है।

सभी को अल्लाह के घर पहुंचने की उत्सुकता है। यह वह पाक स्थान है जहां पहुंचने की तमाम करोड़ों मुसलमानों के दिल में मचलती है। बैतुल्लाह (अल्लाह का घर) के नाम मात्र से ही आंखों में चमक और दिलों में खुशियां पैदा हो जाती हैं। यहां वह अल्लाह का घर है जिस की दीवारों को हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने अपने बेटे हज़रत इस्माईल की सहायता से चुना थां यहां वह वादी है जिसमें हज़रत हाजरा ने बच्चे के लिए पानी की तलाश में बेताबी से दौड़ लगायी थी। यहीं वह ज़मज़म का चश्मा है जो उस बच्चे (हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम) के पैर रगड़ने से जारी हुआ था और आज तक जारी है। इस पाक स्थान में ही वह वादी 'मिना' है जहां हज़रत इब्राहीम अपने जवान बेटे हज़रत इस्माईल को अल्लह के हुक्म के अनुसार कुरबान करने को ले कर गये थे। यहीं वह मैदाने अरफ़ात है जहां बन्दे अल्लाह से दुआएं मांगते हैं। हज का मुख्य कार्यक्रम उपर्युक्त स्थानों पर हुई घटनाओं की याद दिलाता है। उक्त स्थानों पर अल्लाह के हुक्म के अनुसार, हमारे नबी मुहम्मद साहब सल्ल. ने जो कार्यक्रम किये वह आज सभी हाजी उसी का अनुसरण कर प्रत्येक वर्ष इसकी याद ताज़ा करते हैं।

मदीने की गलियों और जन्नत की क्यारी को हसरत भरी निगाहों से देखते हुए अलविदा कहा। नबी को सलाम पेश कर आगे बढ़े।

''मैं हाजिर हूँ, ऐ अल्लाह। मैं हाजिर हूँ, मैं हाजिर हूँ। तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाजिर हूँ। तमाम तअ़रीफ और नेअ़मत तेरे लिए है और मुल्क तेरा ही है, तेरा कोई शरीक नहीं''।

मक्का करीब होता जा रहा है। सारे जहान के बादशाह का घर करीब आता जा रहा है। प्रत्येक हाजी कफ़न बरदोश (मात्र दो चादरें लपेटे हुए) मस्तानावार, सर खुला हुआ, ज़बान पर लब्बैक जारी (ऐ अल्लाह मैं हाज़िर हूं, हाज़िर हूं) अल्लाह के जलाल से बदन कांपता हुआ, निगाह झपकती नहीं। अल्लाह के घर के दीदार के लिए आंखें अतंतः एक होटल पर पहुँचे। कमरे में साथी मिले एक बुजुर्ग, उम्र 74 वर्ष नाम मुहम्मद अहमद उर्फ अल्लन, राय बरेली के रहने वाले, पहले भी हज कर चुके। अगले आने वाले कार्यक्रमों को अंजाम देने में इनका मार्गदर्शन बहुत काम आया। अल्लाह इनको उचित बदला दे।

मस्जिदे–ए–हरम एक नजर में

- विश्व की पहली मस्जिद, गोलाई में बनी हुई मस्जिद
- बीच में काबा शरीफ, आकार लगभग 40'x40'x40'
- क्षेत्रफल– वातानुकूलित – 9 लाख, बाहरी क्षेत्र में – 30 लाख
- कुल क्षेत्रफल 3,56,800 वर्ग मी0 (88. 2 एकड)

सभी हाजी कमरे पर सामान रख काबा शरीफ की तरह चल दिये प्रत्येक आने वाले अपने गुनाहों पर शर्मसार, हाथ अल्लाह के आगे फैलाए हुए अपने मुजरिम होने का सबूत देते हुए, प्रत्येक रहमत का

तलबगार। इस नाचीज़ गुनहगार ने भी मौके का फायदा उठाते हुए अल्लाह के घर के सात चक्कर लगाए। अपनी बिपता सुनाई, रोये गिड़गिड़ाए और लिपट गये। जैसे कोई बच्चा माँ से लिपट कर हट करता है। अपने गुनाहों की माफी कराना मकसद था। दुनिया मांगी, आखिरत मांगी अपने लिए, दोस्तों, रिश्तेदारो, पड़ोसियों, सहयोगियों देशवासियों सभी के लिए दुआ की। फिर पास बैठ कर शुक्राने (धन्यवाद) की नमाज़ अदा की। पेट भर ज़मज़म पिया। ज़मज़म पीने की व्यवस्था सऊदी सरकार की ओर से बहुत अच्छी है।

ज़मज़म पी कर उस सफा–मरवा की पहाड़ी की तरफ गये जहां आज से लगभग छः हज़ार साल पहले बीबी हाजरा ने पानी की तलाश में दौड़ लगाई थी, प्यासे बेताब बच्चे के लिए, और अल्लाह ने बच्चे की ऐड़ियों की रगड़ से पानी जारी कर दिया जो आज भी ज़मज़म के रूप में जारी है। हम सभी ने भी सफा–मरवा पहाड़ी पर तेज़तेज़ चल कर सात चक्कर लगाए, बीबी हाजरा की अल्लाह पर भरोसे की याद ताज़ा की। दुआ की, बाहर आ कर बाल मुंडाए। अब जा कर उमरा पूरा हुआ यानी अल्लाह के दरबार में हाज़िरी के जो आदाब हमारे नबी ने हमें बताए एवं स्वयं करके दिखाए उसी प्रकार हमने उसे दोहरा कर, पूरा किया। अब दो चादरें हटा कर आम दिनों वाले कपड़े पहन सकते हैं। अहराम (दो चादरों) की अन्य पाबन्दियां भी खत्म हुईं। कमरे पर वापस आये आराम किया।

मक्का एक घाटी में बसा हुआ है। सतह समन्दर से ऊँचाई लगभग 1350 फुट और समुद्र से दूरी लगभग 80 किमी पूरब को, घाटी बहुत संकरी और गहरी, खेती के लिए अनुचित, पानी का मात्र एक स्रोत, ज़मज़म। बाकी पानी की व्यवस्था जद्दा से पाइपों के ज़रिए समुद्र का पानी ला कर साफ कर, उपलब्ध करायी जाती है। सूखी पहाड़ियों के कारण गर्मी बहुत अधिक, बारिश बहुत कम। आवश्यकता का सभी सामान विदेशों से ही आता है 25 दिन कैसे कटे पता न चला, प्रत्येक दिन छः से आठ घंटे मस्जिदे हरम में बिताए। काबा शरीफ के चक्कर लगाए दुआएं की। कमरे से आने जाने और मस्जिदे हरम में पैदल चलने की आदत पड़ गयी। औसतन छः किमी प्रतिदिन पैदल चलने की आदत पड़ गयी। हज के दिन करीब आ गये वह दिन जिसके लिए लम्बा सफर तय कर आए हैं सभी बेताब हैं तैयारियाँ चल रही हैं। भली प्रकार नहा धोकर एक दिन पहले ही तैयारी पूरी कर ली है।

"दिन गिने जाते थे जिस दिन के लिए"

इन पाँच दिनों में हज के मुख्य कार्य हैं:–

1. मिना में तीन रात ठहरना।
2. अरफात के मैदान में कुछ देर लिए ठहरना एवं सायंकाल दुआएं करना।
3. मुजदलफा में एक रात में कुछ देर के लिए आराम करना।
4. तीन शैतानों को कंकरी मारना, कुरबानी करना/करवाना।
5. मिना से मक्का आ कर काबा का तवाफ करना एवं वापस मिना जाना।

पहले के चार कार्य एहराम (दो चादरें लपेट कर) बांध कर करना होता है। मिना की दूरी मक्का से लगभग 4 किमी है। इसी घाटी में अल्लाह के हुक्म से हज़रत इब्राहीम अपने बेटे हज़रत इस्माईल को

कुरबान करने ले गये थे। रास्ते में तीन जगह शैतान ने बहकाया था। इन्हीं तीन जगहों पर हाजी कंकरियां मारते हैं। मिना में ठहराव प्रत्येक हाजी का अस्थाई होता है। सभी के लिए एयरकूल, वाटरप्रूफ एवं फायरप्रूफ टेंट लगे हुए हैं। मिना से एक दिन के लिए अरफ़ात के मैदान, जो लगभग 16 किमी दूर है जाना एवं सूरज डूबने तक रह कर मुजदल्फा होते हुए वापस आना प्रत्येक हाजी को आवश्यक है। अरफात के मैदान में की जाने वाली दुआएं बहुत अहम (महत्वपूर्ण) हैं।

उपर्युक्त कार्यक्रम के बाद हज पूरा हुआ। अब आया विदाई का समय। विदाई के समय अतिथि, मेज़बान से मिले बगैर चला जाए तो कैसा लगेगा? अतः हमारे नबी ने हज का आवश्यक एवं आखिरी कार्यक्रम ''विदाई तवाफ'' रखा है। वापसी के दिन 25 सितम्बर, 2015 को विदाई हेतु अल्लाह के दरबार में प्रस्तुत हुए। तवाफ़ किया दुआएं कीं और फिर आने का वादा कर रुख़सत हुए, यहां आना सबको मुबारक। अल्लाह सब की भलाई रखे। 29 सितम्बर, 2015 को दिन में सऊदी एअरलाइन्स द्वारा रिमोट चेक इन की व्यवस्था के अनुसार होटल से ही सामान ले लिया गया। रात 4 बजे जद्दा हवाई अड्डे पर पहुंचे। कार्यवाही पूरी कर जहाज़ उड़ा। 30 सितम्बर, 2015 को शाम 7 बजे लखनऊ हवाई अड्डे पर वापसी हुई।

आमोद–प्रामोद प्रभाग

मौन में छिपा है आनन्द

आर.एस. चौरसिया
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

एक किसान खेत में काम कर रहा था अचानक उसे लगा कि उसकी घड़ी अनाज घर में खो गयी है। वह कोई साधारण घड़ी नहीं थी, उसे बहुत प्रिय थी। क्योंकि उससे उसकी कई यादें उससे जुड़ी थी। ऊपर नीचे हर तरफ ढूड़ने के बाद उसने हिम्मत छोड़ दी। फिर उसने खेत के बाहर खेल रहे बच्चों को बुलाया और उन्हे घड़ी ढूड़ने में मदद करने के लिए कहा। उसने बच्चों को यह भी कहा कि जो भी घड़ी ढूढ़ कर लायेगा, उसे पुरस्कार दिया जायेगा। यह सुन कर बच्चों अनाज घर के अन्दर गये और घड़ी ढूढ़ने में लग गये। उन्होंने हर तरफ घड़ी को ढूढ़ा। यहां तक की उन्होंने काटकर रखी हुई फसल का एक–एक गट्ठर भी खोल दिया परन्तु घड़ी नहीं मिली और वे भी बाहर आ गये। किसान हताश और निराश होकर वापस जाने लगा तो उनमें से एक छोटा सा बच्चा आया और बोला कि क्या आप मुझे एक मौका और देंगे? किसान ने बच्चे को देखा, कुछ सोचा और कहां हां, जरूर जाओ। बच्चा शांत एवं गंभीर दिख रहा था। बच्चा अन्दर गया कुछ देर बाद वह आया तो उसके हाथ में घड़ी थी। किसान यह देखकर खुश हो गया। उसे हैरत हो रही थी। उसने लड़के से पूछा, तुम्हें घड़ी कैसे मिली। लड़कें ने कहा मैने कुछ नहीं किया बस चुपचाप जमीन पर बैठ गया शांत कमरे में मैनें घड़ी की टिक–टिक करती आवाज को सुना फिर उसी दिशा में घड़ी ढूढ़ने लगा। जल्द ही मुझे यह मिल भी गयी। कितनी बार हमारे साथ भी ऐसा ही होता है। तनाव के क्षणों के अपेक्षा शांत चित्त रहकर हम बेहतर काम कर पाते हैं। मौन रहकर अधिक गहरी आवाजें सुनायी देती है। हर रोज कुछ देर शांत बैठने का अभ्यास जीवन में कई तरह के बदलाव लाता है। 10 से 15 मिनट का समय चीजों पर आपकी पकड़ मजबूत बना देता है।

नश्तर

चमन सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मैं शून्य में घूर रहा था कि अचानक वे सामने आये, मैं हडबड़ाहट में उनसे पूछ बैठा, यार बहुत उदास व निराश नजर आ रहे हो। बस, इतना क्या था कि वह अन्दर दबाये हुए सारी भड़ांस निकाल दियेः– मैंने बॉस को खुश करने के लिए क्या– क्या नहीं किया। बीबी–बच्चों को समय न देकर बॉस की जी–हुजूरी करता रहा, और आज जैसे ही मेरे से बड़ा चाटुकार उनको मिला तो बस मुझे दूध में मक्खी समझकर दूर फेंक दिया, बॉस की बीबी– बच्चों को मैंने योग के भी कई आसन सिखाये।

जैसे – व्यापम व ललित मोदी का आसन घोटालासन है। कामचोर व चमचों का आसन चमचासन है। महिलाओं में चुगली का विशेष आसन चुगलासन है। कार्यालयों में बाबूओं का प्रमुख आसन घपलासन है। नेताओं का देश के लिए प्रधान आसन भ्रष्टासन है। चाटुकार का भी बॉस के लिए आसन चाटुकासन है।

हमने उन्हें खूब समझायाकि चाटुकारिता छोड़कर अन्तरात्मा की सुना करो और चाटुकारिता से मुक्ति पाकर हकीकत का जाल बुना क्योंकि इसमें फुरसत की भी गुंजाईश नहीं होती है और चाटुकारिता के रेस में फिनिशिंग लाईन भी नहीं होती है। जिस तरह आज की व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार है, कामचोरों की भरमार है, गैरों की क्या कहें, मेरे तो कवि मित्र भी चाटुकार है, उनकी कविता में भी चाटुकारिता रहती है, बॉस के लिए शब्दों में शहद की नदियॉं बहती हैं। इसलिए आप को तो नैतिकता के आधार पर नौकरी ही छोड़ देनी चाहिए।

बस! वह आग–बबूला होकर बोले, नैतिकता का पाठ मत पढ़ाओं क्या मुझे ईमानदारी व नैतिकता के आधार पर नौकरी मिली थी? उसके लिए मेरे बाप ने ऊँची सिफारिश लगवाई थी और लाखों की रकम खर्च की थी। मेरे समझाने का कोई असर नहीं हुआ और उल्टे मुझे ही नसीहत दे डाली, सरकारी है किसी के बाप का नहीं, जितना खा सको खा लो, चमन बाबू हमारी मानों कुछ नहीं रखा है ईमानदारी व नैतिकता में, चाटुकारिता में जो मजा है, उसका स्वाद तुम क्या जानों? चाटुकारिता करके देखो, बड़ा सूकून मिल जायेगा। परिवार व समाज की छोड़ो, बॉस की नजर में तो ऊँचा उठ जायेगा।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

पुस्तकालयाध्यक्ष – किताब प्रबंधन का मास्टर

आशीष सिंह यादव

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

पुस्तकालयाध्यक्ष (लाइब्रेरियन) का काम आज किताबों को व्यवस्थित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक हाईटेक काम में तब्दील हो गया है। इसका दायरा भी काफी विस्तृत हो गया है और इसमें कैरियर की संभावनाएं भी काफी बढ़ गई हैं। आप भी इस क्षेत्र में कैरियर बना सकते हैं। आइये जाने पुस्तकालयाध्यक्ष के बारे में:

पुस्तकालय यानी किताबों से प्यार करने वालों का खास जगह। इस पुस्तकालय के रख रखाव की जिम्मेदारी होती है पुस्तकालयाध्यक्ष की। आज पुस्तकालय की किताबें बुक शेल्फ से निकल कर कम्प्यूटर के माध्यम से डिजिटल हो गई हैं और इंटरनेट और मोबाइल ने इसे और भी आसान बना दिया है। अब पुस्तकालयाध्यक्ष का काम केवल किताबों को इधर से उधर रखने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हाईटेक काम में तब्दील हो चुका है। पुस्तकालयाध्यक्ष का काम पढ़ने योग्य सामग्री को संगठित करना, उसे डिजिटल लुक देना, सामग्री को प्रभावी ढंग से प्रयोग करने में सहायता करना और पाठक को सही समय पर सही सूचना प्रदान करना है। पुस्तकालय अब केवल किताबों के रखने और पढ़ने की जगह भर नहीं रह गई है, बल्कि नॉलेज सेंटर में तब्दील हो चुकी है। आप भी इस नॉलेज सेंटर के कर्ता–धर्ता बन सकते हैं।

कौन होता है पुस्तकालयाध्यक्ष – पुस्तकालय एक साइंस बन चुकी है। इस साइंस के तीन तरह के काम हैं– पाठकों को सामान्य सेवाएं देना (जैसेः पुस्तकों का आदान–प्रदान), तकनीकी कार्य (किताबों की एंट्री, सूची बनाना या इंडेक्सिंग) तथा प्रशासनिक काम (सुविधाएं बढ़ाने या पुस्तकालय से संबंधित कामकाज को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों से संपर्क रखना और पुस्तकों की खरीदारी आदि)।

पुस्तकालयाध्यक्ष के काम – जानकारी का विश्लेषण करना तथा यह सुनिश्चित करना कि पाठक को सही समय पर सही किताबें मिल जाएं। रिकॉर्डस तैयार करना, नई किताबों पर नजर रखना और पाठकों के लिए उन्हें उपलब्ध कराना। साथ ही यह भी सुनिश्चित करवाना कि पुस्तकालय में किताबें वापस भी आएं। पुस्तकालय के अन्दर बेहतर माहौल तैयार करना। ये वे काम हैं, जिन्हें एक अच्छा पुस्तकालयाध्यक्ष आसानी से कर सकता है।

किस तरह के पद – एक व्यवसाय के रूप में लाइबेरियनशिप रोजगार के अनुकुल अवसर प्रदान करती है। आकार के अनुसार किसी पुस्तकालय में विभिन्न तरह के लोग होते हैं। सबसे बड़ा पद पुस्तकालयाध्यक्ष का होता है, यह पद प्रोफेसर पद के समतुल्य है। इसके बाद डिप्टी पुस्तकालयाध्यक्ष (रीडर पद के समकक्ष), सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष (लेक्चरर पद के समतुल्य), पुस्तकालय सहायक या तकनीकी सहायक आदि के पद होते हैं। ये सभी पुस्तकालय एंड इंफॉर्मेशन साइंस में प्रशिक्षित होते हैं।

इस क्षेत्र में आज कैरियर की अनेक संभावनाएं हैं। पुस्तकालयों तथा सूचना केन्द्रों में रोजगार दिया जाता है। प्रशिक्षित व्यक्ति पुस्तकालय एवं सूचना अधिकारी, ज्ञान प्रबंधक/अधिकारी सूचना कार्यपालक, निदेशक/सूचना सेवा अध्यक्ष, प्रलेखन अधिकारी, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, उप पुस्तकालयाध्यक्ष, वैज्ञानिक सूचना अधिकारी तथा सूचना विश्लेषक हो सकते हैं।

संभावनाएं – स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, निजी शैक्षिक संस्थानों में तो पुस्तकालय होती ही है, इसके अलावा सरकारी और निजी संस्थानों में भी पुस्तकालय के साथ–साथ सन्दर्भ विभाग या रेफरेंस डिपार्टमेंट होता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रसार ने भी रेफरेंस विभाग को बढ़ावा दिया है।

नेशनल नॉलेज कमीशन द्वारा 2016 तक करीब 1500 विश्वविद्यालय खोलने की सिफारिश से आने वाले दिनों में बड़ी संख्या में पुस्तकालय खुलेंगी। कॉरपोरेट कंपनियां भी अपने यहां पुस्तकालय को प्रमोट कर रही हैं और स्टाफ को आकर्षक सैलरी ऑफर कर रही हैं। अब अधिकतर पुस्तकालय खुद को वीडियो पुस्तकालय, कैसेट–सीडी पुस्तकालय, कम्प्यूटर पुस्तकालय, साइबर पुस्तकालय, इंटरनेट पुस्तकालय, फोटो पुस्तकालय, सॉन्ग पुस्तकालय (रेडियो स्टेशन या एफएम चैनल्स में), स्लाइड पुस्तकालय के रूप में बदल रही हैं। इसके लिए ट्रेंड प्रोफेशनल्स की जरूरत है।

विषय आधारित पुस्तकालय – आजकाल हर तरह की किताबों के लिए 'सब्जेक्ट स्पेसिफिक पुस्तकालय' खोलने का चलन बढ़ रहा है। यहां तक कि परम्परागत किताबों को भी डिजिटल किया जा रहा है। मोबाइल और कंप्यूटर का चलन बढ़ रहा है, इसलिए प्रकाशक अपनी किताबों को डिजिटल बनाने में जुटे हुए

हैं। आजकल ऑनलाइन पुस्तकालय का चलन चल पड़ा है।

एकेडमिक पुस्तकालय – इस तरह की पुस्तकालय शैक्षणिक संस्थानों में होती है।

डिजिटल पुस्तकालय – इस तरह की पुस्तकालय फिल्मों के लिए इस्तेमाल होती है।

लर्निंग रिसोर्स सेंटर – आजकल कई तरह के रिसोर्स सेंटर खोले जा रहे हैं, जिनें सरकारी और निजी, दोनों क्षेत्र शामिल हैं।

ऑनलाइन पुस्तकालय – इस तरह की पुस्तकालय इंटरनेट पर उपलब्ध रहती है, जहाँ पैसा देकर और मुफ़्त, दोनों ही तरह से किताबें पढ़ी जा सकती हैं।

रोजगार के क्षेत्र – पुस्तकालय साइंस अपने आप में एक बड़ा क्षेत्र है। देश में सभी विश्वविद्यालयों में इससे संबंधित कोर्स चलाए जा रहे हैं। इस क्षेत्र में आने वाले समय में रोजगार की संभावनाएं और ज्यादा बढाने की उम्मीद है। भविष्य में देश में कई नए देसी और विदेशी विश्वविद्यालय खुलने वाले हैं। ऐसे में रोजगार के अवसर और ज्यादा प्रबल होंगे।

रोजगार देने वाले संस्थानों में प्रमुख हैं: भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर.), विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनेस्को, संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र, मंत्रालय तथा अन्य सरकारी विभागों के पुस्तकालय, राष्ट्रीय स्तर के प्रलेखन केंद्र, पुस्तकालय नेटवर्क, समाचार पत्रों के पुस्तकालय, न्यूज चैनल्स, रेडियो स्टेशन के पुस्तकालय, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, केन्द्रीय सरकारी पुस्तकालय, बैंकों के प्रशिक्षण केन्द्र, राष्ट्रीय संग्रहालय तथा अभिलेखागार, विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत सरकारी/गैर–सरकारी संगठन, सी.एस.आई.आर., डी.आर.डी.ओ., आई.सी.एस.एस.आर., आई.सी.एच. आर., आई.सी.एम.आर., आई.सी.एफ. आर.ई. जैसे अनुसंधान तथा विकास केंद्र, विदेशी दूतावास तथा उच्चायोगों में, सूचना प्रदाता संस्थाओं में इंडेक्स, डिजिटल पुस्तकालय ऑफ इंडिया आदि में रोजगार की प्रबल संभावनाएं हैं।

वेतन – पुस्तकालय असिस्टेंट या टेक्निकल असिस्टेंट की शुरुआती सैलरी पंद्रह से बीस हजार रुपये प्रतिमाह होती है। विश्वविद्यलायों या शैक्षणिक संस्थानों में असिस्टेंट पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति होने पर और अच्छा वेतन मिलता है।

विशेष गुण – जो छात्र इस क्षेत्र से जुड़ना चाहते हैं, उनके अन्दर कुछ गुणों का होना आवश्यक है: पढ़ने में रुचि, मैनेजमेंट के गुण, टीम प्रबंधन के गुण, तकनीक का ज्ञान, नई चीजों के बारे में जानने के लिए उत्सुकता, योजनाएं बनाने की क्षमता।

पुस्तकालय विज्ञान पढ़ाने वाले संस्थान – देश के लगभग 80 विश्वविद्यालय पुस्तकालय साइंस से संबंधित कोर्स चलाते हैं। यह कोर्स आप रेगुलर और डिस्टेंस, दोनों तरह से कर सकते हैं। कुछ के नाम निम्न हैं:

- उत्तराखंड ओपन यूनिवर्सिटी, हल्द्वानी
- अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
- इलाहाबाद कृषि डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
- बनारस हिंदी विश्वविद्यालय, वाराणसी
- बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी
- डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
- जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- पटना विश्वविद्यालय, पटना
- दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- डॉ भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ
- उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
- इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पुस्तकालय विज्ञान में कोर्स:

- बारहवीं पास करने के बाद: पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में प्रमाण पत्र पाठ्यक्रम (सी.एल.आई.एससी. या सी.लिब.)। पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में डिप्लोमा पाठ्यक्रम (डी.एल.आई.एससी. या डी.लिब.)
- ग्रेजुएशन के बाद: पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में स्नातक (बी.एल.आई.एससी. या बी)।
- मास्टर डिग्री के लिए: पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में मास्टर (एम.एल.आई.एससी. या एम.लिब.) के लिए किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से बी.एल.आई.एससी. अथवा बी.लिब.।
- एमफिल या पीएचडी के लिए: पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान में एमफिल के लिए किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से एम.एल.आई.एस.सी. अथवा एम.लिब, जबकि पीएचडी के लिए किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से एम.एल.आई.एस.सी.।
- सर्टिफिकेट या डिप्लोमा कोर्स के लिए योग्यता: बैचलर ऑफ पुस्तकालय एंड इंफॉर्मेशन साइंस (बी.लिब.) कोर्स करने के लिए किसी मान्यता प्राप्त संस्थान या विश्वविद्यालय से स्नातक होना जरूरी है, जबकि सर्टिफिकेट या डिप्लोमा कोर्स करने के लिए बारहवीं पास होना आवश्यक है।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

'जीवात्मा'

प्रमिला लाल
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

संसार सपने के समान हैं, जैसे ही नींद खुली, सपना टूटा। आदि से ऐसा ही चलता आया है। सैकड़ों प्रयत्न करके मनुष्य बारी–बारी से अपना ढ़ोल बजाके चलते बने। क्योंकि मृत्यु ऐसी बलवान शक्ति है जिसके जाल रूपी ताने–बाने से कोई छूट नहीं सकता। क्या छोटा क्या बड़ा इसमें किसी का वश नहीं चलता, जब बड़े–बड़े साधु महाराज अपने अपने समय पर अथाह ब्रहम स्वरूप के समुद्र में गोता लगाकर समा गये। उनके नाम और कर्म के सिवाय कुछ भी नहीं रहा। फिर ऐसे मायावी जगत पर फिदा होना अर्थात माया में लिप्त होना केवल मूर्खता है। ये जगत जो सिर्फ देखने में आँखों को सुहाता है कुछ भी नहीं, क्षण भंगुर है, हम सभी इसके माया जाल में फँसकर कठपुतली की तरह नाचते हैं। अपना बहुमूल्य जीवन इसी संसार में बने रिश्ते की डोर में उलझाते रहते हैं और कब अंत समय करीब आ जाये इसकी फिक्र छोड़ दूसरों के कर्मों के विचार से अपने आप को विकसित करने में पूरा जीवन बिता देते हैं। जब गुरू की संगत व उनकी असीम कृपा से अशुभ विचार जैसे अज्ञान, मोह, बंधन, लालच, चापलूसी अन्दर में सत्य सरलता नहीं, विषय वासना, पर निंदा देह अभिमान आदि का अपने आप से सामना होता है तो महसूस होता है कि मन ही दुश्मन निकला जब मन नेक संगत करके शुभ कर्मों में लगता है तब सब पापों से पवित्र हो जाता है। और कुछ समय के बाद इस शुभ स्वभाव की सहायता से उस पद पर पहुँच जाता है जहाँ मन का पद पार करके परमात्मा में समा जाता है। अर्थात् जीवरूपी आत्मा परमात्मा में विलीन होकर परमानन्द को प्राप्त होता है।

''माया महा ठगिनि हम जानी''

''क्या यही दुनिया है''

विवेक लक्ष्मी

जब मै छोटा था तो यही सोचता था,
यह दुनिया कैसी होगी,
जब एक क्लास पास करता तो सोचता कि बहुत जल्द ही बाराहवीं पास होगी,
तब देखुगाँ ये दुनियाँ कैसी होगी।
फिर बाराहवीं भी पास किया तो कालेज कैसा होगा,
फिर मै भी यही सोचता था कि कालेज के बाद देखुँगा कि दुनिया कैसी होगी।
कालेज के दिन भी गए,
फिर जुट गए कि नौकरी ले लू फिर देखुँगा कि दुनिया कैसी होगी।
कई दोस्त बने, कुछ साथ रह गए तो कुछ साथ छोड गए,
फिर भी स्कूल दोस्त कुछ अलग थे, साथ न रह कर भी साथ रह गए।
फिर मैनें सोचा कि क्या दुनिया ऐसी है?
नौकरी मिली तो सभी ने बोला अब शादी कर लो,
फिर मैंने सोचा इसके बाद दुनिया देखूँगा।
शादी हुई तो जिम्मेदारियाँ बढ़ी,
फिर मैंने सोचा कि ये जिम्मेदारियाँ खत्म हो तो देखूँगा कि ये दुनिया कैसी है।
जिम्मेदारियाँ खत्म भी नही हुई कि एक दिन ईश्वर का बुलावा आया और मैं दुनियाँ से चला गया।
''क्या यही दुनिया है''!

मैं बोझ नहीं हूँ

पल्लवी
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

शाम हो गई अभी तो घूमने चलों न पापा,
चलते–चलते थक गई, कंधे पर बिठा लो न पापा,
अंधेरे से डर लगता सीने से लगा लो न पापा,
मम्मी तो सो गई, आप ही थपकी देकर सुलाओं न पापा,
स्कूल तो पूरी हो गई, अब कालेज जाने दो न पापा,
पाल–पोस कर बड़ा किया, अब जुदा मत करो न पापा,
अब डोली में बिठा ही दिया तो आँसू मत बहाओ पापा,
आप की मुस्कुराहट अच्छी हैं, एक बार मुस्कुराओ न पापा,
आप ने मेरी हर बात मानी, एक बात और मान जाओ न पापा,
इस धरती पर बोझ नहीं मैं
दुनियाँ को समझाओं न पापा।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

गूढ़ प्रश्न

ब्रह्म प्रकाश
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कलयुग आ गया है कलयुग, बढ़ गया है चारों ओर भ्रष्टाचार।
अखबारों की खबरें बनती है, पूरे भारत में होता महिलाओं पर अत्याचार।।
इन सब खबरों के पीछे सदा, पुरूषों का ही होता है दोष।
उनके ही अत्याचार से सताई जाती, बालिकाएं व महिला निर्दोष।।
अतः सोचा गया कैसे ढूंढा जाए, इस बढ़ती समस्या का समाधान।
समाज के सभी वर्गों ने बैठकर, की मंत्रणा व निकाला उसका निदान।।
महिलाओं की इज्जत करना लड़कों को, बचपन से ही सिखाना होगा।
अतः सरकार ने निर्गत कर दिए, शिक्षा विभाग को यह आदेश।
जिसमें था बचपन से बच्चों को, महिलाओं की इज्जत करने का निर्देश।।
शिक्षिकाओं से कहा गया कि लड़कों को, नर्सरी के.जी, कक्षा से ये समझाएं।
नारी देवी जैसी पूज्यनीय होती है, यह बात बच्चों को अच्छी तरह याद कराएं।।
जिससे लड़के बड़े होकर समाज की सभी महिलाओं की इज्जत कर सकें।
व हर उम्र की महिलाएं भी देश में सिर ऊँचा करके वर्ग व इज्जत से जी सकें।।
एक स्कूल की प्रधानाचार्य ने अपनी, सभी शिक्षिकाओं को सरकारी आदेश सुनाया।
शिक्षिकाओं ने अपनी कक्षाओं में उसी दिन से ही, इसे अमल में लाने का भरोसा दिलाया।।
एक शिक्षिका ने छात्रों से कहा कि, जो चाहते हो तुम अपने चरित्र का निर्माण करना।
आज से ही दिखने वाली हर महिला को तुम अपनी ही माँ समझना।।
ऐसा समझ कर ही तुम दुनिया में, एक दिन महान बनोगे।
अपने अच्छे कर्मों से अपने, मां बाप का नाम रौशन करोगे।।
एक नटखट छात्र उठा व बोला सच टीचर, इससे हमारा तो चरित्र सुधर जाएगा।
पर हर महिला को माँ समझने से, क्या पिताजी का चरित्र तो नहीं बिगड़ जाएगा?

गन्ने का संदेश

संतराम
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

गन्ने का कहना मेरे अनेको नाम।
कोई कहें गन्ना कोई कहे ईख, और इक्षु।
नामों से करे गुणगान।।
मेरा रस जो सेवन करे अनेकों ब्याध दूर हो जाय।
गर्मी में करें सेवन प्यास बुझे पीलिया में आए काम।।
मेरे रस से बने गणु राब व सिरका तथा अनेको पकवान।
बने चीनी तथा शक्कर आए काम।।
मुझे मीलों में भेजा जाय।
जिससे बने चीनी जो देश–विदेश को जाय।।
बचे अवशेष किसानों के आए काम।।।
डाले गन्ने की खाद, बढ़े उपज अधिक।
भा.ग.अनु. से विकसित उन्नत किस्मों का चयन करें।।
किसान खुशहाल होई जाए।।

आमोद–प्रमोद प्रभाग

मंगल अभियान (मार्स ऑर्बिटर मिशन) : एक सफल गाथा

आदिल जुबैर
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

मंगल ग्रह (मार्स) : संक्षिप्त परिचय

मार्स अर्थात मंगल ग्रह, यह सौरमंडल में सूर्य से चौथा ग्रह है। पृथ्वी से इसकी आभा रक्तिम दिखती है, जिसके कारण इसे ''लाल ग्रह'' भी कहा जाता है। पृथ्वी के समान मंगल भी एक स्थलीय धरातल वाला गृह है। सौरमंडल के सभी गृहों में, समान घूर्णन अक्षीय झुकाव के कारण मंगल पर मौसमी चक्र पृथ्वी में समान हैं। मंगल पर ऋतुओं का काल पृथ्वी की अपेक्षा लगभग दोगुना है। पृथ्वी की तुलना में सूर्य से यह ग्रह 1.52 गुना अधिक दूर होने के कारण, इसके वर्ष लगभग दो पृथ्वी वर्ष लम्बाई जितने आगे हैं तथा मंगल पर सूर्य प्रकाश की मात्रा 43 प्रतिशत मात्र ही पहुँच पाती है। मंगल ग्रह का तापमान विविधतापूर्ण है। ध्रुवीय सर्दियों के दौरान तापमान लगभग (–)87 डिग्री से0 नीचे से लेकर गर्मियों में (–)5 डिग्री से0 उँचे तक रहता है। व्यापक तापमान विस्तार, निम्न वायुमण्डलीय दाब, निम्न तापीय जड़त्व एवं पतले वायुमंडल जो ज्यादा सौर ताप संग्रहित नहीं कर सकता, के कारण है। चुम्बकीय क्षेत्र की कमी, मंगल का अत्यंत पतला वायुमंडल एक चुनौती है। इस ग्रह के पास, अपनी सतह के आरपार मामूली ताप संचरण सौर वायु

के हमले के खिलाफ कमजोर अवरोधक और पानी को तरल रूप से बनाये रखने के लिए अपर्याप्त वायुमंडलीय दाब है।

मंगल ग्रह की पहली सफल उड़ान मेरिनर–4 14–15 जुलाई 1965 के नासा द्वारा भेजी गई। 14 नवम्बर 1971 को मेरिनर–9 पहला अंतरिक्ष यान बना, जिसने की अन्य ग्रह की परिक्रमा के लिये मंगल के चारो ओर की कक्षा में प्रवेश किया। दो सोवियत यान, 27 नवम्बर 1971 को मार्स–2 और 3 दिसम्बर को मार्स–3, मंगल ग्रह की सतह पर सफलता पूर्वक कदम रखने वाली पहली वस्तुएं थी, परन्तु उनके उतरने के चंद सेकेण्डों के भीतर ही दोनों का संचार बंद हो गया। सन् 1975 में नासा ने वाइकिंग कार्यक्रम की शुरूआत की जिसमें दो कक्षीय यान सम्मिलित थे, प्रत्येक में एक–एक लैंडर थे और दोनों लैंडर 1976 में सफलतापूर्वक नीचे उतरे थे। वाइकिंग–1, 6 वर्षों के लिये और वाइकिंग–2, तीन वर्ष के लिये परिचालक बने रहे। वाइकिंग लैंडरों ने मंगल के जीवंत परिदृश्य प्रसारित किये और इस यान ने सतह को इतनी अच्छी तरह से प्रतिचित्रित किया है कि यह छवियाँ आज तक प्रयोग में बनी हैं। सन् 1960 से अब तक पूरे विश्व में ऐसे लगभग 51 अभियान हो चुके है जिसमें 21 ही कामयाब रहे।

5 नवम्बर 2013 को श्री के. राधाकृष्णन, अध्यक्ष, इसरो तथा उनके अनुभवी एवं कुशल वैज्ञानिक दल के नेतृत्व में इसरो ने PSLV-XL C 25 द्वारा श्री हरिकोटा प्रक्षेपण केन्द्र से मार्स आर्बिटर सेटेलाइट भेजा। यह 68 करोड़ किमी. लम्बी यात्रा पर सफलता पूर्वक निकला था। इस मंगल यान की रफ्तार 32 किमी/से. थी। मंगल यान पृथ्वी की कक्षा का चक्कर लगाने के बाद 30 नवम्बर, 2013 को वह अबाध गति से मंगल ग्रह की ओर निकल पड़ा था। इस यान को 24 सितम्बर 2014 को मंगल की कक्षा में स्थापित होना था। यह दिन इसरो के वैज्ञानिकों के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण था क्योंकि मंगल यान को मंगल ग्रह की कक्षा में स्थापित करने के लिए इसमें लगे एक तरल इंजन को उन्हें सफलतापूर्वक चालू करना था जो यान

की गति को नियंत्रित करके लगभग 22.0 किमी/से. करना था। 22 सितम्बर, 2014 को सुबह 9.14 मि. पर मंगल के परिमण्डल में प्रवेश किया। वैज्ञानिकगण इसमें लगे मुख्य लिक्विड इंजन यानि 440 न्यूटन तरल एपोगी मोटर को 300 दिन से बंद पड़े इंजन को दोपहर 2.30 बजे चालू करने में सफल हुए और इसके साथ 22 न्यूटन वाले सभी 8 थस्टर्स इंजन

लगभग 4 सेकेण्ड तक फायर किये गये।

24 सितम्बर को सुबह 7.17.32 पर मुख्य व अन्य 8 थस्टर्स इंजनो को 24 मिनट तक चालू कर इसकी गति 22.1 किमी/से. से कम करके 4.4 किमी/से. किया जिससे लाल ग्रह के गुरूत्वाकर्षण ने उसे अपनी ओर खींच लिया और करीब 8.00 बजे मंगल यान को मंगल ग्रह की कक्षा में स्थापित करने में सफलता मिली। इसी के साथ भारत दुनिया का पहला देश बना जिसने अपनी पहली कोशिश में यह सफलता हासिल की। हालाँकि मंगल यान से 2 दिन पूर्व 21 सितम्बर, 2014 की रात अमेरिकी यान 'मैवन' भी मंगल की कक्षा में पहुँचा था परन्तु मंगल यान को अधिक सुर्खियां मिलने की दो मुख्य वजह थी, पहली तो यह कि भारत ने पहले प्रयास में यह सफलता पाई दूसरी यह कि हमारे वैज्ञानिकों ने केवल 456 करोड़ में यह कार्य कर दिखाया जोकि नासा ने अपने मैवन पर 4000 करोड़ रू. खर्च किये। तकनीक के मामले में भले ही अमेरिका हमसे आगे हो लेकिन कम लागत में मंगल तक पहुँचने में मंगलयान की लागत अमेरिका के मंगल मिशन के लिये भेजे गये मैवन से करीब 9 गुना कम है। भारत के मंगल यान की कामयाबी की सराहना दुनिया भर में हो रही है। अमेरिका की प्रतिष्ठित पत्रिका 'टाइम' ने भी सन् 2014 के 25 सर्वश्रेष्ठ अविष्कारों की सूची में भारत के मंगलयान को शामिल किया है। पत्रिका में इसे तकनीक के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि करार देते हुऐ कहा कि इससे भारत को अंतर ग्रहीय अभियानों को बढ़ावा देने में मदद मिलेगी। टाइम ने मंगलयान को ''द सुपर स्मार्ट स्पेसक्रॉफ्ट'' (सबसे कुशल अंतरिक्ष यान) की संज्ञा दी है।

यह यान मंगल ग्रह पर मीथेन गैस का आंकलन करेगा। मीथेन गैस का पता चलने के बाद यह दावा किया जा सकता है कि मंगल पर जीवन है या नहीं। छोटे माइक्रो आर्गिनिज्म के होने की सम्भावनाओं की तलाश मार्स आर्बिटर इसी आधार पर करेगा।

मंगल ग्रह पर मानव बसाने का अभियानः

मंगल ग्रह पर स्थाई कालोनी बसाने के अभियान के लिये मात्र 5 लोगों को सन् 2024 में वहां भेजा जाना है। नीदरलैंड के एक नान प्राफिट ऑर्गेनाइजेशन 'मार्स वन' ने इसके लिये दुनिया भर से मंगल ग्रह पर जाने के इच्छुक आवेदकों से आवेदन माँगे थे। मंगल ग्रह के वन वे ट्रिप के लिये लगभग 2 लाख लोगों ने इसके लिये आवेदन दिया, जिसमें से 1058 लोगों को शार्ट लिस्ट किया गया है। अच्छी बात यह है कि इनमें से 62 भारतीय भी हैं। पहली शार्ट लिस्ट में, 297 लोग अमेरिका से हैं, कनाडा से 75, भारत से 62 तथा चौथे स्थान पर रूस के 52 लोग चुने गये हैं इस वन वे ट्रिप के लिये जिस पर जाना तो मुमकिन है पर लौटना नहीं। हालाँकि ऐसे तमाम नकारात्मक पहलुओं को दरकिनार करते हुए, दुनिया भर के तमाम लोगों ने खासी दिलचस्पी दिखाई है। इन सभी आवेदकों में से, मार्स वन सिलेक्शन कमेटी दो साल तक चलने वाले तीन और राउंड में मार्स वासियों का चयन करेगी। 2015 तक चार–चार लोगों वाली 6 से 10 टीमें ट्रेनिंग के लिये चुनी जायेगी। इन्हें अगले सात साल तक फुल टाइम ट्रेनिंग दी जायेगी।

- देश के सबसे बड़े भू–भाग में बोली जाने वाली हिन्दी ही राष्ट्रभाषा की अधिकारिणी है।
- हिन्दी का विरोध राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।

शब्दकोश

(पिछले अंक से आगे)

A

Apex	शिखाग्र
Aphicidal	माहूंनाशक
Aphid	माहूं
Aphid vector	माहूंवाहक
Aphidophagous	माहूंभक्षी
Apical bud	शीर्षस्थ कली
Apical leaf	शीर्षस्थ पत्ती
Apical sprout	शिखाग्र अंकुर
Apogamy	निर्लिंगिक वर्धन
Apomixis	असंगतजनन
Application	अनुप्रयोग
Applied research	व्यवहारिक अनुसंधान
Approximation	सन्निकटन
Aquired	अर्जित
Aquired character	अर्जित गुण
Aquired immunity	अर्जित प्रतिरक्षता
Arable land	कृषि योग्य भूमि
Area	क्षेत्र
Aridic	शुष्क
Aromatic	सुगंधीय
Arophyte	वायुपादप
Artificial	कृत्रिम
Artificial epidemics	कृत्रिम महामारी
Asexual hybridization	अलैंगिग संकरण
Aspect	पहलू
Aspect	अभिमुखता
Assay	परखना
Assess	मूल्यांक अबियाना
Assessed	मूल्यांकित
Assessment	निर्धारण या मूल्यांकन
Assets	परिसम्पति
Assimilate	समावेश
Assimilation	समावेश करना
Assortment	पृथककरण
Assumption	कल्पना

B

BPH (Brown plant hopper)	भूरे फुदके
Brachy form rust	हीन किट्ट
Bracket fungi	बेंकट कवक
Bract	सहपत्र, निपत्र
Bracteate	सहपत्रि
Bracteolate	अनुसहपत्री
Bracteole	सहपात्रिका
Branch	शाखा
Branchlet	उपशखा, टहनी
Brand spore	ब्रैन्ड जीवाणु
Break dormancy	सुसुप्तावस्था तोड़ना
Breakdown starch	स्टार्च का भंजन
Breathin root	श्वसन मूल
Breed	नस्ल
Breeder	प्रजनक
Breeder seed	प्रजनक बीज
Breeding	प्रजनन
Breeding line	प्रजनन वंशक्रम
Brindile	शीध्र अंकूरण उपचार
Brindle	टहनी
Brinjal	बैंगन
Bristly	शूक
Brix	शर्करामान
Broad bean	बाकला
Broad casting	छिटकवां/बिखेरना
Broad costing	बिखेरना
Broad spectrum	विस्तृत वर्णक्रम
Broadening of genetic base	आंनुवाशिक आधार का विस्तार
Brooding	अंडा सेना
Brown algee	भूरा शैवाल
Brown rot	भूरा विगलन
Brown rust	भूरा किट्ट
Brown spot	भूरे धब्बे
Browning	भूरा पड़ना
Browse	पल्लव चारण
Browsing	पत्ती चटना
Brunneus	बादामी
Brussels sprouts	बटन गोभी

C

Crab	केकड़ा
Crack	चिटकना
Cracking of fruit	फल तिडकना
Craspedodromous venation	अशख पार्श्व शिरा विन्यास
Crassus	सधन, घना
Crateriform	कटोराकार
Craticulor	पंजराभ
Creationism	सृष्टि शून्यवाद
Creeping	सर्पी, सर्पण
Cremocarp	द्विकोष्ठी
Cremocarp	चाकमय
Criss-cross	विरुद्धलिंगी
Criss-cross	आडी-खड़ी
Criteria	कसौटी या आधारगत
Criterion quality	कसौटी गुण
Critical	क्रांतिक
Critical level	क्रान्तिक स्तर
Critical period	क्रांतिक काल
Critical stage of crop growth	फसल वृद्धि की क्रान्तिक अवस्था
Crop	शस्य, फसल
Crop based cropping system	फसल पर आधारित फसल प्रणाली
Crop calendar	फसल समय चक्र
Crop canopy	फसल वितान
Crop cutting experiment	फसल कटाई प्रयोग
Crop diversity	सस्य विविधता
Crop ecology	फसल परिस्थितिकी
Crop estimate	सस्य आकलन
Crop improvement	फसल सुधार
Crop in-situ	स्वस्थानी फसल
Crop- intensity	सस्य सधनता
Crop production	फसल उत्पादन
Crop productivity	फसल उत्पादकता
Crop residue	शस्यावशेष
Crop rotation	फसल चक्र
Crop technology	शस्य प्रोद्योगिकी
Cropping patern	सस्यक्रम
Cropping scheme	शस्यन योजना
Cropping system	फसल तंत्र
Cropwise	फसलवार
Cross	संकर, संकरण
Cross breed	संकर
Cross breeding	संकरण
Cross fertilization	परनिशेचन
Cross infection	पर संकरण
Cross inoculation	प्रतिनेवषन
Cross over	विनिमयज
Cross pollination	परपरागण
Cross protection	अन्योन्य सूरक्षा
Cross reciprocal	अन्योन्य/पारस्परिक संकर
Crossability	संकर योग्य
Crosses	प्रसंकर
Cross-fertilization	परनिषेचन
Crossing -over	गुणसूत्रों का विनिमय
Cross-pollination	पर-परागण
Crown	शिखर
Crown grafting	चोटी कलम बांधना
Crown knot	शिखर गांठ
Crucial issues	ज्वलंत मुद्दे
Cruciferae	क्रूसिफेरी
Crude fat	अपरिष्कृत वसा
Cryophil	शीतरागी

Cryopreservation	हिम परिरक्षण
Cryoscopic	हिमांकमापी
Cryptophyta	गूदोद्भिद
Crystal	क्रिस्टल
Crystalloid	प्रसरणशील

D

Duration of flowering	पुष्पणकाल
During the year under report	रिपोर्टाधीन अवधि के समय
Dust	धूल, राख
Duster	झाड़न, प्रधूलक
Dusting	बुरकाना

E

Espinal	कंटक वन
Essential element	अनिवार्य तत्व
Essential fatty acid	आवशसक वसा अम्ल
Essential oil	सगंध तेल
Essential organ	जननांग
Establishment	सुस्थापित
Estimate	आकलन
Estimated	आकलन
Etaerio	पुंज
Eucarpic	अंशकाय फलिका
Euploid	सुगुणित
Eustele	सुरंभ
Eutrophic	सुपोषणी

F

Fruit gathering	फल लवन
Fruit industry	फल उद्योग
Fruit mix	मिश्रित फल
Fruit pit	फलगर्त रोग
Fruit plantation	फलोद्यान
Fruit preservation	फल परिरक्षी
Fruit root	फल विगलन
Fruit setting	फलना
Fruit specialist	फल विशेषज्ञ
Fruit spot	फल चित्ती
Fruit spur	फल शाखा
Fruit tree	फल वृक्ष
Fruitescent	क्षुयायमान
Fruitiness	फलनलीयता
Fruiting body	फलन काय
Fruiting capacity	फलन क्षमता
Fruiting habit	फलन प्रवृति
Fruiting mechanism	फलन–क्रिया विधि
Fruition	फलन
Fruition period	फलन काल

G

Growth harmone	वृद्धिकर हार्मोन
Growth inhibition	वृद्धि निरोधन
Growth patternबढ़वार/वृद्धि प्रतिरूप/प्रतिमान/रचना	
Growth phase	वृद्धि अवस्था
Growth promoting substance	वृद्धि प्रोत्साहक पदार्थ
Growth rate	वृद्धि दर
Growth regulator	वृद्धि नियामक
Growth regulator	वृद्धि नियंत्रक
Growth retardant	वृद्धिमंदक
Growth ring	वृद्धि वलय
Growth substance	वृद्धिकर पदार्थ
Growth-trend analysis	वृद्धि-प्रवृत्ति विश्लेषण
Grub	लट, सूण्डी, सूंड़ी

H

Hyaline	काचाभ
Hyaloplasm	काचाभ जीवद्रव्य
Hybrid	संकर
Hybrid graft	संकर कलम
Hybrid line	संकर वंश
Hybrid sterility	संकर बंध्यता
Hybrid swarn	संकर वलय
Hybrid vigour	संकर ओज
Hybridity	संकरता
Hybridization	संकरण
Hybridus	संकर
Hydathode	जलरंध्र
Hydration	जल-योजन
Hydraulic	द्रववलित
Hydroarch	जलारंभी
Hydrochimous	वर्षाशिशिरी
Hydroid	जलवाह कोशिका
Hydrolysis	ज़ल अपघटन
Hydrophilous	जलरागी
Hydrophily	जलपरागण
Hydrophyte	जलोद्भिद
Hydroponics	जल संवर्धन
Hydrosere	जलक्रमक
Hydrotropic	जलानुवर्ती
Hydrotropism	जलानुवर्तन
Hydrotropism	जलानुवर्तन

I

Ionically	आयनिक
Iron bacteria	लोहा जीवाणु
Iron deficiency chlorosis	लौहअल्पता जनित हरिमहीनता
Irradiate	विकिरणित
Irradiation	विकिरण
Irrigated	सिंचित
Irrigation	सिंचाई
Irritability	उत्तेजनशीलता
Iscoenzyme	समएन्जाइम
Isochromosome	समगुणसूत्र
Isochromous	समवर्णी
Isoflor	समजाति रेखा
Isogamy	समजाति
Isokont	समकाशभिक
Isolate	प्रभेद, विछुक्त, पृथक्कृत
Isolated	पृथक किड़े गड्ढे
Isolates	पृथककृत
Isolating mechanism	पार्थक्य क्रियाविधि
Isolation	पृथक्करण
Isomorphic	समजीवी, समरूपी
Isomorphic substitution	समाकृति प्रतिस्थापन
Isophyllous	समपर्णी
Isostemonous	दलसंख्यपुंकेसरी
Isotonic	समपरासारी
Isotopic tracer	समस्थानिक अनुज्ञापक
Isotype	समप्ररूप
Isozyme	समएन्जाइम
Ivory	हाथी दात

J

Juvenile	किशोर

K

Kryptoblast	गूढ़कोरक

L

Lucerne	रजका
Lumbricalis	कृमिरूप
Lumen	अवकाशिका
Lumineseence	संदीप्ति
Lunate	नवचंद्राकार
Luxury absorption	प्रचुर अवशोषण

M

Mucilage	शलेमक
Mucronate	नोंकदार
Mulberry	सहतूत
Mulch	पलवार
Mulching	पलवारना
Muliflorous	बहुपुष्पी
Multi – tier cropping	बहुस्तरीय फसल प्रणाली
Multidisciplinary research	बहुआयामी अनुसंधान
Multifarious	बहुपंक्तिक
Multifascicular	बहुपूली
Multilocular	बहुकोष्ठकी
Multiparous	बहुशखी
Multiple	बहुगुणक
Multiple allele	बहुविकल्पी
Multiple correlation	बहु सहसंबंध
Multiple cropping	बहुफसलीय खेती
Multiple cropping	बहुशस्योत्पादन

Multiple cross	बहुसंकर
Multiple factor	बहु विकल्पी
Multiple fruit	संग्रथित फल
Multiple regration	बहुव्युत्क्रमण
Multiple resistance	बहु-प्रतिरोधकता
Multiple shoot	बहुप्ररोहों
Multiplication	बहुगुणन या बहुलीकरण
Multiramose	बहुशाखी
Multiseriate	बहुपंक्तिक
Multistoried cropping	बहुखण्डी खेती
Muricate	रूक्षवर्ध
Mushroom	क्षत्रक, मशरूम
Mustard	सरसों
Mutagen	उत्परिवर्तन
Mutant	उत्परिवर्ती
Mutation	उत्परिवर्तन
Mutation breeding	उत्परिवर्तन प्रजनन
Muton	उत्पाणु

N

Nutrient	पोषक तत्व
Nutrient balance	पोषक संतुलन
Nutrient deficiency	पोषक न्यूनता
Nutrient element	पोषक तत्व
Nutrient immobilization	पोषक तत्व स्थिरीकरण
Nutrient level	पोषकता का स्तर
Nutrient level	पोषक मात्रा
Nutrient loss	पोषक हानि
Nutrient management	पोषक तत्वों का प्रबन्धन
Nutrient management	पोषक प्रबंध
Nutrient Management	पोषण प्रबंधन
Nutrient mobility concept	पोषक गतिशीलता संकल्पना
Nutrient need	पोषक द्रव्य आवश्यकता
Nutrient solution	पोषक पदार्थ–धोल
Nutrient supply	पोषक पूर्ति
Nutrient uptake	पोषक ग्रहण
Nutrition	पोषण
Nutrition balance	पोषण संतुलन
Nutrition ratio	पोषण अनुपात
Nutritional security	पोषक सुरक्षा
Nutritive	पोषक
Nutritive requirement	पोषण आवश्यकता
Nutritive solution	पोषण विलयन
Nutritive value	पोषण मूल्य
Nutritive value	पोषण मान
Nuuse cell	पोषण कोशिका
Nux	नट, दृढ़फल

O

Osmometer	परासणमापी
Osmosis	परासण
Osmotic pressure	रसाकर्षण दबाव
Osmotic pressure	परासण दाब
Ostiole	आस्यक
Otomycosis	कर्ण कवक रोग
Out break	उद्वेग
Out breeding	बहिः प्रजनन
Out cross	बहिः संकर
Outer crop	बाह्य फसल

P

Practice	रीति
Pre- climax	प्राक्पत्र – विन्यास
Pre- inoculation	संरोपण पूर्वी
Precipitated	अवक्षेपित
Precipitation	अवक्षेपण
Precipitation	अधःपतन
Precision	परिशुद्धता
Precision of planting	बुआई की परिशुद्धता
Pre-concentration	सान्द्रण पूर्व
Pre-cropping	पूर्व शस्यन
Pre-cropping population	फसल पूर्व संख्या
Predator	परभक्षी
Predominant	प्रभावी
Pre-emergence herbicide	अंकुरण के पहले पूर्व उपयोगी शाकनाशी
Preformation	पूर्वोत्पादन
Prehi bennal	शिशिर पूर्वी
Preliminary experiment	प्रारम्भिक प्रयोग या परीक्षण
Premature defoliation	अपरिपक्व निष्पत्रण
Pre-planting herbicide	बुआई या रोपाई के पूर्व उपयोगी शाकनाशी
pre-selection	चयन के पहले
Preservation	परिरक्षण
Preservatives	परिरक्षक
Preside	अध्यक्षता करना
Pre-sowing	रोपण या बुआई के पहले
Pre-sprout	अंकुरण के पूर्व
Pressure	प्रभाव ङ्क दबाव
Pressure of infection	संक्रमण का प्रभाव
Prevalent	विद्यमान
Preventive	निरोधक, निवारक
Prickle	तीक्ष्ण वर्ध
Prickly pear	नागफनी
Primary consumer	प्राथमिक उपभोक्ता
Primary growth	प्राथमिक वृद्धि
Primary infection	प्राथमिक संक्रमण
Primary pit field	प्राथमिक गर्त क्षेत्र
Primary production	प्राथमिक उत्पादन
Primary ray	प्राथमिक किरण
Primary root	प्राथमिक मूल
Primary tillage	प्राथमिक कर्षण
Primary tissue	प्राथमिक उतक
Primordium	आद्यक
Priorty	अग्रता
Probability	सम्भाव्यता
Probable	सम्भाव्य
Procambium	प्राक्एधा
Procarp	जापाधनी
Process	प्रक्रिया
Processing	प्रसंस्करण या परिशोधन
Procumbent	श्यान
Produced	उपज
Producer	उत्पादक
Production oriented	उत्पादनोन्मुखी
Production potential	उत्पादन सामर्थ्य
Productivity	उत्पादकता
Productivity	उत्पादकता
Proembryo	प्राक्भ्रूण
Profile	परिच्छेदिका
Profile diagram	परिच्छेदिका आरेख
Progeny	संतति
Prokaryonata	पूर्वकेन्द्रक
Proline	प्रोलीन
Prolongation of dormancy	सुषुप्तावस्था का लम्बा होना
Promising	होनहार
Promising culture	उन्नत या होनहार जीव समूह या संवर्धक
Promote	बढ़ावा देना
Promotes	प्रोत्साहन या समर्थन
Promotor	वर्धक
Promycelum	प्राक्कवक तंतु
Prop root	अवस्तंभ मूल
Propagate	उपजाना, प्रसारण
Propagate	प्रवर्धन
Propagation	सचरण, प्रवर्धन
Propagative virus	प्रवर्ध विषाणु
Propagules	पौध सामग्री
Propagulum	प्रवर्ध्य
Properties	गुणधर्म
Prophage	प्राक्भोजी
Prophase	पूर्वावस्था
Prophase	पूर्वावस्था
Prophylactic	रोगनिरोधी
Prophylacxis	रोगनिरोधन
Prophyll	सहपत्रिका
Proportional	समानुपाती
Prosenchyma	दीर्घ उतक
Prostorate	श्यान
Protein	प्रोटीन
Protein synthesis	प्रोटीन संश्लेषण

Proteolytic	प्रोटीन अपघटक
Proteolytic enzyme	अपघटक एन्जाइम
Prothallus	प्रोथैलस
Protista	आद्यजीव
Protobiont	आदिजीव
Protoderm	अधित्वक
Protogyny	स्त्रीपूर्वता
Protonema	प्रथम तंतु
Protoplasm	जीवद्रव्य
Protoplast	जीवद्रव्यक
Protostell	ठोसरंभ
Prototype	प्रारूप
Protoxylem	आदिदारू
Protphloem	प्राक्योशवाह
Protuctant spray	रक्षक छिडकाव
Protuctive tissue	संरक्षी ऊतक
Provascular tissue	प्राक्संवहन उतक
Provided	पूर्व निंटिष्ट
Proximad	सन्निकट
Pruning	कांट–छाट

Q

Quaternary	चतुर्थ महाकल्प
Quebracho	कब्रैचो

R

Rodent	कृतक
Rogue	अवांछित
Roguing	अपावांछन
Root	मूल, जड़
Root cap	मूल गोप
Root climber	मूल रोहिणी
Root hair	मूल रोम
Root knot	मूल गॉठ
Root pressure	मूलीय दाब
Root rot	मूल विगलन
Root stock	प्रकंद
Rootlet	मूलिका
Rose	गुलाब
Rose berry	रोजबेरी
Rostellum	तुण्डक
Rot	विगलन
Rotundifolius	वर्तुलपर्णी
Rouge	रूज
Roughage	मोटा चारा
Row crop	पंक्ति फसल
Row intercropping	पंक्ति अंर्तफसल

S

Squamate	शल्की
Squash	स्कवाश
Stability	स्थायित्व
Stabilization	स्थाई करण
Stabilizing selection	स्थायिकृत वरण
Stable genotype	स्थायी वंश प्ररूप
Stage	अवस्था
Stake	खूंटा
Stale	रंभ
Stalk	तना/वृंत
Stamen	पुंकेसर
Staminode	बंध्य पुंकेसर
Standarad of selection	चयन मानक
Standard	मानक
Standard deviation	मानक विचलन
Standard error	मानक त्रूटि
Standardization	मानकीकरण
Standardized	मानकीकृत
Staphylococcus	गुच्छाणु
Starter	स्फोटक
Starter Solution	प्रवर्तक हल
Statistic	प्रतिदर्शज
Statistics	सांख्यिकी
Stem	तना, स्तम्भ
Stem borer	तना बेधक
Sterigma	प्रांगुल
Sterile	रोगाणुरहित
Sterility	बंध्यता
Sterilization	बंध्याकरण
Stigma	वर्तिकाग्र
Stimulatory action	उत्तेजक क्रिया
Stimulus	उधीपक
Stipules	उपपर्ण
Stock	स्कन्ध
Stolon graft	भूस्तारी कलम
Stomata	रन्ध्र
Stomuch poision	आमाशय विष
Stone	गुठली
Stone cell	दृढ़कोशिका
Stool	आधात्री
Stool layering	आधात्री वायुदाब
Stopping	अवरोधन
Storage	संचयन
Storage root	संचयी विगलन
Strain	विभेद
Strain	नस्ल
Strategy	रणनीत या व्यूयरचना
Stratification	स्तर विन्यास
Streak virus	रेखा विषाणु
Strengthening	सुदृणीकरण
Stress	प्रतिबल
Strip cropping	धारीदार फसल प्रणाली
Strobilus	शंकु
Strophiole	स्ट्रोफिओल
Structural gene	संरचनात्मक जीन
Struma	तल्पीशोष
Stubble	ठुंठ
Stunted growth	कुंठ या अवरुद्ध वृद्धि
Stylar	वर्तिकाय
Style	वर्तिका

T

Trial	जॉच या परीक्षण
Trichoma	त्वचारोम
Trickle	अल्पमात्रीय
Trifolite	त्रिपणक
Trisomic	एकधिसूत्री
Trivalent	त्रिसंयोजक
Tropical	उष्ण कटिबंधीय
Truck garden	ट्रक सस्य
True immunity	वास्तविक असंक्रम्यता
Trunk	स्तंभ
Truthful seeds	विश्वसनीय बीज
Tuber	कंद
Tubercle	पश्मिका
Tune	स्वभाव
Tunic	कंचुक
Turf	दर्भस्थल
Turgor	स्फीति
Turmeric	हल्दी
Turnip	शलजम

U

Unpollinated	अपरागित
Urens	दंशी
Urnshaped	कुम्भाकार

V

Viscosity	श्यानता
Vitamin	विटामिन
Viviparium	जीवशाला

W

Wind	पवन/हवा
Wind pollination	वायु परागण
Wine	शराब
Winged Seed	सापक्ष बीज
Winnowing	गहाई या ओसाई

X

Xylopodium	काजू फल

Y

Yellow spot disease	पीला धब्बा रोग

Z

Zygote	युग्मनज

संकलन :
सी.पी. सिंह
अभिषेक कुमार सिंह

आपके पत्र

सं. 11014/03/2015-रा.भा.(पत्रिका)
भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

1336
06/01/2016

एनडीसीसी-II भवन,
चौथा तल, बी विंग,
जयसिंह रोड, नई दिल्ली-110001

दिनांक 29 दिसंबर, 2015

सेवा में
डॉ. ओ. के. सिन्हा
निदेशक
भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ 226002

विषय-राजभाषा पत्रिका 'इक्षु' के संदर्भ में

महोदय

भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान लखनऊ द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिका 'इक्षु' का वर्ष 4 अंक 1 (जनवरी-जून 2015) प्राप्त हुआ। पत्रिका में उच्च स्तर के लेख शामिल किए गए हैं जिसमें गन्ने की खेती से संबंधित बहुत सारी जानकारी पाठकों के लिए उपलब्ध है। जहाँ 'जैविक खेती' और 'जैविक उर्वरकों का गन्ने की खेती में लाभकारी उपयोग' जैसे लेख गन्ने की फसल करने वाले किसानों को आवश्यक जानकारी प्रदान करते हैं वहीं गन्ने की मिठास को कायम रखने के लिए खाद और उर्वरकों का प्रबंध किस प्रकार आवश्यक है यह भी लेख के माध्यम से दर्शाया गया है। आरोग्य एवं संजीवनी प्रभाग कॉलम के अंतर्गत विभिन्न लेख जैसे 'वर्मी कंपोस्ट', 'चूहों का कृषि में महत्व एवं निदान' 'पपीता के प्रमुख रोग और उनका निदान' जैसे लेख एक विशेष जानकारी पाठकों को प्रदान करते हैं। कृषि के क्षेत्र में रुचि पैदा करता लेख 'सफल कहानी: समेकित कृषि कर एक कृषक ने बदली अपने जीवन की तस्वीर' निश्चय ही किसानों के लिये प्रेरणास्रोत है। कविता और गज़ल के माध्यम से पत्रिका को रोचक बनाने का भी प्रयास किया गया है। पीछे के पृष्ठों पर दिए गए शब्द कोश का एक विशेष महत्व है जो पाठकों के लिए जिज्ञासा के साथ साथ उन्हें जानकारी भी प्रदान करता है। लेखों के चयन एवं मुद्रण की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान रखा गया है।

कुल मिलाकर पत्रिका बेहद संतुलित है और राजभाषा हिंदी के प्रचार प्रसार में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती दिखाई पड़ती है। संपादक मंडल को इस बात के लिए बधाई देना चाहता हूँ, साथ ही आशा करता हूँ कि संस्था द्वारा राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए समय-समय पर इसी तरह के प्रयास किए जाते रहेंगे।

भवदीय
(हरिन्द्र कुमार)
निदेशक (कार्यान्वयन)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
कृषि भवन, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद मार्ग, नई दिल्ली-110 001
Krishi Bhawan, Dr. Rajendra Prasad Road, New Delhi 110 001

सीमा चोपड़ा
उप निदेशक (राजभाषा)

सं0 15(1)/2015-हिन्दी
दिनांक 21 दिसम्बर, 2015

डॉ. सिन्हा जी

भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'इक्षु' की प्रति भेजने के लिए धन्यवाद। इस पत्रिका में गन्ने के साथ-साथ अन्य फसलों के बारे में भी तकनीकी आलेख प्रकाशित किये गये हैं। इससे जहां राजभाषा हिन्दी को बढ़ावा मिलेगा वहीं गन्ना उत्पादक किसानों को तकनीकों की नवीनतम जानकारी मिल सकेगी।

'इक्षु' पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए संपादक मण्डल को हार्दिक बधाई।

शुभेच्छु
(सीमा चोपड़ा)

डॉ. ओ.के. सिन्हा
निदेशक
भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पोस्ट दिलकुशा
लखनऊ -226002 (उ0प्र0)

Phone: 0522-2841022-24
Fax: 0522-2841025
Web: www.cishlko.org
e-mail: [illegible]

भा.कृ.अनु. परिषद – केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान
पुस्तकालय, सूचना एवं प्रलेखन यूनिट
रहमानखेड़ा, काकोरी, लखनऊ- 226 101
ICAR-Central Institute For Subtropical Horticulture
Library, Information & Documentation Unit
Rehmankhera, P.O. Kakori, Lucknow – 226 101

F.No.54-1/2015-16/ 5427

दिनांक 16/12/2015

सेवा में,
डा. पी. के. सिंह
प्रभारी राजभाषा प्रकोष्ठ एवं प्रधान वैज्ञानिक (फसल सुधार)
भा.कृ.अनु.प. – भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
रायबरेली रोड, पो. दिलकुशा
लखनऊ -226 002

विषय: पत्रिका 'इक्षु' राजभाषा पत्रिका वर्ष 4 अंक 1 जनवरी – जून, 2015.

महोदय,

"इक्षु राजभाषा पत्रिका वर्ष 4 अंक 1 जनवरी – जून, 2015" दिनांक 14/12/2015 को एक प्रति प्राप्त हुई।

राजभाषा पत्रिका इक्षु भेजने के लिए धन्यवाद।

भवदीय
पुस्तकालय सलाहकार समिति

समाचार प्रभाग

अमर उजाला

'तंगी से जूझ रहा गन्ना किसान व चीनी उद्योग'

आईआईएसआर निदेशक बोले, कम क्षेत्रफल में अधिक उत्पादन के बिना नहीं सुधरेंगे हालात

राष्ट्रीय सहारा

किसान व चीनी उद्योग की खुशहाली के लिए गन्ना उत्पादन बढ़ना जरूरी

कल्पतरु एक्सप्रेस

लखनऊ, गुरुवार, 2 जुलाई 2015

'विकसित तकनीक का प्रयोग करें किसान'

जनसंदेश टाइम्स

सुधरेगी गन्ना किसानों की दशा

लहलहाएगी रोगरोधी गन्ने की फसल

16 | दैनिक जागरण लखनऊ, 2 जुलाई 2015

चीनी मिलों की स्थिति सुधारें

लखनऊ : भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में बुधवार को शुरू हुए 15 दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र में निदेशक डॉ. ओके सिन्हा ने देश के चीनी उद्योग की स्थिति सुधारने पर जोर दिया। उनका कहना था कि पेराई कर रही कुल 525 चीनी मिलों की आवश्यकता के मुताबिक गन्ना उपलब्ध नहीं हो पा रहा है। किसानों द्वारा उन्नत तकनीक का इस्तेमाल करके गन्ने की गुणवत्ता व उत्पादन बढ़ाने का गंभीर प्रयास किया जाना चाहिए। इस मौके पर प्रशिक्षण प्रभारी एके साह ने 15 जुलाई तक चलने वाले कार्यक्रम के बारे में विस्तार से जानकारी दी।

युनाइटेड भारत

चीनी उद्योग की खुशहाली के लिए गन्ना व चीनी उत्पादन बढ़ना जरूरी

जनसंदेश टाइम्स

वैज्ञानिक देशी खाद के शोध पर दें विशेष ध्यान

अमर उजाला

अमर उजाला मंगलवार | 15 सितंबर 2015

आईआईएसआर को राष्ट्रपति ने दिया राजभाषा पुरस्कार

डेली न्यूज़

लखनऊ, रविवार, 12 जुलाई 2015

देशी फसलों को विदेशी मुल्कों से बचाना होगा

जैविक खाद से फले-फूलेंगी देशी फसल, किसानों को होगा मुनाफा

आधुनिकतम, व्यवसायिक और प्रतिस्पर्धा वाली कोचिंग देने की पहल

लखनऊ, 12 जुलाई 2015 दैनिक जागरण

देशी बीज व खादों पर शोध करें वैज्ञानिक

- भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान में कृषक सम्मेलन

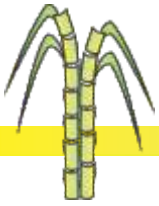

समाचार प्रभाग

केंद्र ने दिए ₹2801 करोड़, लेकिन किसानों तक नहीं पहुंचे

जनसंदेश टाइम्स

कृषि शिक्षा व्यवस्था में बदलाव की जरूरत: डॉ. बालियान

उत्तर प्रदेश

किसानों के खाते में सीधे जाएगी खाद सब्सिडी

समृद्धि के लिए जैविक उर्वरक का प्रयोग करें किसान

NBT

संडे नवभारत टाइम्स

मिट्टी जांच की फर्जी रिपोर्ट दे रहा यूपी

किसानों तक नहीं पहुंचे केंद्र से मिले 2801 करोड़

पायनियर

देश-प्रदेश

कृषि शिक्षा व्यवस्था में बदलाव जरूरी: संजीव बालियान

परंपरागत कृषि को बढ़ावा देना जरूरी : डॉ. बालियान

रसायन मुक्त खेती से कृषक और खेत दोनों होंगे सुदृढ़

•उन्नत भारत अभियान कार्यशाला शुरू

खेती से गोपालन जोड़कर ही होगा कृषि का विकास : बालियान

आज

देसी गाय पालन के साथ प्राकृतिक खेती पर जोर

हिन्दुस्तान

Modi govt may rework agri syllabus: Baliyan

स्वतंत्र भारत

नहीं खाने दूंगा किसी को जहर, कृषि को उद्यम से जोड़कर करूंगा देश का विकास : संजीव

सहारा

ग्रामीण क्षेत्रों में हो कृषि शोध संस्थान

किसानों तक नहीं पहुंचे मुआवजे के 2,801 करोड़ : बालियान

संस्थान का क्षेत्रीय केन्द्र, मोतीपुर : एक नजर में

उन्नत भारत अभियान का राष्ट्रीय कार्यशाला, 12–13 दिसम्बर, 2015

हिंदी पखवाड़ा

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितंबर 2015

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितंबर 2015

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितम्बर 2015
माकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितंबर 2015

कवि सम्मेलन

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितम्बर 2015

हिंदी पखवाड़ा
14-30 सितंबर 2015
14-30 सितम्बर 2015

हिंदी कार्यशाला

हिंदी पखवाड़ा
हिंदी कार्यशाला

हिंदी कार्यशाला

हिंदी पखवाड़

हिंदी कार्यशाला

हिंदी कार्यशाला

हिंदी पखवाड़ा
हिंदी कार्यशाला
23 सितम्बर 2015
भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान
लखनऊ

हिंदी कार्यशाला

जय किसान–जय विज्ञान

नराकास (कार्यालय-3) की छमाही बैठक : दिनाँक 30 नवम्बर 2015

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
Agri search with a human touch

भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विजन

प्रभावी, वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्द्धात्मक तथा जीवन्त गन्ना कृषि विकसित करना।

मिशन

भारत में चीनी और ऊर्जा की भावी आवश्यकता को पूरा करने के लिए गन्ने के उत्पादन, उत्पादकता, लाभदेयता तथा टिकाऊपन में वृद्धि करना।

अधिदेश

- गन्ने तथा अन्य शर्करा फसलों के उत्पादन एवं सुरक्षा तकनीकों के सभी पक्षों पर मूलभूत एवं प्रयुक्त शोध करना
- गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर के सहयोग से उपोष्ण क्षेत्रों हेतु प्रजातियों के प्रजनन का कार्य करना
- गन्ना में फसल विविधता एवं मूल्य संवर्द्धन पर अनुसंधान
- समन्वित शोध, सूचना तथा प्रजनन सामग्री के परस्पर आदान–प्रदान हेतु राज्य कृषि विश्वविद्यायलयों, शोध संस्थानों और अन्य संस्थानों के साथ सहयोग स्थापित करना।
- क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर कृषकों, उद्योगों तथा अन्य उपयोगकर्ताओं को प्रशिक्षण, सलाह और विशेष सेवाएं प्रदान करना।

एक कदम स्वच्छता की ओर